त्रिलोचन की काव्य-संवेदना के अंतःस्रोत और उनका कलात्मक विन्यास

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्.
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक :
श्री दूधनाथ सिंह
आचार्य (अवकाश प्राप्त), हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्ता :
उ[illegible]त [illegible]यदर्शी
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2003

प्रस्तावना

पहले तो यह स्पष्ट कर दूँ कि इस कार्य की ओर कैसे और क्यो उन्मुख हुआ। त्रिलोचन के बारे में प्रचलित संज्ञाओ, विशेषणो और किवदन्तियो ने उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व के बारे मे जानने की इच्छा जगाई। साहित्यिक नगर इलाहाबाद मे रहते हुए, उनके जीवन-संघर्ष एव व्यक्तित्व के बारे मे थोडा-बहुत सुना था, लेकिन उनकी रचनाओ से लगभग अनभिज्ञ ही था। त्रिलोचन 'सॉनेट के कवि' है ऐसी चर्चा सुनी थी। लेकिन 'सॉनेट' के बारे में कुछ पता नही था, सिवाय इसके कि सॉनेट एक 'काव्य-रूप' है जिसमे त्रिलोचन कविता लिखते हैं। उनके प्रथम काव्य-सग्रह 'धरती' ('45) की एक प्रति हाथ लगी तो 'चम्पा काले काले अच्छर नही चीन्हती' कविता पढकर मैं कही बहुत गहरे स्तर पर प्रभावित हुआ। ख़ासकर 'कलकत्ते पर बजर गिरे' पक्ति ने तो जैसे जादू कर दिया। फिर क्रमश· उनकी रचनाओं से अंतरगता बढी और उनके कवि-व्यक्तित्व से प्रीति भी जगी। उनकी कविता मे 'जन', 'जनपद' और 'धरती' के रंग कुछ परिचित से जान पडे। तय किया कि इस कवि की काव्य-प्रकृति को खोज थोड़ी दूर तक की जाय। मेरे शोध-निर्देशक प्रो० दूधनाथ सिंह ने त्रिलोचन के कृति-व्यक्तित्व पर अनुसंधान कार्य करने की सलाह भी दी। शोध कार्य का शीर्षक तय हुआ— "त्रिलोचन की काव्य-सवेदना के अन्त स्रोत और उनका कलात्मक विन्यास"। त्रिलोचन के कृति-व्यक्तित्व को अध्ययन का विषय बनाने के पीछे ये कुछ स्थूल कारण थे।

त्रिलोचन और उनकी कविता— दोनो ही प्रथम-दृष्टया कुछ खास प्रभावित नही करते। लेकिन उनके नजदीक जाने पर कोई भी उनके जादू से बच नही पाता। उनके समूचे व्यक्तित्व एव कृतित्व मे किसी प्रकार की साज-सज्जा, बनावटीपन अथवा तथाकथित कलात्मकता नहीं है, बल्कि एक ठेठ देसीपन और धरती की सोंधी गंध मौजूद है। अद्भुत सादगी और नितान्त अकृत्रिमता उनके व्यक्तित्व की निजी विशेषता है, जो उनकी कविता में भी पूरी तरह मौजूद है। उनकी कविता की जमीन एक ओर 'लोक जीवन' है, तो दूसरी ओर उनका 'जीवन-संघर्ष', जिससे उनकी कविताएँ जन्म लेती हैं। जीवन के गहरे वैषम्यो अथवा यथार्थ जीवन के विडम्बनात्मक अनुभव, चाहे वह खुद का भोगा हो, का वर्णन या चित्रण करते समय त्रिलोचन आवेग या उद्वेग से परिचालित नहीं होते, अपितु भरपूर सयम और तटस्थता बरतते है। अपने 'आत्म' के बारे मे लिखते समय भी वे इस तरह तटस्थता और सयम का परिचय देते है, मानो वह किसी 'अन्य' के बारे मे हो। अपने 'आत्म' के प्रति अचूक निर्मम दृष्टि रखते हुए मानो अपनी ही धज्जियॉ उड़ाते है— 'भीख मॉगते उसी त्रिलोचन को देखा कल/ जिस को समझे था है तो है यह फौलादी।' (उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 13) अपने 'आत्म' के प्रति ऐसी अचूक निर्मम दृष्टि रखना बडे-से-बडे कवि के लिए मुश्किल है।

छायावादोत्तर कविता मे त्रिलोचन की एक अलग पहचान है। उनमे साधारणता, सहजता और नैसर्गिकता है— भाव, भाषा, शैली-शिल्प या अभिव्यक्ति-विधान—सभी दृष्टियो से। हिन्दी भाषा अपनी जातीय स्मृतियो और जीवन की असख्य अन्तर्ध्वनियो के साथ उनकी कविता मे मौजूद है। त्रिलोचन की कविता की सबसे बडी पहचान है 'वाक्य'। 'कहो वाक्य पूरा'— यह टेक सॉनेट, गीत, गजल, मुक्त छद, बरवै, कुण्डलिया आदि काव्यरूपो मे लिखी उनकी प्राय सभी रचनाओ मे चरितार्थ है। हिन्दी मे वाक्य को 'अक्षत' रखकर कविता करना एक ऐसी दुर्लभ विशेषता है जो अकेले त्रिलोचन के यहॉ ही पूरी दृढता और कलात्मकता के साथ मौजूद है। त्रिलोचन ने फार्म के स्तर पर काफी प्रयोग किया है और उनके कुछ प्रयोग तो अद्वितीय है। उनके सॉनेट, बरवै जैसे काव्यानुशासन तो अद्वितीय है ही, उनके गीत और मुक्त छंद की कई कविताऍ अपनी लय-प्रवाह और समग्र प्रभाव मे अद्वितीय हैं। मसलन् 'आज मैं अकेला हूॅ/अकेले रहा नही जाता', 'यो ही कुछ मुसकाकर तुमने/परिचय की यह गॉठ लगा दी', 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'नगई महरा'...आदि कविताऍ। प्रतीक और फन्तासी से अलग, नितान्त वस्तुमयता और सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक त्रिलोचन की खासियत है।

त्रिलोचन ने सबसे ज्यादा 'सॉनेट' लिखे हैं, इतने ज्यादा और ऐसे कलात्मक कौशल के साथ कि हिन्दी जगत् मे सॉनेट और त्रिलोचन एक दूसरे की पहचान बन गये है। वे चौदह पंक्तियो के इस विजातीय काव्यरूप मे जातीय छद 'रोला' का ऐसा सयोग घटित करते है जो अद्वितीय है। तुक-विधान और सॉनेट के चरणों का विभाजन करने मे उन्होने पेटार्क, शेक्सपियर और मिल्टन की रचना-पद्धतियॉ अपनायी है। कठिन काव्यानुशासन के निर्वाह के बावजूद बोलचाल की भाषा और वाक्य-विन्यास को लेकर त्रिलोचन ने जिस सादगी से 'सॉनेट' के शिल्प का निर्माण किया है, वह हिन्दी मे अद्वितीय है।

पूरी प्रगतिशील काव्यधारा के बीच त्रिलोचन की यह विशिष्टता है कि उनमे आवेगमयता या जुझारूपन और क्रान्ति-कथन का काव्य-स्वभाव नहीं मिलता। उनकी कविता ऊपरी तौर पर शान्तमुखी है, मगर उसमे भीतरी उद्वेलन और हलचल मौजूद है। शायद ऐसा इसलिए भी है क्योंकि उनकी कविता की "भाषा की लहरो में जीवन की हलचल है,/ गति मे क्रिया भरी है और क्रिया में बल है।" (दिगंत, पृ० 67) जीवन की विषम परिस्थितियो मे भी व्यक्ति में धैर्य, जिजीविषा और जीवन-आस्था को बनाए रखना त्रिलोचन का काव्य-स्वभाव है। उनकी कविताऍ विषम परिस्थितियों मे जी रहे व्यक्ति के मन में जीने की ललक पैदा करती है, ताकि वह जीवन की लडाई को पूरे आत्मविश्वास के साथ जीतने और अपना जीवन सम्मान पाने का महत् उद्योग कर सके। उद्‌बोधन के स्वर मे उनका कहना है— "उठ, हियाव कर;/ अभी सामने सारा रास्ता पड़ा हुआ है।/ चमड़ा छिला, चोट काफी घुटनों को आई।/ मल कर पॉव झटक दे, चल फिर, नए भाव भर,/मानव है तू, अपने पैरो खड़ा हुआ है।' (उस जनपद का कवि हूॅ, पृ० 104)

त्रिलोचन एक ऐसे कवि है जो लम्बे समय तक उपेक्षित रहे। प्रगतिशील कवियो की 'मेरिट लिस्ट' मे भी उनका नाम काफी बाद मे दर्ज हुआ, और तब वे केदार और नागार्जुन के साथ प्रगतिशील कविता की 'त्रिमूर्ति' के रूप मे दर्ज हुए। आज जब मै त्रिलोचन जी के पूरे कृतित्व पर नज़र डालता हूॅ तो वे तथाकथित प्रयोगवादी, प्रगतिवादी, नयी कवितावादी, साठोत्तरी और अकवितावादी कवियो से भी अलग खडे दिखते है। भाव, भाषा, शैली-शिल्प या अभिव्यक्ति विधान— हर तरह से, हर दृष्टि से। उनकी कविता की सृजनात्मक उपलब्धियो की 'तलाश' का एक विनम्र प्रयास यहॉ प्रस्तुत है। मेरे इस प्रयास को मूर्त रूप देने में आदरणीय विद्वान आलोचक नामवर सिह, परमानन्द श्रीवास्तव, विश्वनाथ त्रिपाठी, रामविलास शर्मा, मैनेजर पाण्डेय, भगवान सिह, नन्दकिशोर नवल, गोबिन्द प्रसाद, विष्णुचन्द्र शर्मा और कवि श्री मुक्तिबोध, मलयज, शमशेर, केदारनाथ सिह, राजेश जोशी, अरूण कमल आदि के समीक्षा-लेखो ने अकथनीय योगदान दिया है। त्रिलोचन के कृति-व्यक्तित्व की 'तलाश' का कार्य पूरा हो गया है, ऐसा कहना तो उचित नहीं। इस तलाश मे यदि मेरे 'ज्ञान' की सीमा आडे आई हो और कुछ अनुचित एव अनपेक्षित आ गया हो, तो उसके उत्तरदायित्व से मै बरी नहीं।

पुनः एक बार मैं उन तमाम रचनाकारों, साहित्य-चिंतकों एवं विद्वानो का हृदय से आभारी हूॅ जिनके सुचिंतित लेखन से गुजरकर विवेच्य विषय विशेष के सदर्भ में मेरी समझ थोड़ी विकसित हो सकी है। इस समय अनायास ही, कवि अरूण कमल की ये पक्तियॉ याद हो आती हैं—

'अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगो का
अपनी केवल धार।'

उचित नही लगता (सकोच भी है) कि जिन गुरूजनो से सीखा, कुछ जाना, उनके प्रति आभार प्रकट करूॅ। वे मेरे गुरू है, क्या गुरूजनो के प्रति 'आभार' प्रकट किया जा सकता है। श्रद्धेय गुरूवर प्रो० दूधनाथ सिह (जिन्होंने मुझ जैसे 'पत्थर' को तराशकर अपनी इच्छानुरूप 'चेतस्' रूप दिया), माता-पिता, बहन एवं अग्रज आलोक कुमार सिह तथा कुछ अनन्य मित्रों की प्रेरणा व प्रोत्साहन के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था।

इलाहाबाद

अजीत प्रियदर्शी

—(अजीत प्रियदर्शी)

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना

अध्याय एक :

त्रिलोचन का जीवन-सघर्ष एव व्यक्तित्व — 1

(1) जीवन-सघर्ष

(11) व्यक्तित्व विश्लेषण

अध्याय दो :

त्रिलोचन का काव्य संसार — 42

अध्याय तीन :

त्रिलोचन की काव्य-संवेदना के अन्त स्रोत और उनका काव्य-समय — 85

अध्याय चार :

हिन्दी कविता की जातीय चेतना और त्रिलोचन की कविता — 148

अध्याय पाँच :

त्रिलोचन का भाषा-ससार, भाषिक सरचना और छद विधान — 192

(1) भाषा-संसार

(ii) भाषिक संरचना

(111) छंद-विधान

अध्याय छह :

त्रिलोचन की कविता में सहजता का आलोक और कलात्मक विन्यास का नवोन्मेष — 246

अध्याय सात :

अपनी समकालीन कविता के बीच त्रिलोचन की अद्वितीयता का कारण और सदर्भ — 286

उपसंहार : एक नवीन कवि- व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति — 345

सदर्भ ग्रन्थ सूची — 351

1

त्रिलोचन का जीवन संघर्ष एवं व्यक्तित्व

उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र मे सुल्तानपुर नाम का जिला है। इस जिले के कटघरा पट्टी गॉव के चिरानीपट्टी पुरवे में वत्सगोत्रीय रघुवंशी क्षत्रीय कृषक परिवार में त्रिलोचन शास्त्री का जन्म भाद्रमास, शुक्ल पक्ष, तृतीया तिथि सोमवार संवत् 1974 वि., तदनुसार 20 अगस्त 1917 ई. को हुआ। त्रिलोचन का जन्म नाम वासुदेव सिंह है। यह नाम उनकी बुआ (यानी 'दादी' रजासी या राज्यश्री देवी) द्वारा दिया गया और गाँव के लोग उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। बाद में वह त्रिलोचन हुए। दरअसल छः-सात साल की उम्र में ही बालक वासुदेव की कुशाग्र बुद्धि और विलक्षण स्मृति-शक्ति को देखकर उनके आरम्भिक शिक्षा काल के संस्कृत के गुरु पं० देवदत्त त्रिपाठी ने उनका नाम 'त्रिलोचन' रख दिया और निर्देश दिया कि 'त्रिलोचन' नाम के साथ जातिसूचक शब्द 'सिंह' कभी मत जोड़ना। स्वयं गुरु श्री देवदत्त अपने नाम के साथ अपनी जाति सूचक 'त्रिपाठी' शब्द नही लिखते थे। लगभग 1934-35 में जब त्रिलोचन जी ने लाहौर से संस्कृत की शैक्षणिक उपाधि 'शास्त्री' धारण किया तो अपने नाम के साथ 'शास्त्री' लिखना शुरु किया। 'त्रिलोचन शास्त्री' नाम से ही वे साहित्य जगत मे आये और चर्चित हुए। अब तो कम ही लोगो को यह मालूम है कि त्रिलोचन शास्त्री का मूल नाम वासुदेव सिह है।

त्रिलोचन जी के पिता का नाम बाबू जगरदेव सिंह था (जगरदेव सिंह के पिता का नाम बलिराज सिह और माता का नाम 'रजासी' या 'राज्यश्री' देवी था)। उनके पुण्यात्मा, सच्चरित्र, धार्मिक स्वभाव और बड़े-बड़े दाढ़ी-बाल के कारण गाँव वाले उनको 'बैरागी बाबू' भी कहते थे।[1] वे अपने तीन भाइयों मे सबसे बड़े थे। वे सात फीट तीन इंच लम्बे और अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट शरीर के थे। गॉव के लोग कहते हैं कि जो काम दस आदमी मिलकर करेगे उसे वो अकेले कर देते थे। कुश्ती लड़ने और लाठी चलाने मे अपने इलाके में उनका दूर-दूर तक नाम था। एक बार उन्होने बीस-पच्चीस लठैतो से घिर जाने पर अपने अद्भुत लट्ठ सचालन और साहस से लड़ते हुए सभी को मार भगाया था और अपने छोटे से पुत्र वासुदेव की रक्षा भी की थी।[2]

बाबू जगरदेव सिंह सज्जन स्वभाव के वैष्णव, धर्म-कर्म मे रत पक्के रामभक्त थे। वे झगड़े झंझट मे भरसक न पड़ते। पड़ते तो उसे सुलझाने के लिए यथा संभव हर किसी

की सहायता करते। छल-कपट से दूर रहते। सबसे समान व्यवहार करते। बहुत पढ़े-लिखे तो नही थे, पर अपने गुरु (पं० देवदत्त त्रिपाठी) की सहायता, अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय से पढ़ने-लिखने मे सामान्य गति उन्होंने प्राप्त कर ली थी। 'रामचरितमानस', 'विनय पत्रिका' के साथ-साथ संस्कृत के कुछ ग्रन्थो का भी वे अध्ययन करते थे। वे गॉव में जाकर 'रमायन' (रामचरितमानस) बांचा करते थे, जिससे उन्हे यश और सम्मान दोनों मिला। धार्मिक ग्रन्थों में रुचि और उनके नियमित पाठ का उन पर असर होता गया। उनमे वैराग्य भाव बढ़ता गया। संसार मे लिप्त रहते हुए भी वे उससे दूर रहे।[3] गॉव के सभी लोग उनको 'संत आदमी' मानते थे। 'नगई महरा' ने त्रिलोचन से कहा भी—

'अब ऐसे आदमी दिखाई नही पड़ते
धरम जान कर रहे धरम किया,[4]

त्रिलोचन अपने पिता से बहुत प्रभावित थे। उन्होने अपनी एक कविता मे पिता के कर्मठ, परोपकारी और सात्विक व्यक्तित्व को बड़ी खूबी के साथ उकेरा है—

हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर वह, पित ; तुम्हारा,
एक चुनौती था मनुष्य की ऊँचाई के
लिए . जिन्हें आवश्यकता थी उन्हें सहारा
देते तुम को देखा था। निशान काई के
मानस पर थे नहीं तुम्हारे, तुम पौसाला
देते थे अपने बल पर, गर्मी के दिन में
अहरी नित्य चलाते थे. झेल कर कसाला
परहित करते थे। विचारता हूँ मै किन मे
गिनूँ तुम्हें—देवों मे या ऋषियों में। जो हो,
तुम महिमा-मंडित मनुष्य थे, पाट ताल को
खेत बनाया, मॅड़ई से घर किया, दिया धो
कल्मष दरिद्रता का, बस में किया काल को।
ज्ञान-पिपासा और धर्म से हुए यशस्वी
धीर-वीर गंभीर तपोधन और मनस्वी।

('उस जनपद का कवि हूँ', पृ० 15, प्रथम सं०-1981)

बाबू जगरदेव सिंह का विवाह जौनपुर जिले की केराकत तहसील के अखईपुर नामक गॉव में हुआ था। इनकी पत्नी का नाम पार्वती देवी था। गॉव के लोग उन्हें पनबरता या

परबत्ता कहते। जगरदेव सिह एव पार्वती देवी के तीन बेटियॉ और चार बेटे क्रमश· पैदा हुए। इनका क्रम इस प्रकार है—रामसरन सिह, रामफेर सिंह, मर्यादा, नन्हका, वासुदेव सिह (त्रिलोचन शास्त्री), उरेहा और अन्तिम भगवती सहाय वर्मा। इनमे से केवल दो अन्तिम पुत्र ही जीवित रहे, शेष अन्य बचपन मे गुजर गये। पैदाइश के कुछ समय बाद लोगो के कहने से वासुदेव सिह को बेच दिया गया ताकि वे जीवित रहें।[5] भगवती सहाय इनसे लगभग छः वर्ष छोटे थे (इनका निधन 9 अप्रैल 1992 को हुआ)।

बालक वासुदेव के मनोमस्तिष्क पर पिता के सज्जन, परोपकारी स्वभाव और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, वाचन व अन्य उच्च सस्कारों का गहरा असर पड़ा। पढ़ने मे वह होशियार निकले। कुशाग्र बुद्धि की वजह से उन्हे सब सहज ही याद हो जाता। पिता से सुनी तुलसी रामायण की चौपाइयॉ उनको जबानी याद थी। पॉच-छः साल की छोटी उम्र मे ही पिता ने वासुदेव को ईशावास्योपनिषद् और कठोपनिषद् के अनेक श्लोक याद करा दिया था। कबड्डी खेलते हुए वे इन्ही मंत्रो (श्लोकों) को बोलते थे। दादी से सुनी ढेरो कहानियॉ, लोकगीत एवं सूर, तुलसी, मीरा, कबीर के अनेक पद इन्हें याद थे। पिता 'बैरागी बाबू' अपने पुत्र 'वासुदेव' के मनस् में संतों का सा ज्ञान स्फुरित हुआ देखना चाहते थे। यही उनकी महती आकांक्षा थी। शायद इसी संकल्प के कारण बचपन मे ही 'वासुदेव' को उन्होने एक स्वामी जी की सेवा में सौप दिया था।[6]

त्रिलोचन के बचपन की शुरुआत अच्छी नहीं रही। पिता का प्यार कुछ ही दिन के लिए उनकी तकदीर मे बदा था। जब वे सिर्फ छह वर्ष के थे, तभी लगभग 1923-24 में फैले हैजे की बीमारी से पिता की मृत्यु हो गई। हैजे का प्रकोप जब उनके गॉव मे हुआ तो लोग मरीजों को छोड़कर भाग गए। ऐसे मे बाबू जगरदेव सिह गॉव में घूम-घूमकर यथासंभव रोगियों की देखभाल करते। उन्हें भी हैजा हो गया। पर वे ठीक हो गए। ठीक होते ही वे फिर सेवा कार्य मे लग गए। उनकी मॉ (रजासी देवी) को उनका यह काम ठीक नही लगता। वे उन्हें मना करतीं तो वे उनसे यही कहते, 'जगदम्बा रखना चाहेगी तो मुझे कुछ न होगा।' जगदम्बा शायद उन्हे इसी तरह उठाना चाहती थी। उन्हें दुबारा हैजा हुआ और वे चल बसे।[7] पिता की मृत्यु के समय वासुदेव सिह के छोटे भाई भगवती सहाय की उम्र लगभग छह मास थी।

त्रिलोचन की मॉ अवध की सीधी-सादी औरतों जैसी ही ठेठ ठकुराइन थी। बालक वासुदेव पर अपनी मॉ का अतुल प्यार था। मॉ चाहती थीं कि बेटा शक्तिशाली बने, जिन्दगी

की कठिन परिस्थितियो से जूझने लायक बने। मॉ की ऑखो में भविष्य का नक्शा 'वासुदेव' की मजबूत जवानी की कर्मठता से बॅधा हुआ था, मात्र। अवध की वह श्रद्धेया, सीधी-सादी ठकुराइन सिर्फ इतना जानती थी कि जीवन संघर्ष के लिए शरीर में बल तो होना ही चाहिए, और कितना ही बल क्यो न हो, वह कम ही पड़ेगा। जवान लड़का जितना खायेगा, उतना ही उसमें बल आयेगा; सीधी सी बात, और उतना ही वह दुश्मन पट्टीदारों से निबट भी सकेगा, जिसकी आगे जरुरत थी। तो वह खासी रोटियॉ इनके सामने रख देती और कहती कि बच्चू, अगर एक भी छोड़ी तो समझ लो। ये कभी-कभी खाते-खाते बुरी तरह ऊब जाते थे, तो उसका एक ही इलाज था। मॉ, उनको उल्टा कर पेड़ से टॉग देती थी, और बे भाव की उन पर पड़ती थी। सोचिये, वह कैसी मॉ रही होगी, जो अपने बेटे को सचमुच फौलाद का ही बना हुआ देखना चाहती थी, उससे कम नही।[8] मॉ के इस अतुल प्यार का परिणाम इनके बचपन में ही दीख पड़ता था। बचपन मे ही वे बलिष्ठ और स्थूल शरीर के थे।

त्रिलोचन जी के पिता की इच्छा थी कि उनको पढ़ावें, लेकिन उनकी मॉ बेटे (वासुदेव) को पढ़ाने के पक्ष मे नही थीं। छह साल की छोटी अवस्था मे पिता के गुजर जाने के बाद उनके घर का कृषि आधारित आर्थिक ढॉचा चरमरा उठा। उनके दादा तो काफी पहले ही गुजर चुके थे, और फिर काका और पिता भी गुजर गए। अतः उनके घर मे दादी, मॉ और काकी—तीनों ही विधवा थी। उनकी मॉ ने यह सोचा कि पिता के अभाव में इसके कार्यकलाप की उचित देखरेख करने वाला कोई नहीं है। अतः यह यहॉ रहकर कहीं बहेतू और ढीठ न हो जाय। इसलिए मॉ ने उन्हें लगभग छह-सात साल की उम्र मे ननिहाल अखइपुर (जौनपुर) अपने भाई के साथ भेज दिया। उनकी मॉ ने अपने भाई से कहा कि, इससे घर का और खेती-बारी का काम लीजिए ताकि इसे कड़े काम करने की आदत बन जाए। ननिहाल मे उनसे काफी काम लिया जाता था और उनकी पढ़ाई पर कम ध्यान दिया जाता था। बड़े से दुआर की साफ-सफाई करना, झाड़ना-बुहारना, मवेशियो के गोबर को दूर खेत में डालना, कुॅए से पानी खींचकर घर में इकट्ठा करना आदि बहुतेरे कड़े कामो को उन पर डाल दिया गया था, एक मजदूर जैसा। इन कामों में चूक या आनाकानी होने पर, उन पर मार भी पड़ जाती थी। एक दिन किसी काम को ना करने पर मामा के हलवाले ने कहा कि 'टुकड़खोरी करते हो और काम नही करोगे।' सात-आठ साल की छोटी अवस्था में ही वासुदेव को हलवाले की यह बात लग गई और उनके बाल स्वाभिमान को ठेस लगी। यह स्वाभिमान पर लगी ठेस तो थी ही, साथ ही अन्य दूसरे सखियो और

प्रतिकूलताओ को झेल पाना भी उनकी सहन शक्ति के बाहर हो चला था। अतः वे बिना किसी से कुछ कहे, चुपचाप ननिहाल से निकलकर गॉव जाने के विचार से चल दिये। उनके पास पैसे नही थे और उन्हे गॉव का रास्ता भी मालूम नही था। अतः वे रेलवे लाइन के किनारे-किनारे चलते-चलते, भूख-प्यास का वेग बर्दाश्त करते हुए, ताल का पानी पी-पीकर दो-तीन दिन मे रास्ता तय करके गॉव पहुँचे। गॉव पहुँचने पर मॉ ने पूछा कि भाग कर आ रहे हो, तब उन्होने कहा कि हॉ, क्योंकि वहॉ मन नही लगता था। इस पर मॉ नाराज हुई और कहा कि, मैने इसे घर-बाहर का काम सीखने के लिए भेजा था; अगर इसके मामा आये तो उनके साथ इसे फिर भेज दूँगी। इस पर उनकी बुआ (दादी) ने कहा, 'अब यह नही जाएगा', तो उनकी मॉ ने कहा कि 'यहॉ रहकर यह बहेतू हो जाएगा।' बुआ ने कहा कि 'मै तुम्हारी एक बात नही मानूँगी अब वे इसे ले जाने के लिए आये भी तो इसे नही भेजूँगी। देखो, कितना दुबला हो गया है।' उनके मामा आये और उन्हे ले जाने के मुद्दे पर उनकी मॉ, बुआ और मामा के बीच काफी बहस होती रही। अन्त मे, बुआ ने वासुदेव की ओर हाथ उठाया और कहा, 'इससे पूछ लो कि यह जाना चाहता है या नही।' मामा के पूछने पर उन्होने भयहीन होकर कहा कि 'नही'। इस पर सारी बात खत्म हो गई और मामा एक सप्ताह रहकर लौट गए। मामा के लौट जाने के बाद वासुदेव ने अपनी बुआ (दादी) से वहॉ की सब बाते बता दी। तो दादी ने कहा कि, अब तुम यहीं रहकर पढ़ोगे, वहॉ जाने की कोई जरुरत नही है।[9]

वासुदेव लगभग दो साल तक अपने ननिहाल मे रहे थे और वहॉ के 'इमदादी स्कूल' (जो दूसरे दर्जे तक था) मे ककहरा और उर्दू के अक्षरो का ज्ञान और अक्षरो को मिलाकर पढ़ना सीख चुके थे। अपने ननिहाल मे ही उन्हे अहीरों के बिरहे और गॅवई लोक कवि जगरोपन की कविता से प्रेरणा मिली और वे भी कुछ तुकबन्दी करने लगे थे। उनकी मॉ उनकी पढ़ाई के पक्ष में नहीं थीं क्योंकि उनके मन में यह अंधविश्वास समा चुका था कि पढ़ने वाले बच्चे बीमार पड़कर जल्दी ही मर जाते है, बचते नहीं। क्योंकि गॉव और पड़ोस के पढ़ने वाले कुछ बच्चों के साथ ऐसा हादसा हुआ भी था। लेकिन उन बच्चों की मृत्यु का कारण, उनकी पढ़ाई न होकर मलेरिया की बीमारी थी। क्योंकि चिरानीपट्टी गॉव तीन ओर से कपरिया ताल से घिरा था। अतः गाँव में मच्छरो की अधिकता थी और उनके काटने से मलेरिया हो जाता, फिर बच्चे, जवान मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। लेकिन गॉव में यह अंधविश्वास फैला हुआ था कि पढ़ने वाले बच्चे अकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं। चूँकि वासुदेव से पहले के बच्चे बचपन में ही गुजर चुके थे अतः उन्हे पढ़ने से

रोका गया। किन्तु उनका बचपन से ही यह स्वभाव था कि जिस काम के लिए उन्हें मना किया जाता, वह काम वे अवश्य करते। अत: वे छिपकर स्कूल जाते; पता लगने पर पिटाई भी होती। फिर पढ़ाई के प्रति उनकी लगन को देखकर बुआ ने उनकी पढ़ाई का समर्थन किया और वासुदेव को पढ़ने के लिए गॉव से दो मील दूर मुड़िलाडीह कस्बे मे स्थित प्राइमरी पाठशाला भेजा गया। फिर भी, मॉ उसकी पढ़ाई बन्द करने के पक्ष मे थी। वह चाहती थी कि वासुदेव घर का काम संभालना सीख ले और भविष्य के कटु जीवन-संघर्षो के लायक बने। लेकिन उसकी बुआ उसकी पढ़ने की लगन को देखकर उसे पढ़ाने पर तुली थी और आर्थिक तंगी मे भी किसी तरह कतर-व्योंत करके उसकी पढ़ाई जारी रखना चाहती थी। त्रिलोचन ने स्वयं इस सम्बन्ध में अपनी एक कविता "जीवन का एक लघु प्रसंग" में लिखा है कि आरम्भिक शिक्षा-काल में एक दिन अगले दर्जे की नयी कि़ताबे खरीदने के लिए पैसा मॉगने पर बुआ ने कहा कि 'अभी वही पढ़ो, फिर पैसे दूॅगी, कुछ दिन बीते, ले जाना नई लेना।'

तब तक मॉ आई और उसने कहा : रोज़-रोज़ कहती हूँ, / पढ़-लिख कर क्या होगा, पढ़ना अब बन्द करो इसका, घर काम करे, / पढ़ना हमारे नही सहता पर बात मेरी कौन यहॉ सुनता है। / रान-परोसी कहते है, लड़का इन्हे भारी है, इसी राह खो रहे है।[10]

'पढ़ना अब बन्द करो इसका'—मॉ का यह कथन एक झन्नाटे के साथ जैसे सभावनाओ के सारे द्वार बन्द कर दे रहा हो। यह उस समाज का कटु सच है जहॉ रोटी और अंधविश्वास की समस्या सुरसा के मुॅह की तरह मुॅह बाये खड़ी है। जहॉ भविष्य के चेहरे से हॅसी और मासूमियत, हाथ से किताबें और खिलौने छीनकर 'काम-काज' पकड़ा दिया जाता है। यह है एक औसत हिन्दुस्तानी परिवार के बच्चे की नियति। लेकिन त्रिलोचन इस नियति को चुपचाप स्वीकार कर नही चल पड़ते अपितु 'बूआ' के रूप में संभावनाओं के द्वार को खोलते है—

बूआ ने कहा : धन्य बुद्धि, जो नही पढ़ते, वे सब क्या अमर है?

* * *

दुलहिन (मॉ को वे यही कहा करती थीं) इस बच्चे को
मैने श्रद्धा से, प्रेम से, निष्ठा से,
विद्या को दान कर दिया है,
जानबूझ कर दान कैसे फेर लूॅ,
ऐसा कभी नहीं हुआ—

विद्या माता ही अब इसको निरखें-परखें।
रक्षा और पालन-पोषण करें।[11]

किताबे खरीदने के लिए घर से पैसे न मिलने पर ये मेले या त्यौहार के लिए मिले कुछ पैसों से कागज खरीदते और अपने सहपाठी से किताब मॉग कर उसे पूरी की पूरी उतार लेते।

मुड़िलाडीह के प्राइमरी स्कूल मे वासुदेव ने हिन्दी में नाम लिखा लिया और हिन्दी में पढ़ाई शुरु की। गॉव के एक पड़ोसी दादा जी के यह पूछने पर कि तुम 'उर्दू पढ़त हौ कि हिन्दी?' वासुदेव ने जवाब दिया—'हिन्दी'। इस पर उस दादा जी ने कहा—'अच्छा किए ह, पराये घर जाए के बा'। बालक वासुदेव ने उनके इस कथन का आशय दादी से पूछा तो दादी ने कहा कि, बाबा ने कहा है, तुम हिन्दी मे पढ़ रहे हो, जिसे लड़कियॉ पढ़ती है। तुम पर उन्होने व्यग्य किया है। फिर वासुदेव ने दादी के कहने पर, दूसरे दिन स्कूल जाकर उर्दू के अध्यापक मौलवी साहब (अब्दुल रहीम) से कहा कि, 'मेरा नाम हिन्दी से काटकर उर्दू में कर दीजिए।' इस बात को मौलवी साहब टालना चाहते थे, किन्तु इनकी जिद के आगे हारकर उन्होंने कहा कि, 'चूँकि हिन्दी में बहुत कम लड़कों का नाम लिखा गया है; अतः तुम अपना नाम तो 'हिन्दी' में रहने दो और 'उर्दू' वाले लड़कों के साथ बैठकर उर्दू पढ़ो।' इस प्रकार मुड़िलाडीह प्राइमरी स्कूल में उन्होंने उर्दू की पढ़ाई शुरु की। उर्दू के 'अल्ताफ क्लास' मे बैठने पर उन्होने उर्दू की पहली किताब को दो-तीन दिन में ही समाप्त कर दिया। उनकी स्मरण शक्ति और सोंचने की शक्ति बहुत अधिक थी। कक्षा मे जितना पढ़ाया जाता था, उसके आधार पर वे आगे की भी तैयारी कर लेते थे। जिस दर्जे मे वे पढ़ रहे होते, उससे आगे दर्जे की भी किताबें पढ़ते थे। वे बताते है—'मैं पढ़ने का आदी था प्रतिदिन। यह नही कि डॉट खायें कि पढ़ो तो पढ़ें; मुझे तो डॉटने वाला भी कोई नहीं था। मुझे पढ़ने की सनक सी थी। रास्ते में पड़ा, छपा हुआ कागज (चाहें उर्दू में हो या हिन्दी में) मिल जाता था तो मै उसे उठाकर पढ़ता था।'[12] पढ़ने-लिखने की इसी धुन के कारण तो चम्पा को उनसे कहना पड़ा—

'तुम कागज ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है,।

('धरती', पृ० 88 द्वि० सं०)

वासुदेव ने जब दो-तीन दिन में ही उर्दू की पहली किताब पढ़ डाली तो मौलवी साहब

ने समझा कि यह तो उर्दू पहले से थोड़ा-बहुत जानता था। अतः उन्होंने उसे कुछ-एक महीने बाद ही अगली कक्षा मे बैठने के लिए कहा। फिर उन्होने उससे उर्दू में नकल लिखकर लाने को कहा। वासुदेव ने जब उर्दू का नकल लिखकर उन्हें दिखाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। फिर उसने उनसे उर्दू के साथ-साथ फारसी भी पढ़नी शुरु कर दी। वासुदेव ने प्राइमरी मे पढ़ते समय ही बड़ौदा (गुजरात) और बंगाल से आये हुए लड़को से सहायता लेकर उनकी गुजराती और बंगाली भाषाएँ सीख लिया। प्राइमरी मे पढ़ते समय ही इन्होने कुछ पढ़े-लिखे लोगो के सग-साथ से अग्रेजी वर्णमाला और थोड़े से अंग्रेजी शब्दो के उच्चारण और अर्थ भी जान लिया। इसी समय उन्हें पास के गॉव में रहने वाले संस्कृत के विद्वान पं० देवदत्त त्रिपाठी से संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा मिली, और वे उनके घर संस्कृत पढ़ने जाने लगे। पंडित जी ने उन्हें संस्कृत व्याकरण के मूल तत्त्व से परिचित कराया।

लगभग सात-आठ साल की छोटी अवस्था में ही वासुदेव अपने घर से बिना किसी को बताये, रेल की पटरी पकड़कर पैदल चलते हुए महीने भर में दिल्ली पहुँचे थे। राह में महिलाएँ मिलतीं और इन्हे बड़े स्नेह से पेट भर खिलाती। दिल्ली पहुॅच कर इन्हे बच्चों को पढ़ाने का काम मिल गया और महीने मे चार-छह रुपये मिलने लगे। वहॉ ये एक मजदूर के परिवार के साथ रहते और होटल में खाते थे। दो-तीन महीने दिल्ली रहकर ये वापस गॉव आये और बचाये हुए पैसे दादी को दिये तो दादी बड़ी प्रसन्न और चमत्कृत हुई। इस तरह ये हर साल दो-ढ़ाई महीने दिल्ली मे ट्युशन से पैसे कमाकर घर चले आते और अपनी पढ़ाई जारी रखते। इसी अर्से मे स्वामी भगवान नामक एक सन्यासी के निर्देशन मे ये क्रान्तिकारी गतिविधियो में 'मैसेजर ब्याय' के रूप में काम करने लगे, जबकि इनकी आयु नौ-दस बरस के आस-पास थी। उसी दरम्यान जबकि ये क्रान्तिकारियों से प्रभावित होकर 'फॉसी पर झूल गया मर्दाना भगत सिंह' गाते थे, तो उन्होंने पुलिस का पहला डंडा खाया।[13]

बचपन से ही पढ़ने में वासुदेव सिंह बहुत होशियार थे। अतः अध्यापक इनसे बहुत प्रसन्न रहते। एक दिन संस्कृत के गुरु पं. देवदत्त कुछ लड़कों को संस्कृत पढ़ा रहे थे। व्याकरण का 'माहेश्वर सूत्र' उन्होंने पढ़ाया और रटकर याद करने के लिए छात्रों से कहा। सबने रटना शुरु किया। सूत्र कुछ कठिन था, इसलिए याद करने में समय लग रहा था। थोड़ी देर बाद गुरु जी ने देखा कि वासुदेव रटना छोड़कर खेल रहा है। वह बुलाया गया। गुरु जी को गुस्सा आ रहा था कि बिना याद किए यह खेलने लगा। लेकिन वासुदेव ने बिना कागज देखे ही उन्हे पूरा सूत्र अच्छी तरह से सुना दिया। तब गुरु जी को आश्चर्य

हुआ और यह पूछने पर कि इतनी जल्दी कैसे याद कर लिया, तो मालूम हुआ कि विश्लेष्ण करके, अर्थग्रहण करके, रटने के कारण उसे शीघ्र कंठस्थ हो गया। तब गुरु जी ने बहुत ही हर्ष और स्नेह के साथ उसकी पीठ पर हाथ फेरा। कहा जाता है कि 'त्रिलोचन' नाम भी उसी समय गुरु जी के द्वारा रखा गया था।[14]

गॉव की भोली-भाली लड़कियॉ और नौजवान, तथा अन्य लोग भी उनसे अक्सर अपने निजी पत्र लिखवाने आते रहते थे। और वह सरस, बहुत अच्छे-अच्छे पत्र, उनके लिए लिख देते थे। उन पर सबको बड़ा विश्वास था। और हर चीज, हर बात, हर गीत, हर कविता, हर श्लोक और छन्द, वार्ताएं की वार्ताएं, उन्हें सहज ही कंठस्थ हो जाती थीं।[15] गॉव में ये अपने पिता की तरह ही 'रामचरितमानस' बॉचने जाते थे, ज्यादातर छोटी जातियों के पास। इसी समय इन्होने नगई महरा, जो पढ़ा लिखा नही था, से पद्माकर, केशव, बिहारी, देव, सेनापति, भिखारी ठाकुर, लछिराम भट्ट आदि कवियों की ढेरों कविताएँ सुनी। उनके पूछने पर नगई ने बताया कि ये कविताएँ मैंने बालभट्ट कवि से उनका सेवक बनकर सुनी थी और मुझे ये याद हो गई।

मुड़िलाडीह प्राइमरी स्कूल से चौथा दर्जा पास करने के बाद वे दोस्तपुर के मिडिल स्कूल में दाखिल हुए, जो उनके घर से आठ मील दूर था। अत: वही पर उनके रहने का प्रबन्ध हुआ। इस सम्बन्ध में उन्होने लिखा है : 'दोस्तपुर मिडिल स्कूल के पिछवाड़े रामभरोस साहू का मकान था। इस मकान के बाहरी हिस्से में एक कमरा था, जिसके सामने लम्बा बरामदा था। बरामदे मे सात-आठ चारपाइयॉ उन छात्रों की पड़ी रहती थी, जो यहॉ पढ़ते थे। यही चन्द्रशेखर भट्ट आदि के साथ मैं भी था। कमरे में कोई रहता नहीं था, उसमें सभी अपना बक्सा रखते थे और बक्से में छह दिनों की खाद्य-सामग्री रहा करती थी। सभी लोग अपना-अपना खाना मिलकर बनाते थे। खाने के बाद साफ करके बर्तन भी कमरे में ही रख देते। यहॉ से किसी की कोई चीज कभी गायब नहीं हुई। रामभरोस साहू की पत्नी छात्रों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करती थी और अचार, चटनी वगैरह बिना मॉगे दिया करती थीं।[16] वहॉ पर मुझे वामन, ठाकुरो के लड़को ने कहा, तुम ज्यादा खाते हो। अपना खाना अलग पकाओ। फिर मैने रोटी बनाना सीखा, बहुत पतली न बहुत मोटी। मैं तब बीस खा लेता था। उन दिनों मै एक हजार बैठक दण्ड और सात सौ सपाट दण्ड रोज करता था।[17]

बचपन में उनकी मॉ उन्हें कहीं न्योता खाने नहीं जाने देती थीं। क्योंकि उनकी खुराक ज्यादा होने की वजह से मॉ को डर था कि इससे समाज में बदनामी तो होगी ही, बच्चे

को दूसरों की नजर भी लग जाएगी। माँ के अतुल प्यार और वासुदेव के भोजन पर विशेष ध्यान रखने का परिणाम इनके बचपन में ही दीख पड़ता था। एक दिन स्कूल के किसी अकड़बाज लड़के ने कुश्ती में उन्हें पटक दिया। कुछ कमजोर ये भी नहीं थे, जोर करते थे। वह लड़का भी करता था। राज मालूम किया, तो मालूम हुआ कि उस हरीफ ने सीने और बाहुबल के अलावा अपनी खोपड़ी भी बहुत मजबूत कर ली थी। वह प्रतिद्वन्द्वी को गिराकर, सिर से सिर लगाकर, उसे वहीं दबाये रखता था और हरीफ पस्त हो जाता था। त्रिलोचन ने क्या किया? धीरे-धीरे अपनी खोपड़ी को और कनपटी को इस तरह फौलाद बनाना शुरु किया कि, शुरु में कुछ ढेले या कच्ची ईटों को कनपटी से फोड़ने लगे (जैसा कि वह लड़का फोड़ चुका था)। मगर, बाद में हमारे वासुदेव सिंह पक्की ईंटे भी खोपड़ी पर फोड़ लेते थे। यह मश्क काफी कुछ हो जाने पर उन्होंने उसी लड़के को ललकारा। ये तो कुश्ती को तपस्या बना ही चुके थे; वह लड़का सारे हमजोलियो के बीच में शान से आगे बढ़ा, इन्हे हरीफ समझता हुआ। इन्होने हुमक के ललकारा। फिर कुश्ती मे एकदम जो उसे गिराकर, उसकी कनपटी को, अपनी कनपटी से दबाया तो वह लगभग बेहोश ही हो गया। उसके बाद से ठाकुर वासुदेव सिंह की धाक जम गई।[18]

सन् 1929-30 मे दोस्तपुर मिडिल स्कूल से त्रिलोचन ने उर्दू मे 'आला काबिलियत' के साथ मिडिल पास किया। मिडिल तक की पढ़ाई में उनकी फीस माफ होती रही थी। दोस्तपुर मिडिल स्कूल मे पढ़ते समय ही इन्होनें रीतिवादी भावभूमि के कवि बालभट्ट, जो अपने लड़के मुनीश भट्ट को काव्यशास्त्र पढ़ाने दोस्तपुर आते थे, से सुनकर ही छन्द, अलंकार और रसों का अच्छा ज्ञान पा लिया। मिडिल स्कूल में पढ़ते समय ही इन्हें हिन्दी की नयी काव्यधारा का कुछ परिचय मिला। मिडिल में पढ़ते समय ही साहित्यानुरागी श्री राम शर्मा प्रेम के माध्यम से इन्हे पंत की छपी हुई तमाम कविताएँ पढ़ने को मिली। इसी अरसे मे उनका परिचय बलुआ पौधन गाँव के कवि रामकेवल मिश्र से हुआ और उन्होने त्रिलोचन को अपनी समृद्ध लाइब्रेरी मे अध्ययन की अनुमति दे दी। इस तरह त्रिलोचन को हिन्दी साहित्य की नयी भावभूमि का काफी परिचय मिल गया। जहाँ तक त्रिलोचन का कविता-सृजन शुरु करने का सवाल है, तो ये सात-आठ साल की अवस्था में ही होली में गाये जाने वाले चौतालों को सुनकर खुद भी चौताल रचने लगे थे। सागर विश्वविद्यालय में मीना व्यास से बातचीत करते हुए उन्होंने बताया कि—'बचपन से ही मैं 14 मात्रा के छन्द बनाकर गाया करता था, और वे छन्द अप्रकाशित तथा अपठित होने से गाँव की सभा मंडली उन्हे अत्यन्त उत्साह के साथ गाया करती थी। मैं भी गाता था। मेरे पास अनेक गीत-गारी की

किताबें थी, जिन्हें मै छिपा कर रखता था। मेरी माता जी हालॉकि पढ़ी-लिखी तो नहीं थीं, किन्तु गॉव के कुछ छोकरो से मेरी शिकायत सुनकर वे मेरी किताबें जला दिया करती थीं। मै आल्हा भी गाया करता था और सोचता कि, मै आगे चलकर आल्हा का ही संवरण करूँगा। अत. उसी धुन मे नए छंद रचकर भी गाया करता था।[19] उनकी आधुनिक ढंग की पहली कविता शायद समस्या-पूर्ति सम्बन्धी थी। इस सम्बन्ध मे एक साक्षात्कार मे उन्होने बताया कि, 'एक बड़ी उम्र के सज्जन मेरे ननिहाल के थे। वे लिखते नही थे, किन्तु कविता पसन्द करते थे। उन्होने मुझे दो समस्याएँ दी, जिन पर सात कवित्त मैने लिखे। 'बसन्त' विषय पर मैने एक लम्बी कविता लिखी। यह 1927-28 का समय था, जब मै दस वर्ष का था। मेरी कविता उन्होने अपने नाम से एक कवि सम्मेलन में पढ़ी, जहॉ एक सौ रुपये का प्रथम पुरस्कार उन्हे मिला। बड़ी प्रशंसा भी मिली। वे जिले के श्रेष्ठ कवि माने गये। लौट कर आये तो पचास रुपये मुझे दिये, पचास रुपये अपने पास रखे। दूसरे लोगो ने भी मेरी कविताएँ लेकर अपने नाम से पढ़ी। मेरा उत्साह बढ़ता गया।'[20] ग्यारह-बारह साल की उम्र में त्रिलोचन ने 'फ्री वर्स' लिखना शुरु किया। एक मुलाकात में कवि ने याद करके अपनी एक आरम्भिक कविता की कुछ पंक्तियॉ सुनाई थीं—

'प्रभु उन्हे दण्ड दो
जो लोग चलते नही
और कहते है चलता हूँ
वे तुम्हारी शक्ति का अपमान करते है।
प्रभु उन्हे दण्ड दो
जो लोग देखते नही
और कहते हैं, देखता हूँ
वे तुम्हारी ज्योति का अपमान करते है,
प्रभु उन्हें दण्ड दो!'

मिडिल स्कूल की शिक्षा-काल में ही ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में (सन् 1929 में) त्रिलोचन जी का विवाह कर दिया गया। उनकी पत्नी जयमूर्ती देवी की आयु उनसे चार-पाँच साल अधिक थी। फेरे लगने के समय तक सो जाने की वजह से इन्हें नाऊ ने गोद मे लेकर फेरे लगवाये थे। शादी हुई और पत्नी जयमूर्ती देवी इनके घर आई। उस समय पत्नी के विषय मे उनकी धारणा थी कि वह घर में काम-काज करने के लिए लाई जाती है। पति-पत्नी के सम्बन्धो से वे पूरी तरह अनजान थे। वे बताते हैं—'हमारी शादी को पाँच-छः

वर्ष हो गये थे। मैने पत्नी को कभी देखा भी नही था, उसके घूँघट मे रहने और अपने शर्मालूपन की वजह से। घर के लोग कहते थे कि ये राह पर न आया तो इसके छोटे भाई (भगवती सहाय) से इसकी पत्नी का ब्याह करवा देगे। राह पर कैसे आया जाता है, मैं तब न जानता था।'[21] फिर गॉव के एक कहार ने इन्हे पति-पत्नी के सम्बन्धो के बारे मे समझाया। इनकी पत्नी जयमूर्ती देवी पूरी तरह निरक्षर थी, पर विरासत मे संगीत का वातावरण उन्हे अवश्य मिला था। जयमूर्ती देवी के पिता लक्ष्मी सिंह उस जमाने के मशहूर पखावजी थे। जयमूर्ती देवी बड़ी सात्विक और दृढ़ स्वभाव की गुणशील ग्राम्या थी। इस कारण त्रिलोचन जी पर उनका अच्छा नियंत्रण रहा।

मीडिल पास करने के बाद अर्थाभाव के कारण उनकी पढ़ाई मे कुछ व्यवधान आया। फिर उन्होने दोस्तपुर से दो मील दूर स्थित एक 'वोकेशनल हाईस्कूल' मे दाखिला लिया। यहॉ हिन्दी या उर्दू के साथ मिडिल पास लड़को को अग्रेजी के 'स्पेशल क्लास' मे दाखिला दिया जाता था और तीन साल की अंग्रेजी की पढ़ाई को एक साल मे पढ़ा दिया जाता था। यहॉ से साल भर में उन्होने अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। यहॉ पर उन्होंने पढ़ाई के साथ-साथ दस्ताने बनाना और सूत की जालीदार बनियान बनाना भी सीख लिया। क्योंकि यहॉ पर लड़को को आत्मनिर्भर बनाने हेतु अनेक तरह का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। इस समय ये गॉव के समीप के संस्कृत के विद्वान पं० देवीदत्त से संस्कृत व्याकरण और अन्य महत्वपूर्ण ग्रंन्थो का अध्ययन करते थे। जातिगत ऊँच नीच का भेदभाव वे बचपन से ही नहीं मानते थे। बचपन मे पढ़ाई से बचे हुए समय को छोटी जाति के लोगो, हरिजनों के बीच गुजारना उन्हें अच्छा लगता था। छोटी जातियों के बीच जाकर 'रामचरितमानस' भी बॉचते थे। बचपन मे, जब ऊँची जाति वाले लोग नीचे तबके के लोगो से कोई हेलमेल न रखकर उन्हें हेय और घृणा की दृष्टि से देखते थे तो वे 'नगई कहार' के घर जाकर उसे 'रमायन' बॉच कर सुनाते थे। अछूतों, गरीबो के घर आना-जाना, उनके बीच बैठने-बतियाने और पढ़ाने, 'रामचरितमानस' बॉचने का सुख अद्वितीय था। और फिर कबीरपंथी नगई भगत के कहन-रस में डूबने का मोह भी उन्हे उनके यहॉ ले जाता। असल मे 'गॉव मे रहते समय एक ही त्रिलोचन, गॉव का 'छोटा मास्टर', 'चमारो का संगठनकर्ता', 'टूटे सयुक्त परिवार का पढ़ाकू युवक', और 'पतझर या वसन्त का कवि'—यानी बहुत सा त्रिलोचन बन गया था।'[22]

त्रिलोचन को पढ़ने की सनक सी थी। इसके लिए उन्होंने अपनी रातों की नीद हराम

की। इनकी पढ़ाई से घर वाले भी ऊब गये थे। लेकिन त्रिलोचन तो अपनी धुन के पक्के थे। पढ़ने की सनक ने उन्हें अवध से निकलने पर मजबूर कर दिया। पहले गॉवों मे अधिकतर मिडिल स्कूल ही हुआ करते थे (किसी-किसी गॉव में ही हाई स्कूल होता था)। आगे पढ़ने की इच्छा रखने वाले बालक गॉव छोड़कर शहर की राह लेते थे। यही त्रिलोचन के साथ हुआ। जब उनको लगा कि मिडिल के बाद की पढ़ाई और दुनिया-जहान का ज्ञान चिरानीपट्टी में रहकर पूरा नही हो सकता, तो ऐसी स्थिति में उन्होंने काशी जाने का निर्णय लिया।[23]

सन् 1930 मे अपने संस्कृत गुरु पं० देवदत्त जी के निर्देशानुसार वे संस्कृत के अध्ययन के लिए अवध से निकल कर काशी आये। काशी मे अपने संस्कृत अध्ययन के सन्दर्भ में त्रिलोचन कहते है–'वहॉ सस्कृत पढ़ने और पढ़ाने की एक बड़ी पुष्ट परपरा थी, जो किसी न किसी रूप मे आज भी है। संस्कृत के विद्वानो के साथ-साथ इस नगर मे सस्कृत के कई अच्छे पुस्तकालय भी थे। इनसे भी मैने लाभ उठाने की कोशिश की। उन दिनो बनारस मे व्याकरण के महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर शास्त्रार्थ हुआ करते थे। इससे छात्रो का पर्याप्त ज्ञानवद्र्धन होता था और व्यक्तिगत रूप से मैने भी इनसे लाभ उठाया।'[24] दूसरा लाभ उन्हे पढ़ाई की फीस न देने का भी रहा। उस समय मुख्यतः बनारस में, संस्कृत की पढ़ाई निःशुल्क हुआ करती थी। साथ ही, वहॉ पर संस्कृत के अध्ययन के लिए बाहर से आने वाले ब्राह्मण विद्यार्थियो के रहने के लिए कमरे और भोजन की व्यवस्था मंदिरों मे हुए दान आदि से होता था, जो राशि पंडो और व्यवस्थापकों के पाचन से बच जाता था। उसी व्यवस्था का लाभ त्रिलोचन को भी मिल गया। अपने गॉव-परिवार से दूर, दूसरे शहर मे अर्थ और रोटी की समस्या से जूझने वाले विद्यार्थी के लिए यह एक बड़ी सुविधा थी। त्रिलोचन, संस्कृत के उद्भट विद्वानो, यथा—गोस्वामी दामोदर लाल जी शास्त्री जैसे आचार्यो के शिष्य रहे। संस्कृत गुरुओं का स्नेह उन पर बना रहा।

तब प्रेमचन्द, प्रसाद, रामचन्द शुक्ल जैसे साहित्यकार बनारस में रहते थे। अपने सहपाठियों के साथ त्रिलोचन कभी-कभी उनसे मिलने जाते। पर वहॉ न तो संस्कृत के आचार्यों जैसी सहज आत्मीयता मिली और न ही अपनी किसी जिज्ञासा को शान्त करने का कोई प्रयास दिखा। मन को ठेस लगी तो हिन्दी और संस्कृत के आचार्यों में उन्हे काफी फर्क महसूस हुआ। यह छायावाद का उत्कर्ष काल था। साहित्य में प्रगतिवादी प्रतिक्रियाएँ साफ-साफ नजर आने लगी थीं। नयी चेतना की संवाहिका हिन्दी है, संस्कृत नही; इतनी

समझ त्रिलोचन के पास थी। इसलिए उनका अध्ययन संस्कृत मे और लेखन हिन्दी मे, यह दुहरा कर्म एक साथ चलता रहा। लगभग साल-डेढ़ साल काशी में संस्कृत व्याकरण आदि का अध्ययन करने के बाद वे पुनः गॉव लौट आये।

फिर अर्थाभाव को दूर करने के लिए 1932 के आसपास आगरा गये। रोटी-पानी के जुगाड़ के लिए जब नौकरी नही मिली तो उन्होने ट्युशन पढ़ाना शुरु कर दिया। यह ट्यूशन भी साल भर के लिए पक्की नही रहती थी, बल्कि परीक्षा शुरु होने के दो-चार मास पहले मिला करती थी। उर्दू से मिडिल पास होने के कारण, वे कचहरी के कामों, मुकदमो के लिए, लोगो के लिए अर्जीनवीसी भी करते थे। तब उन्हे एक सफा लिखने का चार आना मिलता था। यही रहते हुए उन्होने 'त्रिलोचन' नाम से लाहौर की 'विशारद', 'प्राज्ञ' और 'शास्त्री 'की परीक्षाएँ दो सालो (33-34) में पास किया। इस समय उनकी उम्र लगभग सतरह वर्ष थी। आगरा मे रहते समय एक सज्जन ने उन्हें बताया कि लाहौर के एक इंटर कालेज में 'नेटिव लैंग्वेज टीचर' की जरुरत है, और उसके प्रिंसिपल साहब आपको जानते हैं। उनके आग्रह पर सन् 1934 के अन्त मे, जबकि इनकी आयु सतरह साल के लगभग थी, लाहौर जाकर इंटर कॉलेज में 'नेटिव लैग्वेज' पढ़ाने लगे, पच्चीस रुपये मासिक तनख्वाह पर। वहॉ छह महीने अध्यापन करने के बाद छोड़ दिया। फिर लाहौर से निकलने वाले उर्दू दैनिक 'मिलाप' मे, अग्रेजी से उर्दू अनुवादक का काम करने लगे, तीस रुपये मासिक तनख्वाह पर। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और सआदत हसन मंटो जैसे अच्छे नाम वाले लोगों के साथ उन्होने 'मिलाप' मे लगभग पॉच महीने काम किया। फिर लाहौर से निकलने वाले अंग्रेजी दैनिक 'नेशनल कॉल' मे भी कुछ दिन हिन्दी से अंग्रेजी अनुवादक के रूप मे और प्रूफरीडर के रूप मे काम किया। वहॉ उनके साथ कुछ पुराने सशस्त्र क्रान्तिकारी भी काम करते थे। लाहौर मे काम करते हुए ये पैसे बचाकर भारत के अलग-अलग जगहो पर घूमने निकल जाते थे; शहरो मे कम देहातो मे ज्यादा घूमते थे।

लगभग डेढ़ साल बाद ये लाहौर से गॉव आये, फिर काम की तलाश मे आगरा चले गये। जीविकोपार्जन के लिए ट्युशन और कचहरी में अर्जीनवीसी करने लगे। आगरे में ही एक दक्षिणी व्यक्ति ने उनका परिचय मार्क्स की कृतियों के जरिये मार्क्सवाद से करवाया। मार्क्स के विचारों ने उन्हें मानसिक और वैचारिक तौर पर प्रभावित किया। त्रिलोचन 'संस्कृत' से संस्कारित थे, अतः मार्क्स के विचारों के असर से इस संस्कार के टकराव की संभावना थी। परन्तु ऐसा नही हुआ। वे कहते है : 'मुझे मार्क्स और अपने भीतर बसे हुए सस्कृत

साहित्य के संस्कार मे कोई विरोध नहीं दिखा। संस्कृत कविता हमेशा इसी लोक की कविता रही है और मार्क्स इसी लोक को देखने-परखने और फिर बदलने की बात करते थे।[25] मार्क्सवाद ने त्रिलोचन के मन में बसे लोक जीवन को मजबूती दी।

आगरा में कुछ दिन रहने के बाद कलकत्ता के एक परिचित सेठ के यहॉ काम के आश्वासन पर ये कलकत्ता चले गये। उस सेठ के यहाँ इनके स्वाभिमान के अनुरूप काम नहीं मिला तो ये काम छोड़कर इधर-उधर भटकते रहे। जीविकोपार्जन हेतु पत्र-पत्रिकाओं में छोटे-मोटे काम करते रहे और ट्यूशन भी। कहते हैं, आर्थिक अभाव के दिनों में इन्होनें वहॉ पर हाथ-रिक्शा चलाकर और चने खाकर कितने ही दिनों गुजारा किया था। वहॉ पर कुछ महीने रहकर फिर ये घर लौट आये। सन् 1935 में इनके पहले पुत्र जयप्रकाश का जन्म हुआ।

जीविकावृत्ति की खोज में सन् 1936 के शुरुआत में त्रिलोचन बनारस आये और कुछ महीने वाराणसी कैण्ट के मुसाफिरखाने मे रहे। सामान के नाम पर उनके पास कुछ किताबें, कुछ कापियॉ और शायद एक जोड़ी वस्त्र था, जिसे वह अपने परिचित कुली के पास रख दिया करते थे। अत. उनका सामान सुरक्षित रहता। कुछ दिन इधर-उधर घूमकर इन्होने जीविकावृत्ति की तलाश की, पर असफल रहे। पास में इतने पैसे नही थे कि पूरी तरह भोजन भी कुछ दिनों तक चलता। वे बाजार से कुछ चने खरीद कर खा लेते, नल पर पानी पी लेते और प्लेटफार्म या विश्रामगृह में जाकर रात काट लेते। कहते हैं, पास के थोड़े पैसे चुक जाने पर इन्होंने रिक्शा चलाकर कुछ द्रव्योपार्जन का काम शुरु कर दिया। अधिकतर रात्रि में ही रिक्शा चलाते। कुछ आमदनी हो जाती, जिससे इन्होने अपना निर्वाह किया, न किया।[26]

एक दिन घूमते-घूमते ये 'सरस्वती प्रेस' मे पहुॅचे। उन दिनो प्रेमचन्द जी 'हंस' पत्रिका का संपादन कर रहे थे। इन्होंने उनसे प्रेस में किसी नौकरी के लिए आग्रह किया। प्रेमचन्द जी ने इनसे पूछा–'कौन सा काम कर सकते हैं?' इन्होंने उत्तर दिया कि, जो भी काम वे देंगे, उसे ये करने की चेष्टा करेंगे। अन्त में इन्हे तीस रुपया महीने के वेतन पर प्रेस के प्रूफ़रीडर का काम मिला। इनके पास एक पैसा नहीं कि, एक दिन का काम चलता। संकोचवश कुछ कहते भी न बनता था। आपने उनसे आग्रह किया कि, उन्हें कुछ अग्रिम मिल जाता तो काम चलता। प्रेमचन्द जी ने इन्हें पॉच रुपये दिये। फिर वही चना और प्लेटफार्म का आश्रय। दिन कटने लगे। इनके काम से प्रेमचन्द जी बहुत संतुष्ट थे। उन्हीं

दिनों 'हंस' का कोई विशेषांक निकालने की विज्ञप्ति प्रेमचन्द जी ने कर दी। विज्ञप्ति तो कर दी, परन्तु लेखो की कमी महसूस करने लगे। कुछ लेख थे भी, तो स्तर के नही थे। प्रेमचन्द जी अत्यन्त चिंतित थे। 'हंस' एक प्रगतिशील पत्रिका थी और साहित्य-क्षेत्र में उसका बड़ा नाम था।

प्रेस के कमरे में चिंतित अवस्था में प्रेमचन्द जी को बैठे देख कर, त्रिलोचन ने उनकी उदासी का कारण पूछा। प्रेमचन्द को इनकी साहित्यिक रुचि का अब तक कुछ पता चल गया था। वे अन्यमनस्क भाव से बोले—'त्रिलोचन जी! 'हंस' का विशेषांक निकालना है और अभी तक पूरे लेख नहीं आये। समय भी कम है। क्या करूँ, समझ में नही आता?' त्रिलोचन जी ने उनसे कहा—'आप चिन्ता न करें। लेख मैं जुटाने की चेष्टा करता हूँ। आपने यदि कुछ विषय निर्धारित किये हो, तो मुझे दे दें। मै मित्रों से लेख लिखवाऊँगा। परन्तु, कम से कम दस दिन की अवधि चाहिए। मुझे भी कुछ अवकाश मिलना चाहिए।' प्रेमचन्द जी ने विषयों की सूची उनके सामने रख दी और वे उसे लेकर चले गए। उसके बाद कुछ डाक से और कुछ पत्र-वाहको द्वारा लेख आने लगे। विभिन्न शैली, भिन्न-भिन्न विषय, कविता, कहानी, समालोचना इत्यादि से सुसज्जित 'हंस' का विशेषांक समय पर निकला। प्रेमचन्द जी शास्त्री जी पर अत्यन्त प्रसन्न थे। इन लेखो का रहस्य प्रेस का एक कर्मचारी (जो त्रिलोचन के साथ रहता था) जानता था। उसने एक दिन प्रेमचन्द जी से इस रहस्य को खोल दिया कि, जितने भी लेख आये, एक ही व्यक्ति के लिखे हुए थे और वह व्यक्ति दूसरा कोई नहीं, स्वयं त्रिलोचन शास्त्री थे। प्रेमचन्द जी सुनकर अवाक् रह गये। बहुत पूछने पर लेखक ने इसे स्वीकार किया। प्रेमचन्द जी ने कहा, आप धन्य हैं। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का बखान जितना भी किया जाय, थोड़ा होगा। बाद में सम्पादकीय विभाग में इनकी नियुक्ति हो गई।[27] फिर 'हंस' की आर्थिक दुरावस्था में इन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी।

सन् 1937 में त्रिलोचन जी जीविका की तलाश में घूमते-घूमते अहमदाबाद पहुँचे। इनके पैसे चुक गये थे और दो दिन से खाली पेट होने से पानी पीने पर कै हो जाती थी। दो-तीन दिन के उपवास से भूख मुख पर चमकने लगी। एक सज्जन ने इनसे कहा कि, क्या मैं आपको भोजन करा सकता हूँ? इस पर वे बोले कि, 'नहीं, पर अगर काम मिल जाए तो अग्रिम राशि लेकर खा सकता हूँ।' फिर उस सज्जन के निर्देशानुसार ये आठ मील पैदल चलकर झबेरचन्द मेघाड़ी (गुजराती के प्रसिद्ध साहित्यकार) के पास गये, जो 'कुल छाप' गुजराती साप्ताहिक का सम्पादन करते थे। उनसे मिलकर इन्होंने काम पर लगाने की बात

कही, और कहा कि मैं असमिया, उड़िया, बाड्ला, गुजराती, मराठी, उर्दू, फारसी, आदि भाषाएँ जानता हूँ। फिर इन्होंने उनसे प्रूफरीडिंग का काम सीखा और इन्हें प्रूफरीडर के पद पर रख लिया गया। मेघाड़ी जी से इन्होने पॉच रुपये खाने-पीने की व्यवस्था के लिए अग्रिम लिया। चार-पॉच महीने काम करने के बाद जब इनकी गुजराती ठीक हो गई तो इन्हें सहायक सम्पादक बना दिया गया। इन दिनो ये पैसे बचाकर घर भेजते रहे और कुछ पैसे अपने लिए रखकर केरल और गोवा घूम आए। फिर मद्रास, उड़ीसा घूमते हुए महाराष्ट्र का भी चक्कर लगा आये। महाराष्ट्र से ये आगरा आये और वहॉ के साप्ताहिक पत्र 'प्रभाकर' में साल भर तक रहे। वहॉ से इलाहाबाद आये और यहॉ से निकलने वाले बच्चों के मासिक पत्र 'बानर' में 25 रुपये मासिक पर साल भर तक नौकरी करने के बाद घर लौट गये।

बनारस मे काम मिलने की संभावना देखकर वे सन् 1939 मे पुन. बनारस आ गये। यहॉ श्रीपतराय के 'कहानी' मासिक मे 25 रुपये मासिक पर काम करने लगे। नगवा मे 'अकनू भवन' मे रहने का प्रबन्ध हुआ। सन् 1939 से '41 के दौरान 'कहानी' के तीन अंकों और 'हंस' (1940 में) के तीन अंकों का संपादन किया। 'कहानी' में श्री शमशेरबहादुर सिंह उनके साथ काम करते थे। इसी समय दोनों में घनिष्ठता स्थापित हुई, जो दोनों के साहित्यिक विकास में लाभप्रद रही। 'कहानी' मासिक में उनके सहायक रहे शमशेर जी बताते हैं—'उन्हें पहली तनख्वाह मिलने में दसेक दिन बाकी थे। एक मित्र आये और बोले : भई, कुछ पैसे हों, तो दे देना, बहुत जरुरी है। इन्होंने एक रुपये और कुछ आने, जो इनके पास थे, दे दिये। इसके बाद वह दस दिन तक सिर्फ पानी पीकर दफ्तर आते रहे, और किसी को गुमान तक भी नही हुआ कि उनकी क्या वास्तविक स्थिति है? वह बिल्कुल नार्मल लगते रहे।[28] जनवरी 1942 से अप्रैल तक शम्भुनाथ सिंह के आग्रह पर उन्होंने 'क्षत्रिय मित्र' पत्रिका का संपादकत्व संभाला। इस पत्रिका में उनकी कुछेक कविताएँ भी प्रकाशित हुई। त्रिलोचन के परिचय का दायरा अब काफी बढ़ गया था। चन्द्रबली सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, नामवर सिंह, सुरेन्द्र श्रीवास्तव, शंभुनाथ सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, चन्द्रकुमार जी, मोहनलाल गुप्त, मोती बी० ए०, अर्जुन कश्यप, जानकी बल्लभ शास्त्री, दिलीप नारायण सिंह, ईशदत्त पाण्डेय, सीताराम जायसवाल, ब्रह्मदेव शर्मा आदि से उनका मिलना-जुलना होता रहता। मित्रों से मिलने-जुलने या अन्य कामों के लिए शास्त्री जी खूब पैदल चला करते थे, और इसके लिए वह मशहूर रहे। वह बी.एच.यू. से गोदौलिया, रथयात्रा से राजघाट पुल, अस्सी से सारनाथ, और भी सभी जगह पैदल आया जाया करते थे।

काशी रहते हुए 1942 में वे सोशलिस्ट पार्टी से जुड़े। फलस्वरुप उनकी कविताएँ पोस्टर के रुप में बनारस के सड़कों, चौराहों पर आ लगीं। सन् '43 में वह शंभुनाथ सिंह के घर (तेलियाबाग) रहे। '43 में ही कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े और उसके लिए काम किया पर उसके सक्रिय कार्यकर्ता नही बने (बाद में भी नहीं)। उनको लगता था कि पार्टी का कठोर अनुशासन उनकी पढ़ाई, पारिवारिक दायित्व और लेखक-मन के आड़े आ सकता है। इसलिए वह सिर्फ विचारधारा और स्वच्छन्द रूप से कर सकने वाले कार्य के स्तर पर जुड़े रहे। अध्ययन-अध्यवसाय, लेखन और नौकरी के साथ-साथ पार्टी के कामो ने त्रिलोचन के भीतर एक अपूर्व उत्साह भर दिया। वह निजी दुःख-सुख से ऊपर उठकर सामाजिक दुःखों से एकाकार होते गये। सन् 1943 में, जबकि वे शंभुनाथ सिंह के घर रह रहे थे, कम्युनिष्ट पार्टी में काम करने की वजह से, शंभुनाथ सिंह के बड़े भाई, मोती बी. ए., और त्रिलोचन को पुलिस पकड़ ले गयी। तीन महीने तक वह जेल में रहे। घर पर जितने पुरुष थे, उन सबको जेल जाना पड़ा, त्रिलोचन को भी।[29] जेल में रहते हुए उन्होने आचार्य नरेन्द्र देव के शिष्य सर्वजीत लाल वर्मा से फ्रेंच भाषा सीखी।

सन् 1943 में (जेल से छूटने पर) वे 'आज' दैनिक के सह-सम्पादक बने। उन्हें कहानी, कविता और साहित्यिक लेखो के संपादन का कार्य भार मिला। यहाँ उनके साथ मोहन लाल गुप्त भी काम कर रहे थे। इन्होने बताया कि त्रिलोचन ने वहाँ पाँच मिनट में पाँच सॉनेट लिख डाले। उस समय उन पर सॉनेट का भूत सवार था। बड़े ही तुनुकमिजाज थे। थोड़ी सी बात पर नाराज होकर 'आज' से इस्तीफा दे दिया। इसकी वजह त्रिलोचन, प्रबन्ध-समिति की अदूरदर्शिता और गलत-नीति बताते है। 'आज' के प्रूफरीडर राजबल्लभ सहाय ने अपनी गलतियों के कारण प्रबन्ध-समिति द्वारा डाँटे-फटकारे जाने पर अपने बचाव के लिए शास्त्री जी का नाम ले लिया। प्रबन्ध-समिति ने बिना जाँच-पड़ताल किये उन्हें बुलाकर पहला वाक्य सुनाया कि 'क्यों न आपको निकाल दिया जाय?' निर्दोष होते हुए इस तरह की बात किसी के स्वाभिमान को चोट लगाने के लिए काफी है। उन्होंने अपनी निर्दोषिता का प्रमाण दिया और उसके साथ ही त्यागपत्र। उन्हें त्यागपत्र देने से मना किया गया पर वह किसी के रोके न रुके। ये सारे हालात बताते है कि उन्होंने कष्ट उठा लिया मगर आत्मसम्मान के विरुद्ध किसी काम को मंजूर नहीं किया। किसी के सामने झुके नहीं।[30]

'आज' से इस्तीफा देने के बाद सन् '43 मे ही त्रिलोचन मुरादाबाद गये और जगदीश जी के साथ वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'प्रदीप' (मासिक) का सम्पादन करने लगे। वहाँ

जगदीश जी ने उनकी कविताओ का संग्रह प्रकाशित करने का प्रस्ताव किया जिसे त्रिलोचन जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'प्रदीप कार्यालय' द्वारा 'धरती' नाम से उनका प्रथम काव्य-संग्रह जून 1944 मे ही तैयार था, सिर्फ जिल्दबाजी बाकी थी। पर किसी कारणवश जगदीश जी प्रकाशन तिथि के रूप में 1944 का उल्लेख नहीं करना चाहते थे। इस कारण उन्होंने किताब की जिल्दबाजी सन् 1945 की जनवरी में करायी। इस कारण 'धरती' का प्रकाशन 1945 में सम्भव हो सका। 'धरती' की कविताओं का चयन से लेकर क्रम-निर्धारण तक का काम जगदीश जी ने ही किया। त्रिलोचन के इस प्रथम काव्य-संग्रह का जोरदार स्वागत हुआ और उसकी कविताओं को सराहा गया। 'धरती' में सौन्दर्य, कल्पना और यथार्थ का अपूर्व संयोजन था। मुक्तिबोध ने 'हंस' (जुलाई '46) में इस पर एक लम्बी समीक्षा लिखी और कवि की प्रगतिशीलता को रेखांकित करते हुए कहा–'कवि की प्रगतिशीलता अट्टहास-पूर्ण आन्तरिक क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन-संघर्ष से मॅज-घिसकर तैयार हुई है।' अपने प्रथम काव्य-संग्रह से ही सामाजिक प्रतिबद्ध और पर्याप्त काव्य संभावनाओं से पूर्ण कवि के रूप में अपनी पहचान बनाने के बावजूद वे काफी अरसे तक आलोचकों की दृष्टि से उपेक्षित रहे। हालॉकि उनके साथी साहित्यकारों ने उनकी काव्य-प्रतिभा को पहचाना।

'प्रदीप' छोड़कर सन् 1943 में ही त्रिलोचन पुनः 'हंस' से जुड़े। इस समय ये और शिवदान सिंह चौहान एक साथ एक ही कमरे में रहते थे। कुछ समय बाद (लगभग '45 में) उज्जैन से मुक्तिबोध आये और 'हंस' से जुड़े। त्रिलोचन और मुक्तिबोध रचनाओं के संपादन से लेकर डिस्पैचर तक का कार्य करते थे। मुक्तिबोध से त्रिलोचन की गहरी छनती रही। ये दोनों रात में सड़कों पर चक्कर लगाते थे। मुक्तिबोध अपनी रौ में बोलते जाते थे और त्रिलोचन चुपचाप सुनते हुए 'हूँ', 'हाँ' करते जाते। यहॉ लगभग सालभर मुक्तिबोध जी रहे। वेतन शायद साठ रुपये मिलता था। '45 में द्वितीय विश्व-युद्व के प्रभाववश महॅगाई इतनी बढ़ गई थी कि इतनी सी राशि में त्रिलोचन का गुजारा कष्टप्रद हो गया। एक दिन उन्होने 'हंस' के मालिक से वेतन बढ़ाने के लिए कहा, तो वे बोले कि, 'हाईस्कूल तो पास हो नहीं, फिर भी साठ रुपये देता हूँ, कम नहीं है।' शास्त्री जी को यह बात लग गई। बोले–'अब मैं एम. ए. करके ही दम लूँगा और वह भी इंगलिश में।' संकल्प को कार्यरूप देते हुए उन्होंने 1946 में हाईस्कूल और '48 में इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की।

1946 में 'हंस' की आर्थिक तंगी के कारण त्रिलोचन को इससे हटना पड़ा और दुबारा

वह 'आज' में आ गये। सन् 1946 से '50 तक यहाँ रहे। इसी दौरान वह एक दो अन्य संस्थाओं से भी जुड़े। '46 में वे 'चित्ररेखा' मासिक से जुड़े और उसके तीन अंकों का सह-संपादन किया। '46 से '49 तक इन्होंने ज्ञानमंडल प्रकाशन के 'बृहद् हिन्दी कोश' के सम्पादक मण्डल में काम किया। त्रिलोचन के सम्पादकत्व से प्रभावित होकर विश्वनाथ मुखर्जी ने कहा है—'चित्ररेखा' (1946, तीन अंक) 'कहानी' (1939-41), 'हंस' (1940 के तीन अंक) आदि का सम्पादन करके आपने दिखा दिया कि, सम्पादकत्व क्या है। मेरी दृष्टि में 'चित्ररेखा' की तरह आज तक कोई कहानी मासिक-पत्रिका नही निकाल सका। ऐसी प्रतिभा श्री भैरव प्रसाद गुप्त 'माया मनोहर कहानी' से लेकर 'नई कहानियॉ' तक में, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कमलेश्वर, 'सारिका' में भी नही दिखा पाये।[31]

सन् 1946-47 के आसपास त्रिलोचन जी की पत्नी भी गॉव से काशी आ गई थी। लेकिन स्थायी रूप से नही, कुछ महीने ही रह सकीं। इस समय वह पियरी में एक मकान के ऊपरी मंजिल पर छोटा सा कमरा लेकर रह रहे थे। इसी मकान में '47 में डॉ० रामविलास शर्मा किसी ग्रन्थ के लेखन के लिए सामग्री संकलन हेतु आकर कुछ दिन ठहरे थे। उस समय रामविलास जी वहॉ जेठ की धूप में तपते हुए शायद किसी ग्रन्थ का लेखन कार्य करते रहे। इस सम्बन्ध मे डॉ० रामविलास शर्मा अपने एक संस्मरण में बताते हैं कि, "घर पर जितनी देर हम लोग बैठते थे, बातें ही करते रहते थे और बनारस में बहुत ही घूमते थे। ज्यादातर त्रिलोचन जी बातें करते थे। ऐसा नही याद आता कि हम लोग रिक्शे पर कभी बैठकर कही साथ गये हों। पैदल चलने का उन्हें बहुत अभ्यास था, शायद हिन्दी में सबसे अधिक पैदल चलने वाले लेखक त्रिलोचन हैं। मेरे साथ बनारस में किस मोहल्ले से कहॉ तक गये, हमको कुछ ध्यान भी नहीं रहता था, इसलिए कि बातों में खो जाते थे। और ज्यादातर बाते साहित्य के बारे मे होती थी। उस समय जो छाप मेरे मन पर पड़ी, वह यह है कि त्रिलोचन मे बहुत क्षमता है और उन्होने काफी पढ़ा है, लेकिन उन्हे काम करने के लिए जैसी परिस्थितियॉ चाहिए वैसी परिस्थितियाँ उन्हें सुलभ नहीं हुई और शायद यह स्थिति बहुत दिनों तक बनी रही।"[32] इससे स्पष्ट है कि डॉ० रामविलास शर्मा उनकी विद्वता और प्रतिभा के कायल थे, जिसे स्वीकारने में उन्होंने थोड़ी देर लगाई ('रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' प्रथम सं. 1990—में रामविलासजी ने तीन निबन्धों में कवि त्रिलोचन के जनप्रतिबद्ध काव्य-साधना की उत्कृष्टता को सराहा)।

सन् 1948 में त्रिलोचन ने काशी हिन्दू वि'वविद्यालय में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति,

दर्शनशास्त्र तथा अंग्रेजी विषयों के साथ बी. ए. मे प्रवेश लिया। आर्थिक अभावों को दूर करने के लिए उन्होंने अपने उद्धत स्वाभिमान के साथ समझौता नही किया और तमाम परेशानियों को सहते हुए पढ़ाई जारी रखी। प्रथम और द्वितीय वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण करके वे सन् '50 मे बी. ए. तृतीय वर्ष में दर्शन और अंग्रेजी विषयों के साथ प्रवेश लेते हैं। त्रिलोचन के लिए यह घोर अर्थाभाव का काल है। तिस पर, उनका किशोर पुत्र जयप्रकाश भी पढ़ने के लिए काशी आता है, जिसे यू० पी० कालेज में भर्ती कराकर हॉस्टल में रहने-खाने की व्यवस्था कराते है। अर्थाभाव दूर करने के लिए 'आज' दैनिक मे कम तनख्वाह पर नौकरी करते हैं; ट्युशन, अनुवाद आदि करते है; फिर क्लास करने विश्वविद्यालय जाते हैं। दिन भर भाग-दौड़ करके घर आकर जैसे तैसे आधा-अधूरा खाना बनाकर खाते हैं, या केवल चने चबाकर रह जाते हैं। फिर अध्ययन में जुटते हैं, और कभी-कभी कुछ शेष खाद्य-सामग्री न होने पर निराहार, पानी पीकर ही सो जाते हैं। इसी समय 'आज' के मालिकों ने जब इनसे कहा कि 'या तो आप सर्विस कीजिए या केवल पढ़ाई कीजिए।' इस बात पर ये वहाँ से इस्तीफा देकर चले आये। फिर ट्युशन करके, पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, आलेख लिखकर व कुछ किताबों का अनुवाद या अन्य लेखन-सहयोग करके अत्यधिक आर्थिक अभाव के बावजूद इन्होने अपनी पढ़ाई जारी रखी। इस साल तमाम आर्थिक कठिनाइयो को सहते हुए वे बी.ए. की परीक्षा मे तृतीय श्रेणी से उत्तीर्ण होते है, और द्वितीय श्रेणी से तेइस नम्बर ही कम पाते है। फिर भी उन्हें इस बात का सन्तोष होता है कि 'बिना पढ़े लिखे जो मिला बहुत मिला। अब आगे इंगलिश तो लेनी ही है, जमकर दो साल पढ़ूँगा। परिश्रम करूँगा।'[33] इसी साल वे बी० एच० यू० में इंगलिश से एम० ए० में प्रवेश लेते हैं, नामवर सिह की इस चेतावनी के बावजूद, कि 'क्यों इंगलिश लेकर अपना डिविजन खराब करने पर तुले हुए हैं।' एम० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा तो उन्होंने उत्तीर्ण कर लिया, किन्तु अन्तिम वर्ष की परीक्षा में वह न बैठ सके। उनके हमदर्द मित्रों, सहयोगियों और विशेषकर पत्नी के बार-बार आग्रह कि वह पूरी परीक्षा दे लें, किन्तु त्रिलोचन तो दुनिया से निराले ठहरे। वह हर बार एक पेपर देने के बाद दूसरा पेपर देने न जाते और कहते—'क्या पेपर हल करूँ। ऐसे-ऐसे सवालों के उत्तर तो मैं एक प्लेट पकौड़ी और एक कप चाय पर देता हूँ। अगर एम० ए० का स्टैण्डर्ड यही है तो मैं एम० ए० वालों का लकड़दादा हूँ।'[34] वैसे भी, किसी विषय पर घंटों बोलने की क्षमता रखने वाले और विषय के मूल से लेकर शब्द-शब्द की व्याख्या तक में पहुँच जाने की मिली अन्तर्दृष्टि, साथ ही लिखने की धीमी गति के कारण लिखने से कतराने वाले त्रिलोचन को पाँच प्रश्नों और तीन घटे की सीमा

में कैद कर देना उनके साथ ज्यादती थी। पहले की परीक्षाएँ उन्होंने कैसे दी, यह तो दैव जाने या स्वयं त्रिलोचन। किन्तु एम० ए० करने से तो वह रह ही गए और उनके प्रवचनों से लाभ उठाकर कितने ही छात्र एम० ए०, पी० एच०डी० हो गए।

त्रिलोचन का व्यक्तित्व अजीब रहा। अपनी एकेडमिक असफलता पर दबीज़ पर्दा डालने के लिए वह बेशुमार सॉनेट और गजल लिखते चले गये। उनकी इस सनक पर शमशेर जी ने उन्हें टोका और अपनी प्रतिभा के प्रति गम्भीर होने की सलाह दी। आवेश में आकर वह अपनी कविताओं, सॉनेट, गजलों को नष्ट करने पर आमादा हो गए। ऐन मौके पर नामवर सिंह ने उन्हे रोका। अपने लेखन के लिए तो त्रिलोचन पहले से ही चर्चित रहे। कुछ लोगों से सुनने में आया है कि उन्होने 10,000 से भी ज्यादा कविताएँ, ढेरों कहानियाँ, काव्य-नाटक आदि लिखे है। इनमें से कुछ रचनाएँ प्रकाशित हो गईं, कुछ मित्रों के यहाँ और पत्र-पत्रिकाओ में बिखरी पड़ी है और कुछ नष्ट हो गईं। आलोचनात्मक लेख भी इन्होंने लिखे। लेकिन वह इससे अन्त तक भागते रहे। लोग उनकी सिफ़ारिशें करते, लेख लिखवाने के लिए पीछे पड़े रहते और त्रिलोचन थे कि वादा तो करते पर जल्दी उसे निभाते नहीं। ये सब चीजें अड़कर और धरना देकर ही उनसे लिखवाया जा सकता था। कई बार तो लेखों, समीक्षाओं को लिखवाते समय उनके कमरे के दरवाजे का सांकल आगे से लगा दिया गया था। अपनी प्रतिभा का उन्हे ज्ञान था, मगर अपने प्रति कभी गम्भीर न हुए। दूसरो को बनाते रहे, आगे बढ़ाते रहे।[35]

एकेडमिक पढ़ाई के प्रति गम्भीर न होते हुए भी 'भाषा के अगम समुद्रों के अवगाहन' और विविध भाषाओं के साहित्य-सागर को मथकर ज्ञान मोती चुनते रहने की तृष्णा उन्हें बनी रही। बनारस के विभिन्न गिरिजाघरों के पादरियों से मिलकर उन्होंने उनसे ग्रीक, लैटिन, इटैलियन भाषाएँ सीखी और बदले में उन्हें संस्कृत सिखाया। सॉनेट के मूल का पता लगाने के लिए उन्होने स्पेनिश सीखी। ग़ज़ल को सीखने के लिए उन्होंने अरबी भाषा सीखी और अरबी साहित्य पढ़ा। उन्होने भारत की विविध प्राचीन तथा आधुनिक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके उनके साहित्य का अध्ययन किया।

सन् 1951-52 में वह साहित्य तथा भाषा के देशी-विदेशी छात्रों को ट्युशन पढ़ाते रहे। युवा से प्रौढ़ावस्था तक की छात्राएँ व छात्र उनके शिष्यत्व में रहे। इधर दिन-ब-दिन उनके मित्रों की संख्या भी बढ़ती गई। विजेन्द्र, केदारनाथ सिंह, जगत शंखधर, विद्यासागर नौटियाल, विश्वनाथ त्रिपाठी, शिवदान सिंह चौहान, शिवमंगल सिंह 'सुमन', विष्णुचन्द्र शर्मा इत्यादि से

उनका अच्छा सम्पर्क रहा। उस समय इनकी साहित्यिक बैठकी का मुख्य अड्डा उदय प्रताप कालेज (वाराणसी) था। वहॉ वह नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह इत्यादि से मिलते और साहित्यिक बहस-मुहाबसा करते। इसी कालेज के जाने-माने अध्यापक मार्कण्डेय सिंह से भी उनका अच्छा परिचय रहा। कभी-कभी वह मनमोहक गीतो के कवि ठाकुर प्रसाद सिंह द्वारा संचालित 'युवक साहित्यिक संघ' की गोष्ठियों में चले जाया करते। किन्तु इससे स्थायी रूप से नही जुड़े। कहते है, बनारस में रहते हुए ये एक अति सुन्दर, शील, स्वभाव और गुणो मे श्रेष्ठ, कला उपासिका युवती, जिसके यहॉ ये पढ़ाने जाते थे, के उदात्त गुणो और सौन्दर्य से प्रभावित हुए थे। कहते है, एक बार ये किसी तांत्रिक द्वारा बलि दिये जाने से बाल-बाल बच गये थे।

काशी प्रवास के दिनो मे आसन्न बेरोजगारी और आर्थिक अभाव के कारण त्रिलोचन कई बार जीविकोपार्जन के निमित्त काशी से बाहर भी गये। 1952 मे उन्हे पुन काशी से बाहर जाना पड़ा। अपने करीबी मित्र जगत शंखधर के सहयोग से जौनपुर जिले मे डोभी के गणेशराय नेशनल इण्टर कालेज में वह अंग्रेजी के प्रवक्ता (अस्थायी) पद पर नियुक्त हुए। यहॉ के गॅवई माहौल, ग्रामॉचल की ताजी आब-ओ-हवा, बाग-बगीचे, खेत-खलिहान के सानिध्य में अध्यापन के साथ-साथ वे नये सिरे से सॉनेट, ग़ज़लें तथा कविताऍ लिखते रहे। 'गुलाब और बुलबुल' तथा 'दिगन्त' की कुछ कविताऍ यहीं लिखी गई। लेकिन कालेज के बंधनों में ये ज्यादे दिन अध्यापन नही कर सके और लगभग एक वर्ष अध्यापन के बाद 1953-54 मे इलाहाबाद चले गये। इलाहाबाद मे उन्हे 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' द्वारा तैयार किये जा रहे 'हिन्दी अंग्रेजी मानक कोश' में डॉ० हरदेव बाहरी के साथ सम्पादन सहयोग की जिम्मेदारी मिल गई। कुछ दिन मधवापुर मुहल्ले में वह शमशेर जी के साथ रहे। फिर पत्नी के आने पर दूसरा कमरा लेकर रहे। यही पर उनके दूसरे पुत्र अमित प्रकाश का जन्म हुआ। '54 मे लगे 'महाकुम्भ' के मेले मे ये रोज चक्कर लगाते, हर चीज देखते गौर से, जैसी कि उनकी आदत थी, हर बात नोट करते। उस 'महाकुम्भ' मेले में एक विशेष स्नान के दिन भगदड़ मच जाने से सैकड़ो लोग मारे गये और न जाने कितने कुचल गये। 'महाकुम्भ' उत्सव के कारुणिक मरण-दृश्य मे बदलने से त्रिलोचन जी भीतर तक हिल गये और उन्होंने लगभग 20-22 सॉनेट लिखकर उस सारी कारुणिक दुर्घटना का पूरी तरह निर्मम मूल्यांकन किया (ये सॉनेट बाद में 'अरघान' संग्रह में छपे)। इस त्रासदी के मर्मान्तक प्रभाव से वे आहत तो थे ही, साथ ही साहित्य सम्मेलन वालों ने भी उन्हें नही बख्शा। अत: वे नौकरी छोड़कर बनारस चले आये।

काशी आकर उन्हें अधिक दिन बेकार नहीं रहना पड़ा। शीघ्र ही उनकी नियुक्ति 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के कोश विभाग ('हिन्दी शब्द सागर' के संशोधित परिवर्धित संस्करण) में सहायक संपादक के ओहदे पर हो गयी। यहाँ वे जून 1954 से अप्रैल 1959 तक रहे। बीच मे कोश का कार्य रुकने पर कुछ समय इन्होने इधर-उधर भी काम किया। इस बीच त्रिलोचन की दो और काव्य-रचनाएँ प्रकाशित हुई, 'गुलाब और बुलबुल' (1956) तथा 'दिगन्त' (1957)। 'गुलाब और बुलबुल' मे गजल और रूबाइयाँ है, जो हिन्दी मे बतौर नये किन्तु सफल प्रयोग है। 'दिगन्त' हिन्दी का पहला सॉनेट काव्य-संग्रह है—मार्मिक अनुभूतियो के साथ-साथ एक क्लासिकीय शिल्प मे। जनवरी, 1957 मे मासिक पत्र 'कवि' (स० विष्णुचन्द शर्मा) में त्रिलोचन प्रथम विशिष्ट कवि के रुप मे समादृत हुए। यहाँ पहली बार उनका एक महत्वपूर्ण कवि के रुप मे मूल्यांकन हुआ। साथ ही अन्य अनेक पत्र-पत्रिकाओं मे भी 'गुलाब और बुलबुल' तथा 'दिगन्त' रचनाओं पर अनेक प्रशंसात्मक एवं मूल्यांकनपरक लेख छपे।

सन् 1959 में 'कोश विभाग (ना० प्र० सभा)' का काम स्थगित होने पर त्रिलोचन, राधाकृष्ण जी के प्रयत्न से रॉची के 'राष्ट्रीय प्रेस' में मैनेजर के रूप में काम करने चले गये। लेकिन वहाँ का जीवन और आब-ओ-हवा इन्हें रास नही आई और सिर्फ छह महीने रहकर फिर बनारस लौट आये। नवम्बर 1959 से ना० प्र० सभा के कोश विभाग में पुन. काम करने लगे। यहाँ पर 1967 तक 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर', 'लघु हिन्दी शब्द सागर' और 'लघुत्तर हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादन मे सहयोगी बनकर रहे। फिर एक दिन स्वाभिमान के आड़े आने पर इन्होने तुरन्त त्यागपत्र दे दिया। काम छोड़ने पर संघर्ष की स्थिति आ पहुँची, लेकिन उन्होंने पैसे के लिए अपने स्वाभिमान से समझौता नही किया, भले ही फ़ाकेमस्ती ही सही। अपनी फ़ाकेमस्ती के दिनों में भी उनके अन्दर एक विश्वास, संकल्प और प्रतीक्षा बनी रहती। ऐसे ही फ़ाकेमस्ती के समय 18-2-1960 को उन्होने विष्णुचन्द शर्मा को लिखा—'अपनी बात क्या कहूँ? इच्छाएँ और संकल्प है। क्रिया का योग नही है। ऐसे में चुपचाप तमाशाए अहलेकरम देखते है। कदम उठाना चाहता हूँ, उठते नही है। अपनी बेबसी पर झुँझलाहट होती है। विश्व-बसंत का स्वागत करने वाले विहगों में मैं भी एक हूँ। पर दूसरे विहगो का कंठ स्वर सुनने में आपा खो बैठा हूँ। कुछ भी हो, यह भी एक सामाजिक सहयोग है, भले ही व्यक्ति का योग न हो। मेरा विश्वास है कि भारती मेरी सेवा चाहेगी, तो मेरा वश नहीं कि मुकर जाऊँ। मैं उसी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।' यह पत्र त्रिलोचन के अन्तर्जगत और व्यक्तित्व का अच्छा परिचय देता है।

1962 मे अमेरिकी बिटनिक कवि गिंसबर्ग बनारस आये थे। उनसे त्रिलोचन का परिचय और सम्पर्क हुआ। गिसबर्ग के साथ उनकी रोज मुलाकात होती और वे उसके साथ उसी औघड़पन के साथ रहे, जैसे स्वयं गिसबर्ग। मुलाकातों का समय अक्सर रात्रि-काल होता। गिन्सबर्ग ने उनके अनेकानेक भाषाओ का और साहित्य का ज्ञान देखकर उन्हे 'भारत का एजरा पाउण्ड' तक कहा था। इस समय त्रिलोचन की दिनचर्या पहले की तरह ही अनियमित रही, जिससे कभी-कभी उनका पूरा परिवार एक स्वर में खाली बर्तनों की तरह बज उठता। लेकिन वे मौन रहकर अपने क्षोभ को पी जाते या कभी-कभी उनके क्रोध द्वारा घर की कुछ चीजें नष्ट हो जाती। फिर वे शांत, निर्विकार हो जाते।

1967 मे 'नागरी प्रचारिणी सभा' की नौकरी छोड़ने के बाद बेरोजगारी के कारण त्रिलोचन अपनी पत्नी और छोटे पुत्र अमित के साथ, रानी भवानी गली के मकान को छोड़कर, बी० एच० यू० मे प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग मे प्राध्यापक के रूप मे नियुक्त अपने बड़े पुत्र डॉ० जयप्रकाश सिंह के विश्वविद्यालय परिसर में मिले आवास मे रहने लगे। इसी आवास के निकट कुछ दिनों के लिए रहने आये डॉ० रामविलास शर्मा से मिलकर वे अतीत जीवन के साहित्यिक स्मृतियों में खो जाते, और भी बहुत बातें होतीं। स्वाभिमानी त्रिलोचन बेटे के यहाँ ज्यादा दिन टिकना नहीं चाहते थे, अतः काम की खोज उन्होने जारी रखी। ढंग का कोई काम न मिलने पर वे विदेशी छात्रों को हिन्दी, संस्कृत, उर्दू-फारसी आदि भाषाओं का अध्यापन-कार्य करने लगे। इसी समय 1970 में शिवचन्द शर्मा ने पटना-रॉची से प्रकाशित अपने मासिक-पत्र 'स्थापना' के तीन अंक (अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर) त्रिलोचन पर निकाले और इस महत्वपूर्ण, किन्तु उपेक्षित कवि के महत्व को पहचानने और ऑकने का एक सार्थक और महत्वपूर्ण प्रयास किया।

स्वाभिमानी त्रिलोचन ने किसी के साथ कभी अपने स्वाभिमान से समझौता नही किया, चाहे वह अपना पुत्र ही क्यों न हो। एक दिन किसी बात पर उन्हें ठेस लगी और उन्होंने पुत्र के परिसर स्थित आवास को छोड़ दिया (सन् 1972 में)–

अपनी इच्छा से आ गए थे हम,
अपनी इच्छा से चले जाते है

* * *

जी को संतोष जरा होता है,
हम जो हर बात पै ग़म खाते हैं।[36]

अपने पुत्र के आवास से निकलने पर बी० एच० यू० परिसर का विश्वनाथ मंदिर त्रिलोचन का आश्रय बना। यह खबर मिलते ही इनके मित्र विष्णुचन्द शर्मा उन्हे (पत्नी और छोटे पुत्र अमित सहित) अपनी बड़ी बहन सत्यवती शर्मा के घर 'निराला निवेश', रथयात्रा (वाराणसी) ले आये । सत्या बहन की सहृदयता बेमिसाल है। उन्होंने शास्त्री जी को रहने के लिए सिर्फ कमरा ही नही दिया अपितु किराये की बात भी विनम्रता पूर्वक अस्वीकार कर दिया। त्रिलोचन के जीवन में संघर्ष एवं पीड़ा जैसे ठहर गई थी। जिन्दगी की निर्मम सच्चाइयॉ उनको जिस्मानी और ज़ेहनी तौर पर तोड़ने की लगातार कोशिश करती रही और वह इनमे भी जीवन का अर्थ और सौन्दर्य देखते।[37] जीवन-संघर्षों से वह हारते या ऊब कर भागते नहीं वरन् संघर्षो की ऑच-ताप से बज्र बनी अपनी छाती पर प्रहार के लिए प्रस्तुत रहते हैं—

> और तमाशे मै देखूँगा, मेरी छाती
> बज्र की बनी है, प्रहार हो, फिर प्रहार हो,
> बस न कहूँगा।[38]

'निराला निवेश' मे उनका तंगहाली और बेरोजगारी में किसी तरह दिन कटने लगा। लेकिन बाहर सब कुछ सामान्य था—वही दोस्त, वही चौराहे, नुक्कड़ का चायखाना और वही उनका पहले जैसा ही घूमना-फिरना। फिर बहन सत्यवती शर्मा के प्रयत्न से उन्हे 'जनवार्ता' पत्र में तीन सौ रुपये मासिक पर नौकरी मिल गई। महीना पूरा होने से पहले के दिन बड़े कष्ट में गुजरे। फिर तंगी में भी किसी तरह जिन्दगी की गाड़ी चल निकली। वे रथयात्रा स्थित 'निराला निवेश' से कर्णघण्टा स्थिन 'जनवार्ता' कार्यालय तक प्रति दिन पैदल जाते और पत्नी के दिये हुए पचास पैसे बचा लेते। क्योंकि मँहगाई में तीन सौ रुपये में ही तीन प्राणियों के भोजन, वस्त्र और अन्य जरुरी आवश्यकताओं की पूर्ति उन्हें करना था। और इस कष्टकर जीवन मे भी उन्हें रस मिलता—

> मुझको अपनी दुनिया मे रस/मिलता है,
> तुम गाड़ी-घोड़ो का सुख लूटो, मै पैदल ही
> भला, चला हूँ जैसे अब तक/चला करूँगा,
> पॉव दबा लूँगा जब मैं थक जाऊंगा।[39]

उन्होंने अपनी भूख, तंगहाली और पीड़ा को डॅट कर झेल लिया लेकिन इनका जिक्र किसी से नहीं किया। अपनी भूख, बदन के चिथड़े, पीड़ा और अपमान को भला वे किसी को क्या दिखाते—

हाल पतला है मेरा तुझसे बताऊँ तो क्या,
दुःख पुराना है नई बात सुनाऊँ तो क्या

* * *

अपने चिथड़े समेट के बगल में रख छोड़े,
यह दिखाने की नहीं चीज दिखाऊँ तो क्या।[40]

'जनवार्ता' मे नौकरी के दिन उनके जीवन मे गरीबी और बदहाली के दिन थे; और यह उनके जीवन में कोई नई बात थोड़े ही थी। 'जनवार्ता' से भी त्रिलोचन को दो बार इस्तीफा देना पड़ा। शास्त्री जी सिफारिश के खिलाफ थे और उनके मना करने पर भी सत्या बहन के कहने से मालिक ने उन्हें सम्मान के साथ बुलाया। 'जनवार्ता' में वह 1972 से 1975 तक रहे।

बनारस-प्रवास के वर्षो में, जीवन में भयंकर अभावों और तंगहाली में त्रिलोचन सीना ताने, सिर उठाये ताव से जीते चले जा रहे थे। उनके इस तरह जीने में उनकी पत्नी की भी पूरी भागीदारी थी। उनकी पत्नी बहुत ही कष्ट-सहिष्णु, सहनशील व सात्विक स्वभाव की महिला थीं। त्रिलोचन को व्यवस्थित देखने की तीव्र आकांक्षा के कारण वे कभी-कभी उनकी वक्त-बेवक्त घूमने-फिरने की आदत और अनियमितता से झल्ला भी उठती थीं। अपने घुमक्कड़ स्वभाव के कारण त्रिलोचन जी अपने किसी दोस्त के साथ रात मे घूमते हुए या किसी कवि-गोष्ठी में चले जाने के कारण कभी रात-भर घर से गायब रहते थे। उनकी इस प्रकार की गैरहाजिरी से उनकी पत्नी को असन्तोष जरुर था, फिर भी वह महान् सहिष्णु महिला इसे सह लेती थी। कभी-कभी वे क्षुब्ध होती भी, तब त्रिलोचन जी उन्हें मना लेते थे। बनारस में रहते हुए, वे एक बार सुबह सब्जी लाने बाजार गये। मित्र मिलते गये और वे भूल गये। घूमते रहे। रात जब लौटने लगे तो कवि-सम्मेलन हो रहा था। मित्रों ने पकड़ कर कविता-पाठ के लिए बिठा लिया। आधी रात के बाद जब ये घर पहुँचे तो इनका झोला खाली था। घर वापस आने के बाद की स्थिति के बारें मे स्वयं त्रिलोचन जी अपने 'दैनन्दिनी' में लिखते हैं–'पत्नी रात से अब तक की गैरहाजिरी पर क्षुब्ध थीं। मना लिया।'[41] उनकी पत्नी उन्हें दफ्तर जाने के लिए, अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती रहतीं। उनको बनाने में उनकी पत्नी का बहुत योगदान है। त्रिलोचन के जीवन-संघर्ष में उनकी पत्नी ने पूरी सहनशीलता और सहभागिता से साथ दिया। इसे स्वयं त्रिलोचन भी स्वीकार करते हैं–

सहधर्मिणी, सहचरी और न जाने क्या क्या
तुम हो। मेरे मन का सारा शून्य भरा है
तुम ने अपनी सुधि से। मेरे दुःख की मारी
तुम भी हो, मुरझाई हो, मैं ने पहचाना
है तुम को, हो अष्टधातु की, ऋतम्भरा है
सखी, तुम्हारी धृति को देखा कही न हारी।[42]

त्रिलोचन का दाम्पत्य-जीवन और आपसी-प्रेम एक आदर्श रहा है। उनकी पत्नी, त्रिलोचन के अच्छे व्यक्तियों से सम्पर्क का हमेशा स्वागत करती थीं। किन्तु बुरे लोगों के सम्पर्क से दृढ़ता से मना करती थी, और ऐसे लोगो का घर पर आने का भी वह विरोध करती थी। त्रिलोचन जी के अंतरंग साथी शमशेर जी के अनुसार, 'भई, वह घबराते किसी से नही, सिवाय सच्ची बात अपनी शास्त्राणी जी के। और, दरअसल वही इनको ठीक ठीक समझती भी हैं।'[43]

बी० एच० यू० परिसर और रथयात्रा मे रहते हुए त्रिलोचन जी तमाम मानसिक, आर्थिक कष्टों के बावजूद काव्य-रचना और साहित्य-चर्चा में लगे रहे। 'अमोला' के अधिकांश बरवै बी० एच० यू० परिसर मे लिखे गये और अनेक राजनीतिक व्यंग्य कविताएँ रथयात्रा के निवास पर रहते हुए लिखे गये। इस दौर के उनके अंतरंग साहित्य मित्रों में धूमिल, वाचस्पति, विष्णुचन्द शर्मा और अवधेश प्रधान मुख्य थे। कठोर जीवन-संघर्ष के बीच त्रिलोचन की समझौता-हीन चारित्रिक दृढ़ता और अदम्य साहित्यनिष्ठा, धूमिल को विशेष रूप से आकृष्ट करती। आई० टी० आई० से लौटते हुए धूमिल शाम को त्रिलोचन जी के यहाँ पहुँचते ही कुछ दोस्ताना, कुछ शातिराना अंदाज में नमस्कार ठोंकते—'भगवन्, गुड मार्निग!' पूरा मकान ठहाकों से गूँज उठता। फिर शुरु हो जाती बातें, जिनका जायसी से लेकर माओ-त्से-तुंग तक कोई ओर छोर न होता। 1972 के अगस्त में धूमिल ने त्रिलोचन के नाम पर एक मंच स्थापित करने की योजना बनाई। इसका नाम भी सोच लिया—'त्रिलोचन अध्ययन केन्द्र।' संक्षेप में—'त्रिके'। 'त्रिके' की पहली गोष्ठी 25 दिसम्बर 1972 को तुलसी पुस्तकालय (भदैनी) में आयोजित हुई, जिसकी अध्यक्षता केदारनाथ अग्रवाल ने किया। धूमिल ने 'त्रिके' का लिखित कार्यक्रम पढ़कर सुनाया और कहा कि 'यह साहित्यिक-सामाजिक विचारधाराओ के संवाद और जनवादी चेतना के पुनर्गठन का केन्द्र है।' यह गोष्ठी 'त्रिके' की पहली और आखिरी गोष्ठी थी।

1975 के अन्त में (जबकि त्रिलोचन 'जनवार्ता' में काम कर रहे थे), उन्हें भोपाल से 'म० प्र० हिन्दी अकादमी' द्वारा नौकरी का प्रस्ताव मिला। फिर उनकी बनारस छोड़ने की घड़ी आ गई। लेकिन यहाँ की मिट्टी, जीवन और आब-ओ-हवा उनके तन-मन में बस गई थी, अतः उन्हे इससे दूर जाते हुए कष्ट का अनुभव हो रहा था। लेकिन जीविकोपार्जन के उचित अवसर को देखकर उन्हे बनारस छोड़ना पड़ा। यह भी सच है कि 'काशी में त्रिलोचन सुखी न थे। कष्ट कम न दिया काशी ने उन्हें। सताया भी। दुत्कारा भी। अन्ततः ठुकराया और भगाया भी। भैरो का सोटा उन्हे भी लगा; अन्ततः। लेकिन उनके मन मे जैसे एक और काशी थी।'[44] सम्भवतः वह काशी, जिससे उनका (बकौल नामवर सिंह) 'प्रणय-कलह' था। वास्तव मे 'बनारस मे त्रिलोचन का इतिहास क्लर्की का इतिहास रहा है—बेकारी के साथ-साथ सन् '75 मे बनारस छोड़ने के पहले के पैतीस-चालीस सालो का इतिहास 'हस' में प्रूफरीडरी और जौनपुर मे थोड़े-दिनो की मास्टरी से शुरु होकर एक अखबार से दूसरे-तीसरे, चौथे अखबार तक। समय-समय पर उन्होंने ट्युशनें भी की, और उस 'सभा' में नौकरी भी, जिसके मालिक की सूरत से उन्हें घिन आती थी।'[45] उनके अभावों, सघर्षो, जीवट और अलमस्त फक्कड़पने की ढेरो कहानियाँ बनारस के साथ जुड़ी हुई हैं। उनके बनारस-प्रवास के सम्बन्ध मे श्री काशीनाथ सिह की बेबाक टिप्पणी है—'इसी बस्ती मे रहते हुए, तिरस्कार और उपेक्षाएँ झेलते हुए, किसी से कोई शिकायत या मिन्नत न करते हुए, दूसरो के आगे हाथ फैलाए बगैर एक आदमी सिर उठाये ताव से जीता चला जाय, इससे बढ़कर क्या तौहीन हो सकती है बनारस की। भला यह भी कहने में कोई मजा है कि इस बस्ती मे चालीस वर्षो से एक त्रिलोचन रहता था, जिसका कुछ नही उखाड़ सकी मुसीबते।'[46]

1975 के अन्त मे त्रिलोचन बनारस छोड़कर भोपाल गये और वहाँ 'म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' मे 'भाषा संपादक' के पद पर नियुक्त हुए। उन्हें यहाँ अच्छा वेतन, आवास, माहौल और सम्मान मिला। यहाँ उन्हे नयी पीढ़ी के सक्रिय साहित्यकारों से मिलने-जुलने और बहस-मुहाबसे का अवसर मिला। यहाँ पर उन्हें अशोक वाजपेयी, सोमदत्त, हरिनारायण व्यास, रमेशचन्द्र शाह, प्रभाकर श्रोत्रिय, राजेश जोशी आदि का संसर्ग प्राप्त हुआ। राजेश जोशी ने उनकी कविताओं का चयन और क्रम-निर्धारण किया, जो 'ताप के ताए हुए दिन' नाम से 1980 में प्रकाशित हुआ। अप्रैल 1978 तक त्रिलोचन ने 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' में कार्य किया।

मई 1978 में त्रिलोचन भोपाल से दिल्ली चले आये। यहाँ उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय

के उर्दू विभाग में 'उर्दू-हिन्दी कोश' के संपादन में नौकरी मिल गई। मई '78 से मार्च '84 तक उन्होनें यहाँ काम किया। यहाँ उनकी बँधी तनख्वाह एक हजार रुपये मासिक थी। उनकी तनख्वाह दिल्ली जैसे महानगर की महँगाई को देखते हुए काफी कम कही जायेगी। वे अपने माडल टाऊन स्थित निवास से पैसे बचाने के लिए काफी दूर पैदल चलकर, तब डी० टी० सी० बस में किसी तरह लद-फद कर विश्वविद्यालय आते-जाते। फिर भी यहाँ की स्थिति बनारस से बेहतर थी। दिल्ली मे उन्हे बनारस के पुराने मित्रो—शमशेर, नामवर, केदारनाथ सिंह, विष्णुचन्द शर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी के अलावा अन्य अनेक नये साहित्यकारों, प्राध्यापको के साथ साहित्यिक बैठकी करने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे त्रिलोचन प्रसन्न रहते। 1981 मे 'ताप के ताए हुए दिन' सग्रह पर उन्हे 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' मिला। '81 में ही उनका 'उस जनपद का कवि हूँ' नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। बहुत समय से उपेक्षित त्रिलोचन साहित्यिक चर्चाओ व गोष्ठियो के केन्द्र में आते गये। 5 व 6 जून 1982 को 'म० प्र० प्रगतिशील लेखक संघ' की ओर से इन्दौर मे 'महत्व त्रिलोचन' नामक गोष्ठी का आयोजन किया गया। 'उ० प्र० हिन्दी संस्थान' द्वारा उन्हें 'दिगन्त' एवं 'गुलाब और बुलबुल' कृतियो पर 1983-84 का सम्मान-पुरस्कार दिया गया। अब वैसी स्थिति नही रही, जब त्रिलोचन ने कहा था—'नही हूँ किसी का भी प्रिय कवि मै' ('चैती', पृ. 54)। अब वे कितने ही लोगो के प्रिय कवि बन गये, और कुछ लोगो के तो 'सबसे प्रिय कवि'। एक समय था जब त्रिलोचन ने देखा—'प्रगतिशील कवियो की नई लिस्ट निकली है। उसमें कही त्रिलोचन का तो नाम नहीं था।' ('उस जनपद का कवि हूँ' पृ. 11 द्वि. स. '82)। उसी त्रिलोचन का प्रगतिशील कवियो की जमात मे नागार्जुन और केदार के बाद तीसरे स्थान पर दाखिला मिल गया, बिना किसी शोर-शराबे के।

दिल्ली विश्वविद्यालय में काम करते हुए 1983 में उन्हें पहला हार्ट अटैक हुआ और शारीरिक शक्ति भी क्षीण हो गयी। भोजन एकदम कम हो गया। तबियत ठीक होते न होते म० प्र० शासन द्वारा उन्हे डॉ० हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र0) स्थित 'मुक्तिबोध सृजन पीठ' का अध्यक्ष पद संभालने की पेशकश की गई। 28 मार्च 1984 को उन्होने 'मुक्तिबोध सृजन पीठ' का अध्यक्ष पद सम्भाला। इस पद पर काम करने के लिए उन्हें अच्छा माहौल, सम्मान और रहने की माकूल स्थितियाँ प्राप्त हुईं। यहाँ पर वे विश्वविद्यालय परिसर में रहकर अनेकानेक साहित्यिक गतिविधियों व आयोजनों को संयोजित-संचालित करते रहे। यहाँ आने के बाद उनकी कविताओं के प्रकाशन की लहर सी चल पड़ी,—'अनकहनी भी कुछ कहनी है' ('85), 'तुम्हे सौंपता हूँ' ('85), 'फूल नाम है एक'

('85), 'प्रतिनिधि कविताएँ' (सं० केदारनाथ सिंह, '85), 'देशकाल' (कहानी संग्रह, '86), 'चैती' ('87), 'अमोला' (बरवै सग्रह, 1990)।

त्रिलोचन का सागर प्रवास सुखद रहा। लम्बे जीवन-संघर्ष के बाद उन्हें पुरसुकून जिन्दगी जीने को मिला और वे जीवन और लेखन दोनो मे ही व्यवस्थित और नियमित हुए। पर, सागर प्रवास में ही क्रूर काल के प्रहार से उन्हें गहरा आघात लगा। सागर में 19 दिसम्बर, 1988 को उनके हर दुःख-सुख की संगिनी, जीवन-संगिनी जयमूर्ति देवी का दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। पत्नी के निधन से वह टूट से गए। कड़े-से-कड़े जीवन-संघर्ष में सीना तानकर चलने वाले त्रिलोचन को अपने संघर्षों की संगिनी के निधन का दुःख रुला गया। उनकी व्यथा उन्ही की जबानी : 'अपनी पत्नी के देहान्त के बाद मैं बहुत विक्षिप्त हो गया था; तब मैने मुक्तिबोध सृजन पीठ वालों से कहा कि अब मै बिल्कुल बेकार हो गया हूँ। किसी काम का नहीं रहा, अतः मुझे छुट्टी दे दीजिए। मगर अशोक वाजपेयी न माने और मुझे अध्यक्ष पद पर रहने दिया। जब मेरी पत्नी का देहान्त हुआ, मै रोया नही और मेरी ऑखो से ऑसू भी नही गिरे। पर मै बहुत अधीर हो गया था। लेकिन अपने को संतुलित रखा। ... जब मुझे परिक्रमा कर अग्नि देनी थी, उस समय मैं बहुत अधीर हो गया था और अपने को सम्भाल न सका। रोया भी। तब मुझे लक्ष्मण सिह जी ने न सम्हाला होता तो मैं चक्कर खाकर वही गिर जाता।'[47] अपनी पत्नी के प्रति वे आजीवन पूरी तरह ईमानदार रहे और अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह किया।

सागर विश्वविद्यालय मे 'मुक्तिबोध सृजन पीठ' के अध्यक्ष पद पर वे 28 जुलाई 1990 तक बने रहे। इस बीच 1987 मे नामवर सिह ने 'आलोचना' (अंक '82) का त्रिलोचन केन्द्रित विशेषांक निकाला और कवि त्रिलोचन के मूल्यांकन के लिए एक नये काव्यशास्त्र की आवश्यकता बताई। फिर अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने उन पर विशेषांक निकाला। फरवरी 1990 में 'अमोला' संग्रह पर उन्हे म० प्र० का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' मिला। 1990 में ही वाणी प्रकाशन से प्रकाशित डॉ० रामविलास शर्मा की पुस्तक 'रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' में त्रिलोचन की कविता पर तीन महत्वपूर्ण लेख संकलित थे।

जुलाई 1990 मे मुक्तिबोध सृजन पीठ से अवकाश ग्रहण करने के कुछ समय बाद उन्होंने 11 नवम्बर 1991 से 31 मई 1992 तक हिन्दी-विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविधालय में 'विजिटिंग प्रोफेसर' के रूप में अध्यापन किया। सन 1992 में ये दिल्ली आ गये और

वहाँ ईरानी दूतावास द्वारा तैयार कराये जा रहे 'फारसी-हिन्दी शब्द कोश' में संपादन-कार्य करने लगे। यहॉ वे अगस्त '95 तक कार्य करते रहे। 28 दिसम्बर 1995 से उन्हें पुनः डॉ० हरि सिंह गौर विश्व विद्यालय, सागर में 'मुक्तिबोध सृजन पीठ' का अध्यक्ष पद सौप दिया गया, जिस पद पर वे आज काम कर रहे है। मार्च '99 मे उन्हें 'सुलभ इंटरनेशनल' संस्था द्वारा प्रदत्त प्रथम 'सुलभ साहित्य पुरस्कार' के लिए चुना गया और पुरस्कार स्वरुप दो लाख रुपये की राशि, स्वर्ण मेडल और प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

आज भी त्रिलोचन जी अपनी पत्नी की मृत्यु के सदमे से ऊबर नही सके है। उन्ही की जबानी : 'जब से मेरी पत्नी नही रही, मेरा काव्य ही छूट गया है। उनके मरने के बाद से मैं आज तक एक पंक्ति नही लिख पाया। जब वो थी तो मेरे लिए उन्हे केवल देखकर (क्योकि वे अनपढ़ थी तो मुझे कहॉ से प्रेरणा देतीं) ही मुझे प्रेरणा मिलती थी और मै काव्य रचता था और खूब लिखता था। पर अब जैसे मेरे सारे भाव उनके साथ चले गये। अब मुझे कभी कोई आवेग नही आता।'[48] पत्नी की अन्तिम स्मृति के कारण सागर से उन्हें भावनात्मक लगाव बना हुआ है। फिर भी अब वे मुक्तिबोध सृजनपीठ के अध्यक्ष पद से मुक्त हो जाना चाहते है, और वापस अपने घर (चिरानीपट्टी, जिला-सुल्तानपुर) जाना चाहते है। अस्सी की वय पार कर जाने के बाद वे काफी कमजोर हो गये है फिर भी अकेले रहते हैं। उन्हें उच्च रक्तचाप की शिकायत है। भोजन भी काफी कम हो गया है, बस दो-चार फुल्के सुबह-शाम। कमजोर और अधिक वय के होने के बावजूद वे चिड़चिड़े नहीं हुए है, बल्कि हर परिचित-अपरिचित आगन्तुक का स्नेह और हर्ष के साथ स्वागत करने को प्रस्तुत रहते है, चाहे इससे उनकी नियमित दिनचर्या मे बाधा ही क्यों न पड़े। अपने खानसामा और सेवक पुरुषोत्तम के साथ वे काफी स्नेह, सम्मान और आत्मीयता के साथ बर्ताव करते है। उसके किसी दिन गैर हाजिर होने पर उन्हे भूखे भी रहना पड़ता है, किन्तु इससे वे नाराज कभी नही होते। उन्हें जीवन के कटु संघर्षो से लड़ते हुए इतनी ताकत मिली है कि अब शायद उन्हें अकेलेपन से डर नहीं लगता। उनके छोटे पुत्र अमित की पत्नी एक बार कुछ दिन उनकी सेवा में रहने के विचार से सागर आयीं। काफी सोच-विचार के बाद त्रिलोचन जी ने फैसला दिया कि, 'बहू, यहॉ तेरी उतनी आवश्यकता नही, जितना अमित और उसके छोटे पुत्र-पुत्री को है; क्योंकि काम से लौटने पर अमित को पत्नी का प्यार और बच्चों के स्कूल से लौटने पर माँ का प्यार मिलना चाहिए।' यह उनके उदात्तता का परिचायक है, साथ ही निष्पृह वैष्णव गृहस्थ का परिचायक भी। अपने समानधर्मा कवियों—नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल तथा आत्मीय समीक्षक डॉ० रामविलास शर्मा के निधन से वे व्यथित और अकेलापन महसूस करने लगे हैं।

व्यक्तित्व विश्लेषण : जीवन-संघर्षो के 'किंवदन्ती पुरूष'

त्रिलोचन जी के बाहरी व्यक्तित्व की रेखाएँ सामान्य है। गेहुँआ रंग, साधारण नैन-नक्श, मझोला कद, मजबूत काठी, उन्नत ललाट, चौड़ी छाती, उभरा हुआ सीना, लम्बी बाहे, छोटी ऑखे किन्तु अनोखी चमक युक्त, बढ़ी हुई सफेद दाढ़ी-मूँछ, सादगी भरा लिबास—कुल मिलाकर गॉव के एक कर्मठ खेतिहर का सा रंग-रुप। त्रिलोचन के इस ऊपरी सादगी के पीछे एक बेहद मजबूत रीढ़ वाला आदमी मौजूद है, जिसे कभी मुक्तिबोध ने 'अवध का किसान कवि' कहकर अभिहीत किया था; समय की मार झेलकर जिसका चेहरा मैक्सिम गोर्की से मिलता है। 'त्रिलोचन ऊपर से जितने सीधे, सरल तथा पारदर्शी हैं, भीतर से उतने ही फौलादी तथा रोमाचक। सघर्ष मे तप कर फौलादी बना उनका मन कोमल, उदार और निष्कपट भी बहुत है। नौकरी हो न हो, घर में खाने का सामान हो न हो, भीतर से चाहें कितने भी दुःखी क्यों न हो, पर ऊपर से वे हमेशा मुस्कुराते रहते हैं। दुःख और पीड़ा को चुपचाप पी जाना, ऊफ तक न करना उनकी आदत में शुमार है।'[49]

त्रिलोचन मे गजब की सहन शक्ति और धैर्य है। निराला की तरह उन्होने भी जीवन में काफी संघर्ष किया है, तथा उपेक्षा और विरोध सहा है। लेकिन निरन्तर विरोधो और चोट पर चोट सहने के बावजूद वे निराश और कुंठित नही हुए वरन् उनका स्वाभिमान दिप्त व्यक्तित्व और भी खरा होता गया—

> 'जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है,
> तप-तप कर ही भट्ठी में सोना निखरा है।'[50]

अपार अपमान झेलकर जीने की कथा ही त्रिलोचन की जीवन-यात्रा रही है। अवध के एक पिछड़े गॉव में पैदा होने वाले इस कवि ने बचपन से ही जीवन की विषमताओं को नजदीक से देखा और भोगा है। आर्थिक अभावों से उत्पन्न अभावग्रस्त जीवन परिस्थितियों से निरन्तर संघर्षरत रहते हुए भी अनके अन्दर अदम्य जीजिविषा विद्यमान रही है। उन्हे अपने जीवन में मिले अनेकानेक संघर्षों से शिकायत भी नहीं है—

'आभारी हूँ मै पथ के सारे आघातों का
मिट्टी जिनसे बज्र बनी उन फुटपाथों का।'[51]

जीवन के कठिन सघर्षों ने ठोक पीटकर उनके व्यक्तित्व को बज्र की तरह कठोर और हिमालय सदृश अडिग बनाया है, तो साथ ही उन संघर्षो से उनके काव्य व्यक्तित्व को एक प्रामणिक जीवन अनुभूति से उत्पन्न तेजोदीप्ति मिली है। जीवन की बुनियादी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए उन्हे कठिन संघर्ष करना पड़ा है–'खाली पेट भरूँ, कुछ करूँ कि चुप मरूँ?' उनके लिए अर्थाभाव मारक रहा है–ठीक निराला की तरह उनका स्वाभिमान विषम परिस्थितियों में और भी सतेज होकर उनके ज्योतिष्क लोचनों में उभर आया है–

'साँसों के द्रुतगामी रथ पर नहीं रुका हूँ
चिरयात्री मैं, ठोकर खा कर नही झुका हूँ।'[52]

* * *

'... हार नही मैं जीते
जी मानूँगा। और लडूँगा उत्पातो में।'[53]

* * *

... मेरी छाती
बज्र की बनी है, प्रहार, फिर प्रहार हो,
बस न कहूँगा। अधीरता मुझे न भाती,
दुःख की चढ़ी नदी का स्वाभाविक उतार हो।
संवत् पर संवत् बीते, वह कहीं न टिहटा,
पॉवो में चक्कर था। द्रवित देखने वाले थे।
परास्त हो यहॉ से हटा, वहॉ से हटा
खुश थे जलते घर से हॉथ सेंकने वाले।[54]

अपने आरम्भिक काल से ही आर्थिक अभावों से तंगेहाल, जीविका की तलाश में वे शहर-शहर भटकते रहे। लेकिन कभी किसी से माँग कर कुछ लिया नहीं, खाया नही, चाहें खाली पेट पानी पीकर ही सो गये। उनके बनारस-प्रवास के समय की सन् 1950, 51 और '53 की डायरियों के पृष्ठ उनके कठोर जीवन संघर्ष के दिनों के सच्चे दस्तावेज हैं। इन डायरियों में अंकित कितने ही दिन ऐसे आये हैं, जबकि वे केवल सूखी रोटी खाकर या चने पर गुजारा किया है, या खाली पेट केवल पानी पीकर सो गये हैं। 16 जनवरी 1950

को वे अपने उद्धत स्वाभिमान के साथ संकल्प करते है–'सूखे चने खा लेना ठीक, किसी के यहॉ जाकर खाना ठीक नही।' ('रोजनामचा' '50)। लेकिन उनका यह निश्चय जब तब टूटता भी नजर आता है, और वे यह स्वीकार करते है कि, 'आर्थिक अभाव दृढ़तम संकल्पो को भी उखाड़ फेकता है।' ('रोजनामचा'; त्रिलोचन, 14 अगस्त '50)। 29 जुलाई ('50) को वे आर्थिक अभाव से घिर जाने पर केदारनाथ सिह से कहते हैं–'लाचार होने पर रिक्शा चलाऊँगा।' आर्थिक अभाव से उपजी सघन पीड़ा को व्यक्त करती हुई 7 सितम्बर '50 की 'रोजनामचा' मे अंकित यह टीप कितनी मार्मिक है–"हाथ खाली है। अभाव का अनुभव होता है। आवश्यकताऍ उपस्थित है। उन्हें टालता हूँ। यों दिन बीत रहे हैं। जी हॉ, यह भी जीवन है। इसकी भी याद रहेगी। या कौन जाने, मन तो इतना चंचल है कि आज जिसके लिए बेचैन है, कल उसकी याद तक नही करता। मेरी मानसिक-यात्रा इतनी एकान्त और निर्जन है कि कभी-कभी मै आत्मकरुणा से भर उठता हूँ। पर मुझसे भी बढ़कर दुखी इस दुनिया मे और होगे। मै तो अपने को दुखी और दीन-हीन मानता भी नही। हॉ, लाभ भी क्या है।"[55] अपने दुःख-दर्दो की दास्तान किसी को भी न सुनाना उनकी आदत मे शुमार है। श्री काशीनाथ सिह जी को हैरत है कि, 'बनारस ने ऐसे आदमी को जिन्दा क्यों छोड़ा? ऐसे शख्स को जो सिर्फ दूसरों की सुने, उन्हे उपाय बताये, उनके सुख-दुःख मे शामिल हो और जब अपनी बारी आये तो कविताओं में चला जाये, बातें करनी हो तो सानेटों से करे।'[56]

विरोध और विरोध की एक श्रृंखला है त्रिलोचन जी के व्यक्तित्व में। 'प्रदीप' के सं० जगदीश जी की भाषा और एक बँधी हुई ज़बान का विरोध; 'कहानी' के संपादक श्रीपत राय और 'हंस' के संपादक अमृत राय की सूझ-समझ का विरोध, ना० प्र० सभा में 'हिन्दी शब्द सागर' के निरीक्षक सपादक हेमचन्द्र जोशी की गलत व्युत्पत्तियों का विरोध और सम्मेलन (प्रयाग) में 'अंग्रेजी-हिन्दी कोश' के प्रधान सम्पादक डॉ० हरदेव बाहरी की भोड़ी अनुवाद-गंधी हिन्दी का विरोध। त्रिलोचन जी को जहॉ भी काम करना पड़ा, विरोध को पचाकर, विरोध को स्वीकार कर और विरोध मे अपने ही एक अंश को त्याग कर। विरोध को पचाकर उन्हे कसैला अनुभव मिला, 'प्रदीप', 'कहानी', 'हंस' और 'आज' से, जहॉ से उन्हे त्यागपत्र देना पड़ा।[57] वास्तव में उन्होंने नौकरी करते हुए अपने स्वाभिमान और सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। इसीलिए 'नौकरी' उनके जीवन में 'चरमराई हुई डाल' जैसी ही रही–

'आरर डाल नौकरी है, यह बिल्कुल खोटी
है, इसका कुछ ठीक नहीं है। आना जाना
आये दिन की बात है।'[58]

जीविका की तलाश मे, और स्वभाव से भी घुमक्कड़ त्रिलोचन, जाने कितने झाड़-झंखाड़ों, नदियों-नालों, जंगलो, बियावानो, दलदलो, पहाड़ियों और घाटियों से गुजर चुके हैं। अथाह और अपार हैं इनके अनुभव। ऐसे दुर्लभ दुर्भाग्य कम कवियों को मयस्सर हुए है।

अजीब लगना, अजीबो सा रहना और अनजाने स्थानों या व्यक्तियो मे घूमना, त्रिलोचन जी का स्वभाव रहा है। सिर से पॉव तक मस्तमौला, फक्कड़ रहे त्रिलोचन का अतीत 'फ़ाकेमस्ती, घुमक्कड़ी, सधुक्कड़ी और बनारसी मस्ती' में रचा-बसा रहा है। उनका मन हिसाबी-किताबी नही रहा है जो दुनिया के किये-कराये गये कर्मो का लेखा-जोखा रखे। जो भी मिला, अच्छा या बुरा, उसे स्वीकार किया न मिला तो कोई बवाल न मचाया। कोई शिकवा-शिकायत न की। अलबत्ता इन सबसे मुँह फिराकर हाथ झटकारते अपनी राह चलते रहे। कबीर जैसा मस्तमौला, फकीराना अन्दाज। त्रिलोचन वक्त-बेवक्त, रात-बिरात बनारस की गलियों में लम्बे-लम्बे डग भरते रहने के लिए चर्चित रहे। अक्सर देर से घर आने अथवा कई-कई दिनों तक गायब रहने, सौपे हुए काम को भूल जाने या समय पर पूरा न करने की आदत से उनकी पत्नी त्रस्त रहती थी। इन आदतों के कारण उन पर जब-तब पत्नी का गुस्सा फट पड़ता तो वे अपराधी की भॉति चुपचाप मुँह लटकाए खड़े हो जाते और पत्नी के प्रति क्षोभ को पी जाते। साहित्य-चर्चा उनके लिए नशा की तरह रहा, जिसके लिए उन्होंने समय की परवाह नही की।

उनके सहज, सरल, निश्छल स्वभाव का जादू सबको अपने मोहपाश में बॉध लेता है, और एक बार मिलने के बाद बार-बार मिलने को जी करता है। उम्र के बड़े से बड़े फासले को अपनी उन्मुक्त हॅसी और अपार सौजन्यता से चुटकियों में घटा कर वे अपने समान स्तर का बना लेते है, और अपरिचित को भी कुछ देर में मित्र बना लेते हैं। उनकी सरलता, सहजता, स्वाभाविकता, निरहंकार सभी कुछ आकर्षक है। उनकी बेलौस, सटीक उक्तियॉ मन को छूती हैं। वे इंसानियत, ईमानदारी के साथ-साथ समझदारी के कायल हैं। उनका पानी खरा है। वे स्वाभिमानी हैं, दूसरों का सम्मान करते हैं कि उनके साथ भी शिष्टता का बर्ताव हो। वे अपनों से तो खुलकर मिलते और बतियाते ही हैं, और अपरिचितों को अपनी सौजन्यता और विद्वता से प्रभावित करते हैं। उनकी अजस्र ओजस्वी वाग्धारा में तमाम अनुभव,

ज्ञान के अनेक क्षेत्र, अनेक भाषाएँ और उनका साहित्य प्रवाहित होने लगते हैं। वे अपनी ज्ञान-धारा से श्रोता को आतंकित नही करते वरन् रमाते हुए, बहलाते, हँसाते हुए अपनी अपार 'जानकारी' का लाभ प्राप्त कराते है। कठोर चट्टानों के बीच जिस तरह झरना मुस्कुराते हुए आनन्द बिखेरता है, उसी तरह अपनी विद्वता और गंभीरता के बीच बातो ही बातों मे मिश्री की तरह घुलता हुआ हास्य, बीच-बीच मे चुटकियॉ लेता हुआ हास्य, अस्सी का वय पार करने के बाद भी कर्मठता और जिन्दादिली के आधार पर त्रिलोचन को युवा बनाये हुए है लगातार। त्रिलोचन जी में उतना ज्ञान और कवित्व नही है, जितनी जीवन-शक्ति—दुर्धर्ष और अनभिम्लान। उसी ने उनको वह सब कुछ दिया है, वर्ना न वह होती तो वे क्या होते। उनका जीवन इतना विषम और जीवन-शक्ति इतनी प्रबल रही है कि उनके बारे मे कोई असम्भव प्रतीत होने वाली बात भी कह दी जाए तो लोग उस पर विश्वास कर लेंगे, और यदि कोई सन्देहवादी छेड़ दे कि ऐसा तो हो ही नही सकता, तो उसे जवाब मिलेगा, 'यह सच है कि ऐसा नही हो सकता, पर हम त्रिलोचन की बात कर रहे है, भौतिकी के नियमो की नही।'—असली त्रिलोचन को आधा उनकी परिस्थितयों ने गढ़ा है, और आधा उनके जीवट पर मुग्ध लोगों ने। बीरबल की तरह वे व्यक्ति भी हैं और वदन्ती भी। कवि और कवित्व और कहानी भी।[59] अपने जीवन काल मे ही त्रिलोचन जी 'लीजेण्ड' बन गये है, और 'मिथ' भी। फिर कहा जाय तो अपने प्रिय कवि निराला की ही तरह, वे कथा-चरित्र की तरह लोकप्रिय है। कहानियों पर कहॉनियॉ जुड़ी हुई है उनके साथ, आश्चर्य नही कि उन्होने भी कहानियॉ बनाने मे लोगो की (चुप रहकर) मदद की है।

स्मृति की तीक्ष्णता, अध्ययन की विपुलता, अनुभवों की संपदा, जन से सम्बन्धो की घनिष्ठता त्रिलोचन जी को विश्वकोषीय स्वरूप प्रदान करती हैं।' भाषाओ के अगम समुद्रो का अवगाहन' करने के कारण हिन्दी और उसकी बोलियों के अलावा संस्कृत, पाली, बंगाली, गुजराती, तमिल, उड़िया, असमिया, मराठी, अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, इटैलियन, ग्रीक, लैटिन, बर्मी, ऊर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं और उनके साहित्य का विपुल ज्ञान-संपदा उन्होंने अर्जित किया है। इसीलिए 'वे शब्दों पर लगे खरोचों और उन पर अंकित इतिहास की लकीरों को ऐसे पढ़ सकते है, जैसे कोई ज्योतिषी हमारे हाथ की लकीरों को पढ़ कर भूत-भविष्य, वर्तमान सब कुछ बता देता है। ... नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए शब्द-कोशों के संपादनानुभव ने उन्हें शब्दों का गोतिया बना दिया है।'[60] 1962 में बनारस आये अमेरिकी बिटनिक कवि मॉरिस गिन्सबर्ग ने तो इनके विविध भाषा और साहित्य-ज्ञान को देखकर 'भारत का एजरा पाऊण्ड' तक कहा था।

अपने बारे मे त्रिलोचन जी बताते है कि—'व्यक्तिगत जीवन में भी कटुतम आलोचना सुनते हुए मै कभी निराश नही हुआ। बहुत सी कही-अनकही बाते है। कटुता और द्वेष को मैने कपड़े पर पड़ते हुए 'धूल की गुबार' की तरह झाड़ दिया और झटकार कर फिर खड़ा हो गया। अपने बारे मे गलत और झूठी बातें सुनकर दुःख तो जरुर होता है, पर मै उसे परे ठेल देता हूँ, निराश नही होता और अपने काम में लगा रहता हूँ।'[61] बातचीत में त्रिलोचन जी अपने जीवन के अभावो, दुःखों-दर्दो की चर्चा बिल्कुल नही करते। आज भी वे अपने-आप से यह कहते हुए नही रुकते—

.... उठ, हियाव कर;
अभी सामने सारा रास्ता पड़ा हुआ है।
चमड़ा छिला, चोट काफ़ी घुटनों को आई।
मलकर पॉव झटक दे, चल फिर, नये भाव भर;
मानव है तू, अपने पैरों खड़ा हुआ है।[62]

सन्दर्भ

1. 'ताप के ताए हुए दिन' : त्रिलोचन, पृ0 72 (द्वि० सं0 1996)।

2. त्रिलोचन जी से पद्मा सचदेव की बातचीत, संकलित 'सापेक्ष-38 त्रिलोचन शास्त्री विशेषांक', पृष्ठ 469।

3. 'देव पुरुष बाबा जगरदेव सिंह' : जयप्रकाश सिंह, 'सर्वनाम-47', पृष्ठ 12।

4. 'ताप के ताए हुए दिन' : त्रिलोचन, पृ0 72 (द्वि० सं0 1996)।

5. 'साक्षात त्रिलोचन' : सं० कमलाकान्त द्विवेदी व दिविक रमेश, पृष्ठ 27।

6. 'मेरे कुछ आधुनिक कवि' : शमशेर बहादुर सिंह, 'स्थापना-7' पृष्ठ 88।

7. 'देवपुरुष बाबा जगरदेव सिह' : जयप्रकाश सिह, 'सर्वनाम-47' पृष्ठ 16।

8. 'मेरे कुछ आधुनिक कवि' : शमशेर बहादुर सिह, 'स्थापना-7', पृष्ठ 89।

9. त्रिलोचन जी से बातचीत, सागर, 6-2-99।

10. धरती : त्रिलोचन, पृष्ठ 82 (द्वि० सं0 1977)।

11. वही, पृष्ठ 82।

12. त्रिलोचन जी से बातचीत, सागर, 6-2-99।

13. त्रिलोचन जी से बातचीत, सागर, 6-2-99।

14. शमशेर जी का मौखिक संस्मरण, द्वारा राजू० एम० फिलिप, उज्जैन, दि0-10-1-83।

15. 'मेरे कुछ आधुनिक कवि' : शमशेर बहादुर सिंह, 'स्थापना-7', पृष्ठ-88।

16. 'लय की लोक परंपरा' : त्रिलोचन, संकलित—'सापेक्ष-38, त्रिलोचन शास्त्री विशेषांक', पृष्ठ-638।

17. त्रिलोचन जी से पद्मा सचदेव की बातचीत, 'सापेक्ष-38, त्रिलोचन शास्त्री विशेषांक' पृष्ठ-471।

18. 'मेरे कुछ आधुनिक कवि' : शमशेर बहादुर सिंह, 'स्थापना-7' पृष्ठ-89।

19. 'त्रिलोचन पर डायरी' सं० ओमेन्द्र, पृष्ठ-7 (प्रथम सं0 1995)।

20. 'त्रिलोचन और शम्भू बादल की बातचीत, 'साक्षात्कार' जून-जुलाई 1984, पृष्ठ 124।

21. 'त्रिलोचन जी से पद्मा सचदेव की बातचीत, 'सापेक्ष-38, त्रिलोचन शास्त्री विशेषांक', पृष्ठ 478।

22. 'अभिन्न' (संस्मरण) : विष्णुचन्द्र शर्मा, पृ0 101 (प्रथम सं0 1996)।

23. 'त्रिलोचन का कवि-कर्म' : ऊषा वर्मा का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, (बी० एच० यू0 1997) पृष्ठ 18।

24. त्रिलोचन से केदारनाथ सिह की बातचीत, 'आलोचना : 82' 1987 (जुलाई-सित0) पृष्ठ 10।

25. वही, पृष्ठ 11।

26. 'पलदार त्रिलोचन' : पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय, संकलित 'सापेक्ष 38, त्रिलोचन विशेषांक', पृष्ठ 441।

27. वही, पृष्ठ 441-42।

28. 'मेरे कुछ आधुनिक कवि' : शमशेर, 'स्थापना 7' पृ0 89।

29. 'त्रिलोचन का कवि-कर्म' : उषा वर्मा का अप्रकाशित शोध ग्रंथ, पृष्ठ 24।

30. वही, पृष्ठ 24।

31. 'स्थापना-6', 1970, पृष्ठ 83।

32. 'वर्तमान साहित्य' (अगस्त-92), पृष्ठ 5।

33. 'रोजनामचा' 1950 ई0' त्रिलोचन, 27 जून की टीप।

34. 'स्थापना-6', अगस्त 1970, पृष्ठ 82।

35. 'त्रिलोचन का कवि-कर्म' : ऊषा वर्मा, पृष्ठ 31।

36. 'गुलाब और बुलबुल' : त्रिलोचन, पृष्ठ 46, (द्वि० सं0 1985)।

37. 'त्रिलोचन का कवि-कर्म' : ऊषा वर्मा, पृष्ठ 37।

38. 'ताप के ताए हुए दिन' : त्रिलोचन, पृष्ठ 47 (द्वि० सं0 1983)।

39. 'उस जनपद का कवि हूँ' : त्रिलोचन, पृष्ठ 34 (द्वि० सं0 1982)।

40. 'गुलाब और बुलबुल' : त्रिलोचन, पृष्ठ 85, (द्वि० सं0 1985)।

41. 'डायरी के पृष्ठ' : त्रिलोचन शास्त्री, 'धरातल 5', सितम्बर-1978, पृष्ठ 51।

42. 'फूल नाम है एक' : त्रिलोचन, पृष्ठ 32 (प्रथम सं0 1985)।

43. 'एक बिल्कुल पर्सनल एसे' : शमशेर, 'स्थापना'-7, 1970।
44. 'आलोचना'- 82, 1987 पृष्ठ-95।
45. 'हंस', जनवरी-1991, पृष्ठ-16।
46. 'याद हो कि न याद हो' (सस्मरण) . काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 47।
47. 'त्रिलोचन पर डायरी' सं० ओमेंन्द्र, पृष्ठ 26, (प्रथम सं0 '96)।
48. वही, पृष्ठ 53।
49. 'त्रिलोचन का कवि-कर्म' : उषा वर्मा, पृष्ठ 2।
50. 'उस जनपद का कवि हूँ' : त्रिलोचन, पृष्ठ 11, (द्वि० सं0 '82)।
51. 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' : त्रिलोचन, पृष्ठ 63, (प्रथम सं0 1985)।
52. 'उस जनपद का कवि हूँ' : त्रिलोचन, पृ0 29, (प्रथम सं0 1981)।
53. 'दिगन्त' : त्रिलोचन, पृष्ठ 33 (द्वितीय सं0 1996)।
54. 'ताप के ताए हुए दिन' : त्रिलोचन, पृष्ठ- 47 (द्वितीय सं0 '96)।
55 'रोजनामचा 1950 ई0' : त्रिलोचन, (प्रथम सं0 1992)।
56. 'हंस', जनवरी 1991, पृष्ठ 17।
57. 'अभिन्न' (संस्मरण) : विष्णुचन्द शर्मा, पृ0 107 (प्रथम सं0 1996)।
58. 'ताप के ताए हुए दिन' : त्रिलोचन, पृष्ठ 54, (द्वि० सं0 1983)।
59. 'त्रिलोचन : सो जाने जेहि देई जनाई'—भगवान सिंह, 'सापेक्ष 38', पृष्ठ 19।
60. 'त्रिलोचन : हरदम अलाव के पास' डॉ० कान्तिकुमार जैन, 'सापेक्ष 38' पृष्ठ 38-39।
61. त्रिलोचन जी से महावीर अग्रवाल की बातचीत, 'सापेक्ष 38', पृष्ठ 697।
62. 'उस जनपद का कवि हूँ' : त्रिलोचन, पृष्ठ 104 (प्रथम सं0 1981)।

2

त्रिलोचन का काव्य संसार

त्रिलोचन शास्त्री प्रगतिशील काव्यधारा के एक महत्वपूर्ण कवि हैं। लगभग पचास वर्षो के लम्बे काल-विस्तार मे फैले सृजन-अवधि में इनके चौदह काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए है, जो हिन्दी कविता के इतिहास मे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। कवि त्रिलोचन के चौदह काव्य-संग्रह, एक कहानी संग्रह, एक आलोचनात्मक निबन्ध संग्रह और सन् '50 की डायरी 'रोजनामचा' नाम से प्रकाशित हो चुकी है।

त्रिलोचन जी को कविता का संस्कार अपने गॉव में विभिन्न तीज त्यौहारों और ऋतुओं में गाये जाने वाले लोकगीतो के माध्यम से मिला। इस सम्बन्ध में उनका कहना है, "मेरे गॉव में बसंत-पंचमी से होली तक चौताल गाये जाते थे। हर चौताल के बाद 'उलारा' गाया जाता था। मेरे मन मे कविता का संस्कार उसी को सुनते हुए पड़ा। यानी कविता मैने लोक से सीखी, पुस्तक से नही।"[1] शुरु मे वे 'चौताल' रचने लगे फिर कुछ गद्य कविताएँ रची। फिर शुरु हुई उनकी संघर्षमय काव्ययात्रा जो गीत, गजल, रुबाइयाँ, सॉनेट, काव्य-नाटक, मुक्त छन्द, बरवै और छोटी-लम्बी गद्य-कविताओ के विस्तृत क्षेत्र मे फैली हुई है। इस कवि का समूचा काव्य-संसार निजी वैशिष्ट्य के कारण समकालीन कविता मे स्थायी महत्व रखता है। प्रेम, प्रकृति, पीड़ा, जीवन-संघर्ष और जीवन-सौन्दर्य के कवि त्रिलोचन साधारण जनो के असाधारण कवि है। वे वस्तुतः भारतीय लोक जीवन की पहचान कराने वाले एक ऐसे कवि हैं जो अपने समकालीनो के बीच स्वयं अपनी भी अलग पहचान कराते है। फिर भी अन्य प्रगतिशील कवियों की तरह त्रिलोचन भी लम्बे समय तक उपेक्षित, अचर्चित और अलक्षित रहे। हालॉकि उनके समानधर्मा कवियों (मुक्तिबोध, शमशेर, मलयज आदि) ने उनके काव्य वैशिष्ट्य को आरम्भ से ही रेखांकित करना शुरु कर दिया था और उनकी प्रगतिशीलता को पहचाना था। लेकिन हिन्दी के तथाकथित प्रगतिशील आलोचकों की दृष्टि उनकी तरफ बहुत बाद मे गयी, जबकि स्वयं त्रिलोचन अपने समानधर्मा कवि नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के साथ हिन्दी कविता-सृजन और समीक्षा के केन्द्र में आते गये थे। तब उनकी दृष्टि में वे कबीर, तुलसी, जायसी, गालिब, निराला की प्रगतिशील और जनोन्मुख काव्य-परम्परा के सच्चे उत्तराधिकारी साबित हुए। चौथे दशक से आठवें दशक तक आते आते उनकी रचनाओं ने एक नया काव्य-संसार निर्मित किया। अपने समकालीनों की भीड़ में अपने व्यक्तित्व की

तरह ही त्रिलोचन की कविता भी बिल्कुल अलग, निजी वैशिष्ट्य से पूर्ण है। 'दरअसल वे आज की हिन्दी कविता मे उस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो आधुनिकता के सारे शोर-शराबे के बीच हिन्दी भाषा और हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना की जड़ों को सीचती हुई चुपचाप बहती रही है। त्रिलोचन की कविताएँ समकालीन बोध की सुपरिचित परिधि को तोड़ने वाली कविताएँ हैं और इस तरह आज की कविता (नयी कविता) की हमारी बनी-बनाई अवधारणा को थोड़ा छिन्न-भिन्न करने वाली कविताएँ।'[2] प्रस्तुत है कवि त्रिलोचन के रचना-संसार के वैशिष्ट्य का उनके प्रकाशन-क्रमानुसार एक झलक–

"धरती" त्रिलोचन जी का पहला कविता-संग्रह है। 1945 में पहली बार "प्रदीप प्रेस" मुरादाबाद से यह संग्रह छपा था। 'धरती' की कविताओ का चयन से लेकर क्रम-निर्धारण तक का काम 'प्रदीप' के संपादक और प्रदीप प्रेस के मालिक एवं कवि जगदीश भारती ने ही किया था। कविताओ के छपे हुए फर्मे को देखकर त्रिलोचन जी असन्तुष्ट थे। कारण कि उसमे प्रूफ की बहुत सी भूलें रह गयी थी। प्रथम संस्करण में 'धूप सुन्दर/धूप मे जगरुप सुन्दर' नाम की कविता अलग-अलग दो कविताओ के रूप मे छप गई। शास्त्री जी इस पर खफा थे।[3] पर उस समय की प्रकाशन की स्थिति को देखते हुए उन्हे चुप रहना पड़ा। वास्तव में 'धरती' नाम से उनका संग्रह जून 1944 में ही तैयार था, सिर्फ जिल्दसाजी बाकी थी। पर किसी कारण से जगदीश जी प्रकाशन तिथि के रूप में 1944 का उल्लेख नही करना चाहते थे। इसी कारण उन्होने किताब की जिल्दसाजी सन् 1945 की जनवरी मे करायी। इस तरह 'धरती' का प्रकाशन सन् 1945 में सम्भव हो सका।[4]

"धरती" संग्रह का दूसरा संस्करण 1977 मे नीलाभ प्रकाशन इला० से प्रकाशित हुआ। लेकिन नीलाभ प्रकाशन से छपी किताब पर प्रथम संस्करण 1977 दिया गया है और इसके पूर्व प्रकाशन की कोई सूचना नही दी गयी है। इस संग्रह को उन्होंने 'माँ के चरणो मे' समर्पित किया है। संग्रह के द्वितीय संस्करण मे कुल 88 कविताएँ संकलित है। लेकिन किसी भी रचना का रचनाकाल नही दिया गया है।

प्रकाशन के बाद ही 'धरती' की कविताओं को खूब सराहा गया, क्योकि उसमें सौन्दर्य, कल्पना और यथार्थ का अपूर्व संयोजन था। मुक्तिबोध ने 'हंस' (जुलाई 1946) में इस पर एक लम्बी समीक्षा लिखी, जिसमे कवि को बधाई देते हुए उन्होंने लिखा, "कवि की प्रगतिशीलता अट्टहास-पूर्ण आन्तरिक क्षति-पूर्ति के रूप में नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन-संघर्ष से मँज-घिसकर तैयार हुई है। इसीलिए कवि कह उठा :

'मुझमे जीवन की लय जागी
मै धरती का हूँ अनुरागी
जड़ीभूत करती थी मुझको
वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी, (पृ. 11)

सारी कविताओ मे कवि का गहरा आत्मविश्वास और सामाजिक लक्ष्य के प्रति ईमानदारी प्रकट होती है।'[5] वस्तुत 'धरती'सामाजिक उत्तरदायित्व की रचना है। इसमे उन्होने अपनी 'जनपक्षधरता' की स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की है–

'जिनका कदम जीवन की जय यात्रा का प्रिय प्रतीक है,
मै सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगो का गुन गाता हूँ।'[6]

इसमे किसानी जीवन के सामूहिक श्रम व सघर्ष के चित्रो को सहज और अनलकृत ढंग से बेवाकी के साथ रखा गया है। यथा–

है धूप कठिन सिर-ऊपर
थम गई हवा है जैसे
दोनो दूबो के ऊपर
रख पैर खींचते पानी
उस मलीन हरी धरती पर
मिलकर वे दोनो प्रानी
दे रहे खेत मे पानी।[7]

मानव के सुख-दुख, आक्रोश, भय और प्रफुल्लता मे इस कवि की प्रकृति सहधर्मिणी है। इस सग्रह की कविताओ मे पकृति-चित्र अपने रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द मे बड़े ही मनोरम है। जैसे निम्न पक्तियो मे सस्यस्यामला ग्रामीण प्रकृति का सुन्दर चित्र अंकित किया गया है–

सघन पीली/ऊर्मियों में/बोर/हरियाली/
सलोनी/झूमती सरसो/प्रकम्पित वात से/
अपरूप सुन्दर/धूप सुन्दर[8]

संग्रह की आधी से अधिक कविताएँ प्रकृति से सम्बन्ध रखती हैं।

त्रिलोचन ने प्रेम को अन्तर्मन से गहा है। वे प्रेम को सजीवनी मानते है और प्रकृति व मानव समुदाय से अगाध प्रेम करते है। अतः कवि के लिए प्रेम-भाव व्यक्तिगत नही रह जाता, बल्कि उसे जीवन-जगत का प्रेमी बना देता है—

मुझे जगत जीवन का प्रेमी
बना रहा है प्यार तुम्हारा,[9]

'धरती' मे जीवन के लिए सघर्षरत, श्रम-सीकर से सने स्त्री और पुरुष परस्पर सहयोगी बनकर आते है। यही उनके गार्हस्थ्य-प्रेम का उज्जवल रूप उभर कर सामने आता है। 'धरती' की कविताओ मे 'प्रकृति-प्रेम' की कविताएँ है तथा आदमी-आदमी के प्रेम की भी। पत्नी, प्रकृति और आदमी—तीनो को जोड़ता है प्रेम।

'धरती' संग्रह की एक बहुचर्चित कविता है—'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती'। इस कविता मे उस समय के चालू काव्य भाषा से अलग लोक बोली के सस्कारयुक्त सहज और प्रामाणिक भाषा; वर्णन, संलाप और गद्य के वाक्य-विन्यास मे भी एक सहज अन्तर्निहित लय और लोकगीतो मे अन्तर्निहित मार्मिक सवेदना मिलती है। यह कविता अपने कथ्य और शिल्प की पूरी बनावट मे उस समय की हिन्दी कविता के लिए एक युगांतकारी कंविता थी। छोटी सी चम्पा कहती है—'तो मै अपने बालम को संग साथ रखूँगी/कलकत्ता मै कभी न जाने दूँगी/कलकत्ते पर बजर गिरे।' यहाँ चम्पा उस कलकत्ता शहर पर चोट करती है, जो पैसा कमाने के नाम पर उस समय गाँव के रहने वालों को बेघर बनाकर हजम किये जा रहा था।

'धरती' की अनेक कविताएँ जीवन की कठोर वास्तविकताओ से परिचित कराने वाली है। 'भोरई केवट के घर' शीर्षक कविता, जो द्वितीय महायुद्ध के दौरान रचित है, मे भोरई, कवि से कहता है—

बाबू, इस महँगी के मारे किसी तरह अब तो
और नही जिया जाता
और कब तक चलेगी लड़ाई यह?[10]

यहाँ उपनिवशवादी शोषण के लिए आधिपत्यवादी लड़ाई के दुश्चरित्र से अनभिज्ञ भोरई पर भी उसका मारक असर पड़ता है। 'धरती' के कवि को जनशक्ति में आस्था है इसलिए यहाँ संघर्ष के लिए आह्वान है, मुक्ति आन्दोलन के गीत भी हैं; लेकिन यह चेतावनी भी है कि

'सोच समझकर चलना होगा'।

'धरती' मे सग्रहीत 'जीवन का एक लघु प्रसग' शीर्षक कविता आत्मकथात्मक कविता है, जिसमे कवि अपने आरम्भिक अध्ययन काल की उस घटना का उल्लेख करता है, जिसमे मॉ उसके अध्ययन को अधविश्वास के कारण रोकना चाहती थी तो बूआ (दादी) उसकी पढ़ाई को जारी रखना चाहती थी। यह बातचीत की शैली मे लिखी गई गद्य-कविता है।

'धरती' संग्रह की अन्य अनेक उल्लेखनीय कविताएँ है। जैसे—'तारकों से ज्योति चल कर', 'आया प्रभात', 'जब जिस छन मै हारा', 'तुम्हे पुकार रहा है कोई', 'एक पहर दिन आया होगा', 'मै जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूँ', 'गोविन्द आज तुम नहीं हो', 'आज मै अकेला हूँ', 'चीन, महान चीन', 'धूप सुन्दर, धूप में जग-रूप सुन्दर', 'जिस समाज में तुम रहते हो', 'आजकल लड़ाई का जमाना है', 'एकाधिकार के पंजे मे', 'लौटने का नाम मत लो'—आदि आदि। कुल मिलाकर 'धरती' संग्रह की कविताओ में अपार विविधता है। सग्रह की कुछेक कविताओ मे छायावादी सस्कार हावी हुआ है, वही बहुत सी कविताओं मे वे छायावादी भावलोक से बाहर आकर कथ्य और शिल्प दोनो ही स्तरों पर यथार्थ और प्रगतिशील भूमि पर प्रभावशाली रूप से पैर जमाये हुए है। 'धरती' की कविताओ का वैशिष्ट्य धरती से कवि का जुड़ाव है।

त्रिलोचन की गजलो और रुबाइयो का एकमात्र संकलन **"गुलाब और बुलबुल"** पहली बार नवम्बर 1956 मे पकज प्रकाशन, बनारस से छपा, धरती के प्रकाशन के ग्यारह वर्ष बाद और सॉनेट संकलन 'दिगन्त' के एक साल पहले। इसमे '55-56 मे लिखी गजले और रुबाइयॉ संकलित है। पहले संस्करण मे गजलो व रुबाइयो की संख्या एक सौ सतसठ थी, जिसमें से गजलों की संख्या सतसठ और रुबाइयों की संख्या सौ थी। 1985 मे वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित द्वितीय संस्करण मे रुबाइयो तो उतनी ही है, किन्तु गजलो की संख्या बढ़कर एक सौ दो हो गई।

'रुबाई' मे पहली-दूसरी और चौथी पंक्ति का हमकाफिया (तुक का ऐक्य) होना ज़रुरी है। अगर तीसरी पक्ति मे भी हमकाफिया हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन आम तौर से ऐसा नही होता है। उर्दू रुबाईयों के मुकम्मल स्वरूप की दृष्टि से 'गुलाब और बुलबुल' की रुबाईयों को रुबाईयॉ नहीं कहा जा सकता; चाहें 'कता', 'दोवैती' या 'तराना' कहा जा सके। लेकिन 'त्रिलोचन शास्त्री की इन रुबाईयो (या कतों) को पढ़ने के बाद, उनके प्रगतिशील

रुझानात का पता चलता है। उनमे अपने वतन और अपनी धरती से मुहब्बत और इसके लिए कुर्बानी देने का हौसला पाया जाता है। ये रुबाइयॉं (या कता) उर्दू शायरी की परम्परा से अलग नही है।'[11]

'गुलाब और बुलबुल' के पहले हिन्दी में गजल-संग्रह, शमशेर को छोड़कर किसी और काबिलेजिक्र शायर का नही मिलता। इस संग्रह में संग्रहीत गजलो को फार्म और तकनीक के विचार से 'गजल' के दायरे मे ही रखना होगा। उर्दू के प्रसिद्ध शायर मजहर इमाम ने यह माना है कि "त्रिलोचन शास्त्री की गजले बहुत ऊँची न सही, लेकिन एक मेयार को जरुर बरकरार रखती है। हो सकता है, उर्दू वालो को इन गजलो मे कोई ताजगी और नयापन न महसूस हो, लेकिन हिन्दी को उर्दू गजलो की नरमी, लताफत और नफासत का थोड़ा-बहुत एहसास दिलाने मे त्रिलोचन शास्त्री जरुर कामयाब रहे है।'[12]

संग्रह की कई गजलो के कई शेरो मे बहर का निर्वाह नही हुआ है। कई गजले, मिसाल के तौर पर 'कष्ट होगा तुम्हे रह रह के यो आया न करो', 'उनसे भूला न गया, मुझसे भुलाया न गया', 'बिगड़ा है दिल तो राह पे लाना ही पड़ेगा' पैरोडी जैसी नजर आती है। लेकिन ऐसी गजलो की सख्या अत्यल्प है।

इस संग्रह के गजलों व रुबाइयो की जमीन भी 'धरती' की तरह, मानव-जीवन के प्रति आस्था, विश्वास की है। लेकिन अब त्रिलोचन के पॉव उस पर ऐसे जमे हुए है कि उन्हे जीवन के अनुभवो के एक बहुत बड़े अंश को समेटने और संभालने का साहस है। गजलो की परम्परा के अनुसार 'गुलाब और बुलबुल' की कविताएँ आत्मव्यंजक है। लेकिन उनके बीच झॉकता हुआ व्यक्तित्व, दर्द का ही नही, स्वाभिमान और अल्हड़ मस्ती का भी है। द्रष्टव्य है, कुछ पंक्तियॉं—

'बिस्तरा है न चरपाई है।
जिन्दगी हमने खूब पाई है।'[13]

* * *

'ठोकरे दर-ब-दर की थी, हम थे,
कम नही हमने मुँह की खाई है।[14]

'गुलाब और बुलबुल' की रुबाइयों मे त्रिलोचन की कविता का एक नया तत्व भी

देखने को मिलता है। वह तत्व उनका व्यंग्य है। त्रिलोचन के व्यंग्य मे विद्रूप की जगह संयम और गहरी चोट करने की जगह नोक चुभोने की प्रवृति है। उदा०—

'पद्मविभूषण जो हॅसे हॅसते रहे
हम जो लहरो मे फॅसे फॅसते रहे
बाघ बूढ़ा व कड़ा सोने का
लोग दलदल मे फॅसे फॅसते रहे,[15]

* * *

आप देखेगे सिर धुनेगे अब
सोचकर कोई पथ चुनेगे अब
वे समाजवाद के नशे मे है
आपकी बात क्या सुनेगे अब,[16]

जब चैत के महीने मे 'गुलाब' और 'बुलबुल' मिलन का आनन्द ले रहे है, तो इसे देखकर कवि उल्लास का अनुभव नही कर पाता क्योंकि उसे अपने परिवेश के तेजाबी यथार्थ का मर्मान्तक बोध सता रहा है—

'चैत के दिन है बसी है, गुलाब की डाले
कैसा आनन्द है बुलबुल को, गान आता है।
कितना अवसन्न हूॅ कितना दुखी है मेरा मन
अपनी बस्ती मे कही हर्ष नही पाता है।[17]

'गुलाब और बुलबुल' की प्रणय-सम्बन्धी कविताओं में विरह के चित्र यत्र-तत्र प्रस्तुत है, लेकिन उसमे भी आशा की किरण स्पष्ट झलकती है।

इस संग्रह की गजलो और रुबाइयो की विशेषता यही है कि गजल तथा रुबाई की शैली मे रचे जाने के बावजूद उनकी आत्मा भारतीय ही है और उसका सम्बन्ध हिन्दी से ही है। इन रुबाइयो और गजलो मे कही पर कवि ने प्रणय के, व्यंग्य के एवं व्यक्तिगत अनुभूतियो के भी चित्र प्रस्तुत किए है।

"दिगन्त" उनका तीसरा काव्य-संग्रह है, जो जन० 1957 में जगत शंखधर, वाराणसी द्वारा पहली बार प्रकाशित हुआ। 'दिगन्त' त्रिलोचन के सॉनेटो का प्रथम संग्रह है, और हिन्दी

काव्यधारा मे भी प्रथम सॉनेट संग्रह है। त्रिलोचन के संगतरास जगत शंखधर ने 'दिगन्त' का प्रकाशन ही नही, सकलित रचनाओ का चयन और अनुक्रम भी किया था। जगत शखधर स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े थे और प्रगतिशील चेतना के केन्द्र में थे। इस संग्रह के समस्त (57) सॉनेट अक्टू० '51 से लेकर जन० '55 के दौरान रचे गये हैं। इस संग्रह के सॉनेटो की रचना पद्धति मिल्टॉनिक, शेक्सपिरियन व स्पेसिरियन है। 'सॉनेट' जैसे यूरोपीय काव्यरूप को हिन्दी भाषा की प्रकृति और आन्तरिक लय के साथ जोड़कर उसे 'हिन्दी का जातीय छद' जैसा बना लेने का प्रयत्न इसी सग्रह से शुरु होता है, और इस रूप मे 'दिगन्त' हिन्दी काव्य-जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उन्होने सॉनेट को "रोला छन्द के मात्रिक सगीत मे ढालकर उसका एक अलग सॉचा तैयार किया है, जो पूरी तरह हिन्दी की आन्तरिक लय से मेल खाता है। सॉनेट के लिए इस विशिष्ट छद की खोज त्रिलोचन की हिन्दी भाषा की प्रकृति की पहचान का एक और उदाहरण है।"[18] संग्रह के आरम्भ मे ही 'सॉनेट का पथ' शीर्षक मे कवि ने इसे 'किराये की चीज' कहकर सत्य को स्वीकार किया है, लेकिन उन्होने यह विशेष ध्यान रखा है कि 'कसे कसाए भाव अनूठे/ऐसे आएँ जैसे किला आगरा मे जो/नग है, दिखलाता है पूरे ताजमहल को/गेय रहे, एकान्विति हो।'[19]

त्रिलोचन के सॉनेट इसी आदर्श को सामने रखकर लिखे गये है और इसमे उन्होने पूरी सफलता प्राप्त की है। इस सग्रह को कवि ने अपने संगतरास 'कवि शमशेर को' समर्पित किया है।

इस सकलन मे अनेक सुन्दर और मार्मिक सॉनेट है, जो आधुनिक कविता के अच्छे से अच्छे संग्रह मे स्थान पा सकते है। क्योकि बकौल प्रो. चन्द्रवली सिह, "इन कविताओ ने जीवन की मार्मिक अनुभूति के साथ-साथ ऐसा क्लासिक निखार है जो आधुनिक कवियो मे कम ही मिलता है।"[20] संग्रह के सॉनेटो का सर्वस्व ही 'जीवन' है, 'जीवन राग' है। जीवन के अनेक प्रसगो की मार्मिक और व्यग्यपूर्ण अभिव्यजना इन कविताओ मे हुई है। स्वय कवि यह स्वीकार करता है–

मै जीवन का चित्रकार हूँ चित्र बनाता
घूम रहा हूँ, मन ही मन कल्याण मनाता।[21]

* * *

लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा
नये चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।[22]

वे भाभी, माँ, पत्नी और सहचरी के नाते हर मानवीय रिश्तो के चित्रकार कवि है। 'दिगन्त' पढ़ने के बाद **मलयज** ने त्रिलोचन को 'औसत भारतीयता का कवि' कहा था। 'दिगन्त' के 'दुखियो की विपतिव्यथा' का दर्द अधिक कारुणिक है, 'अपघात' कविता मे निरुपाय लता की आत्महत्या हो या वह बंगाली हो 'जो सीथ बीन कर खाता है अब'। इसमें एक तरफ निम्न जीवन जीने वाले 'भिखारिया', 'अतवरिया' है तो दूसरी तरफ प्रकृति के सजीव एवं सूक्ष्म चित्रो में 'भादो की रात', 'मेंहदी और चाँदनी', 'तीन इन्द्रधनुष' के सौन्दर्य को उकेरा गया है। रोमानी कविताओ मे 'दुनिया का सपना', 'विदा के समय', 'अँजोरिया रात' और 'प्यार' के स्वस्थ संवेदनाएँ अंकित है। 'भौजी' कविता मे कवि ने अपने पारिवारिक प्रेम का बड़ा ही निश्छल, सरस और मनोमुग्धकारी चित्र प्रस्तुत किया है। आज की कविता-ससार मे ऐसे स्वस्थ पारिवारिक चित्र दुर्लभ होते जा रहे है। 'दिगन्त' मे कवि के घर-परिवेश के व्यापक व अविस्मरणीय संस्मरण है। 'दिगन्त' का परिवेश गाँव, शहर और अन्तर्राष्ट्रीय दुनिया मे कवि की जनपक्षधरता का है। 'दिगन्त' का कवि प्रेम और सौन्दर्य का उपासक भी है। लेकिन उसकी हर अनुभूति अपने चारो ओर की मानवता की मगल-कामना से जुड़ी है।

इस सकलन के अनेक सॉनेट श्रेष्ठ व्यग्य के उदाहरण है। 'रोटी', 'जगदीश जी का कुत्ता', 'आया है वह', 'मूर्तिपूजा' आदि कविताओं मे गहरा सामजिक व्यंग्य दिखाई देता है। 'इतना तो बल दो' 'प्राणो का गान', 'गाओ', 'पश्यंती', 'मुक्ति-राग', 'मुक्ति का गायक' आदि कविताएँ श्रेष्ठ उद्बोधन-गीत है, तो साथ ही कवि की जीवन के प्रति आस्था और मानव-मुक्ति के संकल्प को भी व्यक्त करती है। 'स्पष्टीकरण', 'ध्वनिग्राहक', 'कस्मै देवाय', 'दुःख और गान', 'विचार' 'अट्टहास कर', 'चिता हास्य', 'मै सौन्दर्य का उपासक हूँ', 'जीवन सागर', 'भाषा की लहरें' आदि कविताएँ कवि के आत्मपरक चित्र है, विचार है, संकल्प हैं, जिनमे कवि ने 'सामाजिक जीवन के प्रति समरसता' और 'मानव-मुक्ति कामना'—के ध्येय को सामने रखा है। इन कविताओ के कुछ टुकड़े प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नही कर पा रहा हूँ, क्योकि इन पंक्तियो द्वारा कवि की जीवन-दृष्टि का पता चलता है—

धर्म विनिर्मित अधकार से लड़ते लड़ते
आगामी मनुष्य, तुम तक मेरे स्वर बढ़ते.

('पश्यती', पृ० 18)

'मै ने उन के लिए लिखा है जिन्हें जानता
हूँ जीवन के लिए लगा कर अपनी बाजी
जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राजी
कभी नही हो सकते हैं. मै उन्हे मानता
हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता.'

('कस्मै देवाय', पृ0 ,26)

'केवल भारत नही विश्व का मानव जागे
फूले, फले, बढ़े, अपने मन का सुख पाए',

('मुक्ति राग', पृ० 58)

किसी देश मे मानवता को मुक्ति यदि मिली
तो मै ने जीवन पाया, जी की कली खिली.

('मुक्ति का गायक', पृ० 65)

भाव उन्ही का सब का है जो थे अभावमय,
पर अभाव से दबे नही जागे स्वभावमय.

('अपराजेय', पृ० 68)

'काशी का जुलहा' कविता मे मानवतावादी, मानवता-उद्धारक कबीर का एक समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है, तो 'तुलसी बाबा' कविता में उनसे भाषा सीखने और उनका अपनी चेतना मे रमने की बात कही गयी है। 'ग़ालिब' कविता में उन्हे गैर न मानने और उनकी बोली को अपनाने की बात कही गयी है। 'तेनजिङ् और हिलारी के प्रति' तथा 'माओ-त्से-तुंग' कविताओ मे इनके अदम्य साहस और मानवतावादी स्वर को पहचान कर निष्ठा प्रदर्शित की गयी है।

कुल मिलाकर, 'दिगन्त' संग्रह भाव, भाषा, शैली-शिल्प एवं टेक्नीक सभी दृष्टियों से एक सफल रचना है और आधुनिक हिन्दी कविता की एक उपलब्धि भी। कवि ने अपनी साफ

सुथरी और बोलचाल की भाषा मे भावो को ढ़ाला है, भावो को भाषा पर हावी नही होने दिया है।

बाईस साल की लम्बी प्रकाशकीय खामोशी के बाद त्रिलोचन जी के चौथे काव्य-संग्रह **"ताप के ताए हुए दिन"** का प्रकाशन सन् 1980 में संभावना प्रकाशन, हापुड़ से हुआ। इस संकलन को युवा कवि राजेश जोशी ने तैयार किया और नाम भी सुझाया। इस संकलन के पहले खंड मे एकतीस छोटी कविताएँ, दूसरे खंड मे ग्यारह सॉनेट, और तीसरे खड मे चार लंबी कविताएँ ('मै तुम', 'नगई महरा', 'चित्र जांबोरकर' और 'छोटू) संकलित है।' इस संग्रह को कवि ने सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा को समर्पित किया है। संकलन कर्ता **राजेश जोशी** के अनुसार, 'ताप के ताए हुए दिन' के पहले खंड की अधिकांश छोटी कविताएँ वस्तुतः सांकेतिक भाषा की कविताएँ है। प्रकृति के बेहद सश्लिष्ट चित्रो मे बहुत गहरे लुके हुए संकेत है और बेहद आत्मीय कविताओ मे भी। ये कविताएँ मनुष्य के दैनन्दिन कार्यकलापो और सुख-दु:ख का वर्णन करती हुई एक ऐसे सत्य की ओर इशारा करती है, जिससे सामाजिक सरचना के स्वरूप को पहचाना जा सकता है।"[23] संग्रह के दूसरे खंड में जो ग्यारह सॉनेट सकलित है, वे अपनी पूरी बनावट मे पहले के सॉनेटो से भिन्न नही है। इस सग्रह मे कुछ ऐसे सॉनेट है जिनका मुख्य पात्र स्वयं त्रिलोचन है। 'विरोधाभास' सॉनेट कवि की प्रकृति और उसके जीवन को प्रस्तुत करती है—

'सवत् पर संवत् बीते, वह कही न टिहटा,
पॉवो मे चक्कर था. द्रवित देखने वाले
थे परास्त हो यहॉ से हटा, वहॉ से हटा,
खुश थे जलते घर से हाथ सेकने वाले.
औरो का दुख दर्द वह नही सह पाता है
यथाशक्ति जितना बनता है कर जाता है,[24]

('विरोधाभास', पृ० 47)

'आलोचक' सॉनेट मे गुटबाज और चटोर आलोचको पर तीखा व्यंग्य है, तो 'चुनाव के दिन' सॉनेट मे चुनाव के समय गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले राजनीतिज्ञों पर गहरा व्यंग्य है। 'आरर डाल' सॉनेट मे कवि के अकेलेपन की समाज सापेक्ष बेचैनी दिखाई देती है—

'सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ, पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना.

* * *

धीरज धरो, आज कल करते तब आऊँगा,
जब देखूँगा अपने पुर, कुछ कर पाऊँगा.'

('आरर डाल', पृ० 54)

इस सग्रह की चारो लम्बी कविताएँ सग्रह की ही नही, वरन् आधुनिक हिन्दी कविता की उपलब्धि है। इनमे 'नगई महरा' सबसे लम्बी (चौदह पृष्ठों की) रस-सिक्त कविता है। यह कविता 'आलोचना' पत्रिका के जन-मार्च' '73 के अंक में प्रकाशित हुई थी और नीचे टीप था—'चार खण्डों में समाप्य एक लम्बी कविता का प्रथम खण्ड।' लेकिन शेष तीन खंड नही लिखे गये और कविता का प्रथम खण्ड ही संग्रह में संकलित हो पाया। इस प्रकार यह एक 'असमाप्त किन्तु पूर्ण' लम्बी कविता है। जैसा कि **नरेन्द्र पुंडरिक** का कथन है, "इसमें एक लोक-जन का पूरा संसार प्रवाहित है। लोक जन के राग, उनका पूरा परिवेश, उनके ससार, उनकी परम्पराएँ, उल्लास, जीवनोल्लास, जीवन-संघर्ष—सब मिलाकर गंगाधारा की तरह प्रवाहित हो रहा है। इस कविता का काव्य बोध, अर्थ, भाषा एव शब्द-ससार इतने ताजे और टटके है कि पढ़ने पर आन्तरिक सुख का एहसास देते है। संझा, घरनी, धरौवा, गोहनलगुई, पैरो पैरो है, पानी थामना, टुन्न-पुन्न, मुँह-पुह देखे, भलमनई, खुचड़-अढ़कन—इस प्रकार के प्राणवान शब्द त्रिलोचन की कविताओ मे भरे पड़े है।"[25] 'नगई-महरा' कविता की वर्णनात्मकता और नाटकीयता के गुणों के कारण, इस कविता का नाट्य-रूपांतरण **नरेश पंडित** ने किया है और इसे सफलतापूर्वक मंचित भी किया जा सकता है। इस कविता में 'अवध' अपनी सारी प्राकृतिक और सांस्कृतिक गरिमा के साथ मौजूद है। इस संग्रह की एक अन्य महत्वपूर्ण लम्बी कविता 'मै तुम'—'मैं' और 'तुम' (कवि-समाज) की परस्परता और अंतः सम्बद्धता के सूत्रो को व्याख्यायित करती है। इस कविता का कथ्य यह है कि व्यक्ति और समाज के बीच कोई आत्यन्तिक अलगाव नहीं है, फिर भी हर एक का अपना अनुभव है, अपनी दृष्टि है और अपना मत। बच्चों पर लिखी गई 'चित्रा जाम्बोरकर', 'छोटू' जैसी लंबी कविताएँ भी उनकी काव्य क्षमता से परिचय कराती हैं। सहज और बोलचाल की भाषा मे

लिखी गई इन कविताओं को पढ़ते हुए लगता है, जैसे कवि के भीतर कोई बच्चा उपस्थित हो। इनमे बातचीत के अन्दाज ही नही, बातचीत वाली भाषा का भी कलात्मक उपयोग कवि ने किया है। 'मै तुम' की पक्तियॉ है—'मै तुम से, तुम्ही से, बात किया करता हूँ/और बात मेरी कविता है'। 'मै तुम' एक क्लासिकीय विषय-वस्तु की लम्बी कविता है जिसमे कवि ने अपने को ससार के सारे क्रिया-कलापो, सारे प्राणियो, खेतो, कारखानो मे खटने वाले श्रमिको के साथ अपने को जोड़ना चाहा है। यह जीवनोन्मुख चिन्तन के औदात्य पर खड़ी एक महत्वपूर्ण यर्थाथवादी दर्शन की कविता है।

इस संग्रह की अनेक कविताओ मे कवि ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। 'पृथ्वी आकाश', 'बरसाती रात', 'दिन ये फूल के है', 'सरसो के फूल', 'केले के पत्ते', 'काई हरियाई फिर', 'झापस', 'कुहरे मे भोपाल' आदि कविताओ मे कवि ने प्रकृति की विभिन्न रंगो, दृश्यो, भाव-भंगियों का आत्मीय और सुन्दर अंकन किया है। यहॉ प्रकृति के कुछ स्वतंत्र चित्र एवं दृश्य भी है, जो ऋतुओ, संध्या, प्रातः आदि से सम्बन्धित है। यहॉ पर प्रकृति-दृश्य अपने सहज रुप मे आते है, उनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है। द्रष्टव्य है, वर्षा का यह दृश्य—

> 'आठ पहर की टिप् टिप्/सड़क भीग गई है/पेड़ो के पत्तो से बूदे/
> गिरती है टप्/टप्/हवा सरसराती है/चिड़ियॉ समेटे
> पंख यहॉ वहॉ बैठी है'

('झापस', पृष्ठ 37)

संग्रह की 'नदी : कामधेनु' मनुष्य के प्रकृति के साथ लम्बे संघर्ष की कविता है। नदी को कामधेनु मे परिवर्तित कर देना मनुष्य के लम्बे संघर्षो की उपलब्धि है। 'लहरो के साथ रहे कोई', 'जलरुद्ध दूब', 'मैने जो सोचा था', 'कुछ ढंग का लहो', 'रात मे' आदि कविताओ में कवि के अकेलेपन और ऊब की गहन अनुभूति को देखा जा सकता है। लेकिन वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टि और जीवन के प्रति अगाध आस्था उन्हें दारुण अकेलेपन के अंधेरो मे धकेल पाने में समर्थ नही होती।[26]

'ताप के ताए हुए दिन' संग्रह के लिए त्रिलोचन जी को 1981 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला; यह संग्रह की भाव व शिल्पगत श्रेष्ठता का स्वयं प्रमाण है।

'शब्द' कवि की कविताओं का पॉचवॉ सग्रह है, जो 1980 मे वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस सग्रह मे 117 सॉनेट है, जिनका रचनाकाल 1 जनवरी से 10 अप्रैल

1962 है। संग्रह के अधिकांश सॉनेटो का रूप पेट्रार्कीय है। ये सॉनेट अष्टपदी और षट्पदी मे विभक्त है। इस सग्रह को कवि ने 'अग्रज कवि—केदारनाथ अग्रवाल को' समर्पित किया है।

त्रिलोचन के यहाॅ 'शब्द' मानवीय इतिहास तो है ही; वह संस्कृति का लेखा-जोखा भी है। उनके यहॉ 'शब्द' की सत्ता पूरी तरह जागतिक है, लोकमय है। अभिष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिए वे अपने परिचित लोक से जाने-पहचाने शब्दो का चयन प्राय: करते है। वे मानते है कि, 'शब्दो मे भी हाड़ मांस है, जीवन धर कर/वे भी जीवधारियो के स्वरयंत्र संभाले/ स्फुट, अस्फुट दो धाराओ मे प्रवहमान है'। कवि के पास साधन के रूप में मात्र इन शब्दो की ही पूॅजी है, जिनकी शक्ति मे कवि को पूरी आस्था है—

'शब्दो से ही वर्ण गंध का काम लिया है
मैने शब्दो को असहाय नही पाया है
कभी किसी क्षण'

('शब्द', पृष्ठ 44)

और, इस प्रकार 'शब्द, शब्द से व्यंजित जीवन की तलाश मे/कवि भटका करता है', (पृ० 35)। कवि त्रिलोचन के लिए 'शब्द' का अर्थ है—'जीवन से घनिष्ठ साक्षात्कार'।

त्रिलोचन जी यथार्थ 'जीवन बोध' के कवि हैं। यह तथ्य 'शब्द' संग्रह की कविताओं से भी सिद्ध होता है। संग्रह की पहली कविता मे ही वह लिखते है—'दु:खगार है जगत', फिर भी, कवि की ऑखो मे मानवता के सुख-स्वप्न सदा जीवित रहते है। वह ईर्ष्या-द्वेष से मुक्त सोते-जागते हर समय मनुष्य के प्रति अपने विश्वासों को जिलाए रखता है, सबमे अपनापन देखता हुआ। जीवन में फैले अभाव, दैन्य और उत्पीड़न आदि पर विजय के लिए संघर्षरत मनुष्य की जय-यात्रा को वह खुली ऑखो देख रहा है। अपने कठोर जीवन संघर्ष से उन्हे पीड़ा तो हुई है, किन्तु जीवन के प्रति उनकी आस्था, विश्वास, आत्मनिष्ठ स्वाभिमान का स्वर निरन्तर ऊॅचे से ऊॅचा होता गया है। 'शब्द' के अन्तिम सॉनेटो मे से एक मे उनका स्वाभिमान इन शब्दो मे अभिव्यक्त हुआ है—

'जीवन के दिन रात एक कर दिए, न मॉगा
कभी किसी से प्राप्य, कौन सी थी मजबूरी
जिस ने सारी दौड़धूप हर बार अधूरी
छुड़वा दी. हे प्राण, आज का भी दिन भागा,

('शब्द', पृष्ठ 70)

अपने जीवन मे व्याप्त अभाव और दुःखो के बावजूद 'जीवन का प्रेम' त्रिलोचन पर नशे की तरह सवार रहा है। 'जीवन की शराब' शीर्षक सॉनेट मे वे कहते है—

'मै इस जीवन की शराब को पीते पीते
वर्षो का पथ क्षण की छोटी सी सीमा मे
तय करता चुपचाप आ रहा हूँ. अनजाने
और अपरिचित चेहरे अपने जैसे जीते
जीर्ण-शीर्ण मिलते है, मै उन का कर थामे
देता हूँ जीवन, जीवन के मधुमय गाने,

('शब्द' पृ० 35)

एक अन्य सॉनेट मे वे कहते है, "दुख से दबे हुए मानव आ आ, मै ले लूँ/तेरा सब दुःख,—"। जीवन की सुन्दरता मे बाधक बने ढोंगों, रुढ़िगत धर्म व अन्य रुढ़ियो पर कवि ने बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से प्रहार किया है। "ह्दय ह्दय के भाव-वसन" 'कल्पवासियों की बस्ती' 'गृह-गृह में' आदि सॉनेटो मे कवि ने धार्मिक अधविश्वास, हठ और काया कष्टसाधन का और 'भविष्य व्यवसायी दल' मे ज्योतिषियो की आलोचना के साथ ही 'मुझ से' शीर्षक सॉनेट मे उन्होने सम्प्रदायवाद, नस्लवाद और भाषावाद पर आक्रमण किया है।

'मानव प्रेम' के साथ ही 'शब्द' संग्रह की संवेदना का एक और धरातल है—'प्रकृति-प्रेम'। 'जीवन' और उसके सौन्दर्य की तलाश में ही कवि 'प्रकृति' की ओर मुखातिब होता है। इस संग्रह मे 26 प्रकृति-परक सॉनेट है, जिनमें से अधिक सॉनेट वर्षा और बसंत ऋतुओ से सम्बन्धित है। दन दोनो ऋतुओ के सौन्दर्य का वर्णन उन्होने अनेक सॉनेटो मे किया है। उन्होने बादलो और वर्षा के कई रूपो का वर्णन किया है। बादलो को विविध रगो, आकारो, गतियो मे उकेरा गया है। 'जाड़े का दिन' और 'मंगल के दिन' शीर्षक दो सॉनेट ऐसे है, जिनमें जीवन की चहल-पहल से भरे हुए दो सुन्दर दृश्य-चित्र अंकित किए गए है। पहला दृश्य बनारस के घाट का है, और दूसरा रबी की फसल की कटनी का। जाड़े की कुनकुनी धूप, संध्या, चॉदनी रात्रि के भी अनेक जीवन्त चित्र हैं। संग्रह की अनेक प्रकृति सम्बन्धी श्रेष्ठ कविताऍ काशी की गंगा के इर्द-गिर्द ही लिखी गई हैं।

इस संग्रह मे त्रिलोचन ने कुछ व्यक्ति चित्र भी खींचे हैं। उन्होने माओ, सुभाष बोस, गॉधी आदि महानायको को सॉनेट की 14 पंक्तियॉ समर्पित की हैं। कुछ सॉनेट आत्मप्ररक है।

'शब्द' के सॉनेटो की काव्यभाषा अत्यन्त संवेदनशील, आमफहम, सप्राण और वर्ण्य वस्तु के आग्रह के अनुसार अनेक स्तरीय है। परिनिष्ठित हिन्दी के बीच यत्र-तत्र, प्रसंग और वर्ण्य की मॉग के अनुसार सस्कृत और अवधी के शब्दो का भी प्रयोग किया गया है। वाक्य-विन्यास पूरी तरह गद्यात्मक किन्तु लय पद्य का है, और वाक्यो मे यत्र-तत्र, खाटी हिन्दी के मुहावरे मिलते है। यथा–'यदि पन मे पानी हो', 'फूलो को उतारना कितना शात काम है', 'प्राप्त सुखो पर कोई डीठ गड़ा दे', 'क्यो हिलाइये हाथ, पॉव भी क्यो पिराइये' आदि उक्तियो मे। छंद के कठोर बधन और बातचीत की भाषा की स्वच्छन्दता, इनके द्वन्द्व से भी 'शब्द' के सॉनेटो मे शक्ति और वेग की सृष्टि हुई है।

'शब्द' सग्रह की कविताओं के वस्तु और रूप की एकान्विति के सन्दर्भ मे प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. नदकिशोर नवल स्पष्टतया कहते है कि, 'शब्द' की कविताएँ पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वस्तु सॉनेट के लिए ही बनी है और उनमे सॉनेट का जो रूप है, वह वस्तु से ही बना है। इस प्रकार यह काव्य-रूप उनकी कविताओ पर आरोपित नहीं है; बल्कि एक रचनात्मक अनिवार्यता की देन है।'[27]

'उस जनपद का कवि हूँ' त्रिलोचन जी की कविताओ का छठा संकलन है, जो 1981 मे राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। सग्रह मे संकलित कविताओ का चयन और अनुक्रम कवि के सगतरास कवि केदारनाथ सिह और आलोचक नामवर सिह ने किया। इस संग्रह मे 106 कविताएँ है। अधिकांश 1950-51 की, और फिर '52 की। '53-'54 की तीन -चार। संग्रह मे संकलित सॉनेट शेक्सपियर पद्धति के है। यह सॉनेट तीन भागो मे विभक्त होता है। अन्तिम भाग एक द्विपदी होती है। संग्रह के अनेक सॉनेट उस किसान का परिचय देते है जो स्वयं ही 'जनपद' है। शुरु के कुछ सॉनेट उस किसान की प्रामाणिक तस्वीर है, जो अभावमय है लेकिन जो किसी तरह दीन नही है। इस संग्रह को उन्होने अपने समानधर्मा 'कवि नागार्जुन को' समर्पित किया है।

त्रिलोचन जिस जनपद के कवि है, उसमें गरीबी है, दुख है, इनके साथ भाग्यवाद और उदासीनता भी है। उनकी कविताओं मे उनके जनपद का यथार्थ है, जिससे वे टकराकर जीवनदृष्टि प्राप्त करते है और कहते है–

'यह निर्मम आघात सहो, फिर उठो सँभल कर
आगे बढ़ो, तुम्हारा पथ वह देख रहा है
तुमको एकाकी. ऑसू आए जो बह कर
उन्हे पोछ दो. ... '[28]

कवि को यह दृष्टि उसके जीवन-संघर्ष में मँज घिसकर प्राप्त हुई है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है: 'भूख, उपवास और बेरोजगारी पर जैसी अनुभूति-तीव्रता त्रिलोचन की कविताओ मे है, वैसी अन्य किसी प्रगतिशील कवि मे नही। लगभग वैसी ही अनुभूति जैसी तुलसी और निराला की आत्मकथात्मक पंक्तियो मे है। ऐसी उक्तियो में ट्रेजिक औदात्य है, नैतिक दृढ़ता से मडित मानवीय गरिमा है।'[29] 'उस जनपद का कवि हूँ'—संग्रह के पहले चार सॉनेट इस कथन के प्रमाण है। द्रष्टव्य है कुछ पक्तियाँ—

वही त्रिलोचन है, वह—जिस के तन पर गदे
कपड़े है. कपड़े भी कैसे—फटे लटे है,

(पृष्ठ 11)

* * *

चीर भरा पाजामा, लट लट कर गलने से
छेदो वाला कुर्ता, रूखे बाल, उपेक्षित
दाढ़ी-मूँछ, सफाई कुछ भी नही अपेक्षित

(पृ० 12)

अपनी आत्मपरक कविताओ में 'त्रिलोचन' शब्द का अन्य पुरुष मे प्रयोग करके कवि 'आत्म' से कलात्मक दूरी प्राप्त करके मानो अपनी ही धज्जियाँ उड़ाता है—'भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल'। इस संग्रह की अनेक कविताएँ 'मै' के बारे मे है और वह 'मै' कवि त्रिलोचन है, जो सामान्य जन का समापवर्त्तक है। इस संग्रह मे सतत आत्म व्यंग्य है, आत्म की व्यंजना चारो ओर है। वे स्वय कहते है : 'औरो की ही नही, हँसी मैने अपनी भी/खूब उड़ायी है।'

त्रिलोचन को पता है कि वे जिस जनपद में रहते है, वह भूख तथा अभाव से ग्रस्त है, पर साथ ही अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत है। वे स्पष्टतया देखते है कि धर्म, जाति, भाषा, प्रांतीयता आदि की दीवारे जब तक खड़ी रहेंगी, जनता को व्यवस्था के नरक से

छुटकारा नही मिल सकता। इसीलिए वे कहते है–

'दीवारे दीवारें दीवारें दीवारें
चारो ओर खड़ी है. तुम चुपचाप खड़े हो
हाथ धरे छाती पर, मानो वही गड़े हो.
मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारे
और ढहा दे,[30] .

(पृष्ठ 97)

इस सम्बन्ध मे 'उस जनपद का कवि हूँ' संग्रह के आवरण पृष्ठ पर छपा कवि केदारनाथ सिह का यह कथन अति महत्वपूर्ण है कि "उस जनपद का कवि हूँ' की कविताएँ एक जनपद से उठकर अपने समय की सम्पूर्ण जन चेतना के अनेक ज्ञात-अज्ञात छोरो को छू लेने वाली कविताएँ है, और वे कविताएँ है, जिनमे स्वाधीनता के बाद के कुछ आरम्भिक वर्षो की सबसे सच्ची और समर्थ धड़कने सुनी जा सकती है।"

त्रिलोचन के 'जनपद' मे एक सघन समाज है जिसमें प्रकृति, प्रेम, पीड़ा, अकाल, बादल, गृहस्थ, पेड़, नीम, बिलौरा, नदी, पपीहा, कवि, कविता, भाखा, संघर्ष सब कुछ है और वह इकहरा नही है। त्रिलोचन के जनपद मे स्वयं त्रिलोचन है जिसके तन पर गंदे, फटे-लटे कपड़े हैं, और उसका 'चीर भरा पाजामा' है, हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर वाले, सत के समान उसके पिता है, 'भूखी-दुखी, अनजान' जनता है, प्राणाधिक प्रिय स्वकीय प्रेयसी है, बचपन की 'इदो', 'बूआ', 'मॉ' 'बाबा' है, शाहो की भाषा बोलने वाला भिखारी है, टेल्हू मुसहर है, सीला-बीनकर, पीमौनी करके किसी तरह जीने वाली 'सुकनी बुढ़िया' है; चमार, काछी, धोबी, तेली है और उनकी दुनिया की छोटी-छोटी झलक है। उनके गॉव मे 'बुढ़िया मरी तो चमारो ने अधे कुँए मे फेक दिया, चिता के लिए लकड़ी तक उनको किसी ने नहीं दी' (पृ० 96)। उपर्युक्त अभाव, शोषण और जीने के लिए अहर्निश संघर्ष में अपने पूरे 'जनपद' के साथ जूझने वाले इस कवि ने देखा:

प्रगतिशील कवियों की नई लिस्ट निकली है
उस में कहीं त्रिलोचन का तो नाम नही था.

(पृ० 111)

त्रिलोचन जैसे गहरे अर्थो मे प्रगतिशील कवि की यह उपेक्षा तत्कालीन प्रगतिवादी

आलोचना और आलोचको की संकीर्ण दृष्टि का परिचायक है।

इस संग्रह के सॉनेटो की शैली—बातचीत की, वर्णनात्मक, चित्रात्मक आदि है। भाषा सरल, सहज है और अवधी के व्यजक शब्दो से अभिव्यजनापूर्ण हो गई है। 'सॉनेट' के फार्म मे कवि अपने भावो को बेरोकटोक व्यक्त कर सका है। सॉनेटो मे वाचन-प्रवाह और बोध की इकाई पंक्ति नही, वाक्य है।

त्रिलोचन जी के सातवे काव्य-सग्रह **"अरघान"** का प्रकाशन 1983 मे यात्री प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। संग्रह की कविताओ का चयन कवि के संगतरास कवि मित्र विष्णुचन्द्र शर्मा ने किया। संग्रह मे कुल 70 कविताएँ है। इस संग्रह में 1953 के प्रयाग कुम्भ के मेले की भीषण मानवीय त्रासदी का अंकन 25 सॉनेटों मे हुआ है। ये 25 सॉनेट विष्णुचन्द्र शर्मा ने सर्वप्रथम 'सर्वनाम' के 1973 के मई अंक में शमशेर के नोट के साथ 'महाकुभ. निर्मम मूल्याकन' शीर्षक से प्रकाशित किया था। इन सॉनेटो मे कवि ने गॉव की अभावग्रस्त श्रमशील जनता का सांस्कृतिक परिवेश दिखाया है—एक 'लघु महाकाव्य' की तरह। इस 'महाकुम्भ : 1953' नामक महाकाव्य का नायक 'जीवनोत्सव प्रेमी' जनता है, जो गॅवई, भदेस है, पर अपनी संस्कृति के मर्म को जानती है। ये पच्चीस सॉनेट एक दूसरे से जुड़े हुए है, और इस प्रकार 'महाकविता का स्थापत्य' बनाते है। इन सॉनेटो मे कवि ने कबीर की धर्मनिरपेक्ष, मानवतावादी भूमि पर खड़ा होकर, धर्म के ठेकेदारो, धर्म गुरुओ के पाखंड, नागाओ के रक्त-पिपासु रूप और शासन के जन-पीड़क रूप को उधेड़ कर रख दिया है और आम धर्मभीरु जनता के जीवन की विडम्बना पर भीतरी व्यग्य करता है।

25 सॉनेटो के अतिरिक्त सग्रह की बाकी कविताएँ मुक्त छन्द मे है। उनमे शाब्दिक मितव्ययिता देखते ही बनती है। कुछ छोटी कविताएँ है जो अपने स्थापत्य में अपूर्व हैं; कुछ हाइकू जैसी कविताएँ है, जो अति अर्थ गर्भित, भावगर्भित और स्थापत्य मे अनूठी हैं। त्रिलोचन वाक्यों मे कविता लिखते है और उनमे गद्यात्मकता के बावजूद लहरिल प्रवाह वर्तमान रहता है। संग्रह की एक छोटी सी कविता 'सौदर्य'—जो 'तीन पंक्तियों मे विभक्त एक पूरा वाक्य' है, द्रष्टव्य है—

'मै
तुम्हे निहारते
अघाता नही,

(पृ० 36)

इस संग्रह की एक छोटी सी कविता के छोटे से अंश मे 'रूप, गध, शब्द' तीनो के बोध एक साथ हो जाता है—

'नीम के फूलो की/हरी भरी सुगंध पिए/
रात/मौन रहती है/बॉसुरी की तान सुना करती है,

(पृ० 47)

कवि ने भोर मे उठकर गॉव मे महुआ बीनने चलते समय गॉव के सारे वातावरण को पूरी चित्रमयता, गतिमयता के साथ उपस्थित कर दिया है—

'कुकुड़ूँ कूँऽऽ/उठो, जल्दी उठो,/महुए बीन लो/
दखिनहिया जगी/और तारे ढले/नीद से जाग कर/
बटोही चले/चिड़िया बोली—/(सुनो ! सुनो ! !)/
ठाकुर जीऽ/उठो, जल्दी उठो,/ महुए बीन लो,[31]

('उठो', पृष्ठ 29)

वस्तुतः जीवन के राग-रंग पर त्रिलोचन की पकड़ अद्भुत है। जीवनधारा उनके यहॉ लहराती हुई दिखाई देती है। वे स्वय स्वीकार करते है—

'जहॉ जहॉ जीवन को देखा वहॉ जा लिया,
मेरे स्वर जीवन की परिक्रमा करते है.',

('सहस्रशीर्षा पुरुष.', पृ० 54)

'सब्जी वाली बुढ़िया' कविता कवि की पर-दुःखकातरता और उससे उपजी असीम-मानवीयता की झलक पूरी तरह दिखा जाती है। यह कविता सहज-सरल बोलचाल की भाषा शैली मे है और कविता व कवि की जीवन्तता का दस्तावेज है। 'परदेशी के नाम पत्र' मे चिट्ठी लिखने की पुरानी चाल को अपनाया गया है और घर-गॉव की दो-तीन बातो के बीच मे प्रवासी की पत्नी लिखती है—'यहॉ जो तुम होते'।

कुल मिलाकर सग्रह की कविताऍ अपने वस्तु व रूपगत विविधताओं व जीवन के विविध सत्यों के साक्षात्कार से आपूरित हैं।

'तुम्हें सौपता हूँ' त्रिलोचन की कविताओं का आठवॉ संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1985 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। इसमें उनकी 1935 से '83 तक के बृहद रचनाकाल की छोटी-बड़ी उन्यासी कविताऍ संकलित है। इस संग्रह मे त्रिलोचन के चार

काव्य-रूपक ('वे घर आ रहे है', 'फ्रांस', 'भूखे भेड़िये', 'शैतान और इंसान') संकलित हैं, जिन्हें कवि ने दूसरे महायुद्ध के भीषण नरसंहार की पृष्ठभूमि में लिखे थे। यह उनकी कविताओ का ऐसा प्रतिनिधि सकलन है, जो उनके कवि व्यक्तित्व के सभी आयामो की झलक देता है। इसमे उनके सॉनेट, गीत, छन्दोबद्ध व मुक्त छन्द की कविताएँ, कुडलिया के साथ ही चार काव्य-रूपक भी सग्रहीत है। सग्रह के आरम्भ मे दिये काल-निर्देश के सहारे प्रत्येक रचना को इतिहास के महत्वपूर्ण दौर के साथ रखकर गहन अध्ययन पूर्वक देखा जा सकता है। सग्रह की कविताओ को पढ़ने से स्पष्ट है कि त्रिलोचन कष्ट और पीड़ा सहती जनता की मनोस्थितियो को अपनी कविता मे प्रकट करते है। इस संग्रह मे संकलित छोटी कविताओ मे कवि की जीवनानूभूतियॉ, जीवन-राग, सहृदयता, पर-दुःखकातरता और शोषित जन से प्रगाढ़ आत्मीयता आदि की अभिव्यक्ति हुई है। संग्रह मे 'सशय', 'प्यास', 'निर्झर', 'परिचय', 'जीवन का रस', 'अनुबंध', 'अस्वस्थ होने पर' आदि छोटी कविताऍ है, लेकिन ये बहुत बड़े अनुभवो की छोटी कविताऍ है। इनमे जीवन का राग है, आशा और उल्लास है। द्रष्टव्य है 'अनुबध' कविता की पंक्तियॉ—

'उषा आज जैसी है
कल से कही मधुर है
और आज से कल की ऊषा
मोहक और मनोहर होगी
लेकिन यह तब
जब हम अपनी ऑखो से
उसको देखेंगे।'[32]

(पृ० 107)

जीवन के राग-रंग पर त्रिलोचन की पकड़ अद्‌भुत है और वे इसके लिए चिंतित भी दिखाई देते है—

'मॅजर गये आम/कोइलिया न बोली/
बाटों के अपने/हाथ उठाए/धरती/
बसन्त-सखी को बुलाए/पड़े हैं सब काम/
कोइलिया न बोली'

('कोइलिया न बोली', पृ० 18)

'परिचय की गॉठ' कविता मे परिचय, स्मृति तथा जडता की पीडा को कवि ने एक 'व्यापक सरोकार' के तहत सकेतित किया है और प्रेम के आरम्भ का सहज चित्र खीचकर उसके स्वस्थ रूप का परिचय इस प्रकार दिया है–

'यो ही कुछ मुसकाकर तुमने
परिचय की यह गॉठ लगा दी
था पथ पर मै भूला भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन लहर थी उस दिन
तुमने अपनी याद जगा दी,

(पृ० 86)

त्रिलोचन के प्रत्येक संग्रह मे चरित्रो पर लिखी कविताएँ अवश्य शामिल हुई है। वे ऐसी कविताओ के निराले चितेरे है। इस सग्रह मे चरित्रो को लेकर लिखी कविताएँ है–'फेरु', 'रामचन्द्र दूबे', 'रैन बसेरा' (किसी परमानद पर), 'साथ ही साथ', 'आत्मीय गगन' (साही जी के लिये), 'अपने स्वर अपने गान' (दिनेश शर्मा को सम्बोधित), 'बिना मिले लौटने की राह मे' (कवि विजेन्द्र पर)। ये कविताएँ कवि के मेलजोल, आत्मीयता व अपनेपन के व्यवहार की प्रमाण है। ये कविताएँ घर-बाहर, परिवार और समाज के दैनन्दिन दुख-सुख का आत्मीय वर्णन करती है। इतना ही नही, प्रेम और करुणा से भरा त्रिलोचन का हृदय, इन कविताओ के शब्द-शब्द में धड़कता है, और वे कहते है–

'कवि/किसी विपदा पर/धाड़ मार कर रोना/
कविता भी नही है/कविता तो होना है/खोना नही'

('बिना मिले लौटने की राह मे' पृ० 105)

'मै' शैली में रचित 'रैन बसेरा' कविता के उत्तम पुरुष द्वारा पहले काव्य-नायक परमानन्द को शहर में बिना सोचे-समझे यहॉ-वहॉ टिकने के संभावित खतरों से आगाह कराया जाता है पर बाद में उन्हे अपने यहॉ नही टिका पाने की विवशता के कारण उसे अत्यन्त दुखी भी होना पड़ता है–

'कमरा एक और रहने वाले तीन
पत्नी, बच्चा और मै
चौथे की गुंजाइश यहॉ नही
मेरी अनकही चिन्ता
मेरी बिथा बना की,

(रैन बसेरा', पृ० 82)

जैसा कि डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है, "पूरी कविता प्राय. बोलचाल के गद्य के स्तर पर चलती है, मुक्त छंद की किसी लय तक उसे उठाने का प्रयास तक नही है।'[33] फिर भी इस कविता मे स्वत: स्फूर्त प्रवाहमयता विद्यमान है। संग्रह मे संकलित गीत कवि की परिष्कृत शैली, शिल्प, भाव-व्यजना और कल्पना के सुन्दर उदाहरण है। इस संग्रह मे जो सॉनेट संकलित है, वे शेक्सपीरियन पद्धति पर रचित है।

इस संग्रह मे 1944-45 के द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठभूमि मे लिखे चार काव्य-रूपक 'शाति पर्व' शीर्षक अलग खंड मे रखे गये है। इन कविताओ में त्रिलोचन का सात्विक क्रोध, जीवन को विध्वंस और महा नरसंहार की आग में ढकेलने वाली विश्व-शक्तियो के खिलाफ व्यक्त हुआ है। 'वे घर आ रहे है' कविता मे फासिस्ट विरोधी सग्राम मे हिस्सा लेकर घर लौट रहे भारतीय सैनिको के प्रति सहानुभूति व्यक्त किया गया है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'यह उन बहुत थोड़ी कविताओ मे होगी जो दूसरे महायुद्ध मे भाग लेने वाले भारतीय सैनिको पर लिखी गई हो।'[34] 'भूखे भेड़िए' तथा 'शैतान और इन्सान' काव्य रूपको मे उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी फ्रांसीसी और ब्रिटिश सेना के द्वारा रचित विध्वस और नरसंहार के खिलाफ आक्रोश और घृणा तथा स्वतंत्रता व लोकतंत्र की बहाली के लिए मर मिटने वाली वियतनाम और युनान की जनता और देशभक्त छापामारो के पक्ष मे समर्थन व्यक्त किया गया है। कुल मिलाकर 'तुम्हें सौंपता हूँ' संग्रह कवि की कविता के विविध आयामों को दर्शाती है और अनेक मार्मिक अनुभवों, घटनाओं को सामने लाती है।

'अनकहनी भी कुछ कहनी है' त्रिलोचन जी का नौवॉ काव्य संग्रह है, जो सन् 1985 मे राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 96 सॉनेट रचनाएँ संकलित है, जिनका रचनाकाल सन् '50-'51 है। अन्य सग्रहो के समान यहॉ भी 'त्रिलोचन जी मूलत: जीवन के गायक है, और उनका यह जीवन, आत्मसम्मान, संकल्प, विश्वास, सघर्ष, प्रेम, आशा और स्वप्न जैसे अनगिनत मनोवेगो और प्रकृति की रम्य छटाओ से सिंचित है। जीवन की

दुर्दाम नदी से अपना नाता जोड़ती ये कविताएँ हमारे भीतर एक सार्थक उथल-पुथल का कारण बनती है।'[35] संग्रह मे सकलित सॉनेटो की मुख्य प्रेरणा 'अपनेपन' की भावना है, जो व्यक्ति को जन, जनपद, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र से जोड़ती है। इसमे कवि के निजी-जीवन के घटना-प्रसंग, चरित्र, पास-पड़ोस, मित्र, स्वजन, रुझान और मताग्रह आदि के साथ ही जीवन से गहरा लगाव, जन के साथ सहज तादात्म्य, संघर्ष मे तप कर निखरते जीवन के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति 'गहरी जीजिविषा और सार्वजनिकता की लय मे' हुई है। वे तो लोक हृदय की स्वीकृति से काव्य की अमरता मानते है—

. ... .. 'कोई कह ले
कुछ, पर हृदय हृदय मे स्पंदित होने वाला
काव्य अमर है, सुकवि बीज-स्वर बोने वाला,

(पृ० 10)

इसीलिए जब प्रयोगवादी कवि अपने 'स्व' के घेरे मे जीते हुए जाग्रत चेतन समाज को 'भीड़' मानते थे। उस समय त्रिलोचन समाज के बीच गहरे धंसकर, समाज का सहज-अंग बनकर जीने को ही सार्थक जीना बता रहे थे—

. .. 'संकोचो से सागर तरना
शक्य नही है. अगर चाहते हो तुम जीना,
धक्के मारो इसी भीड़ पर, इससे डरना,
जीवन को विनष्ट करना है,

(पृ० 14)

और इसीलिए वे आत्मविश्वास पूर्वक यह कहते है—

'धन की उतनी नही मुझे जन की परवा है
जितनी. जो मुझ से खुल कर मन से मिलता है
मै उस का वशवर्ती हूँ. इस से खिलता है
मेरे प्राणो का शतदल. एक ही दवा है
जीवन के सौ रोगों की,' ....

(पृ० 17)

प्रगति का अर्थ उनके लिए 'जीवन' (जो स्वस्थ और सार्वजनिकता मे लय हो) मे ही निहित है—

'जीवन मे ही प्रगति भरी है, अलग नही है,
जो बाहर है वस्तु तत्व से दूर कही है.'

(पृ० 80)

लेकिन यह जीवन आज अनेक अवरोधों व शोषणो से ग्रस्त है। भारत की अर्द्धसामंती तथा अर्द्ध-औपनिवेशिक मौजूदा समाज व्यवस्था मे शासक-शोषक वर्ग की जन-विरोधी नीतियों के कारण अमानवीय स्थितियो मे छटपटाते रहने के लिए विवश जनता को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देते हुए त्रिलोचन लिखते है—

'सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के लिए
मै ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को,
जिस को नेता लूट रहे है, कह कर, ताको
मत, हम तो है ही. . .

. .

बीज क्रान्ति के बोता हूँ मै, अक्षर दाने
है, घर बाहर जन समाज को नए सिरे से
रच देने की रुचि देता हूँ, घिरे घिरे से
रहना असम्मान है जीवन का अनजाने.'

(पृ० 87)

और अन्त मे, सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था का व्यूह तोड़ने के लिए अवाम का यह आवाहन—

अगर घुटन हो, प्राण छटपटाएँ तो घेरा
तोड़ फोड़ दो, क्योकि हुआ है नया सवेरा

(पृ० 87)

जब कवि तमाम अन्याय, अत्याचार, भूख, गरीबी और शोषण के चक्र मे पिसती जनता

को देखता है, तो उसका काव्य-संयम जवाब देने लगता है और अपनी प्रकृति से अलग हटकर वह स्वतत्र भारत मे लोगो की इस त्रासद स्थिति के लिए जिम्मेदार सत्ताधारी एव विपक्षी नेताओ का नाम ले लेकर उन्हे जलील करता है—

. . 'जिस ने भोगा
है, वह तो गूँगी जनता है, जिसे जवाहर
जयप्रकाश गोलवलकर फुसलाया करते हैं—'

(पृ० 36)

और यह भी कहते है कि 'राज दण्ड काले हाथो मे पहुँच गया है।' राजनेता के अवसरवादी छल छद्म से खिन्न हो, वे उसे पागल के समकक्ष बताकर उस पर और गहरा चोट करते है—

नेता पागल दोनो खाते है धर्मादा,
नेता घाघ है, मगर पागल सीधा सादा,

(पृ० 102)

वे धनियो के टुकड़ो पर पलने वाले कवियो पर भी प्रहार करते है—

'कवि, खा-खा कर तुम धनियो के फेंके टुकड़े
गान वासना के गाते हो,
तुम जीवन का सत्य कहाँ देख सकोगे;'

(पृ० 103)

सग्रह मे प्रकृति के कुछ संश्लिष्ट चित्र है। प्रकृति कवि को जीवन से राग, संघर्ष और उत्साह का पाठ पढ़ाती है। शरद ऋतु के इस संश्लिष्ट चित्र में प्राकृतिक क्रियाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसे कविता मे बुनते है, और नवीनता का स्वागत, परिवर्तन का स्वागत प्राकृतिक व्यापारो के प्रमाण से करते है—

पुनः शरद ऋतु आई है, शोभा छाई है
चारों ओर, रंग कण कण का बदल गया है.

* * *

नई लहर है, नये प्राण हैं, नया नया भव.

त्रिलोचन के अन्य सग्रहो की तरह इस संग्रह की कविताओ मे हिन्दी के ठेठ जातीय रुप की अभिव्यक्ति सहज ढग से, किन्तु दक्षता के साथ हुई है। यहॉ बोली की सहजता और भाषा का सगठन या कसाव संश्लिष्ट रूप मे एक दूसरे मे रचे-बसे है। मुहावरो का सटीक प्रयोग हुआ है और भाषा में माधुर्य गुण का सहज निर्वाह है।

'फूल नाम है एक' त्रिलोचन जी का दसवॉ काव्य-संग्रह है, जो 1985 मे राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमे 1953 से लेकर 1977 तक के बृहद रचना काल मे रचित 91 सॉनेट सकलित है। इस सग्रह मे 'लोक मानस के कितने ही रंग, प्रकृति का लीला-विलास और मनुष्य का सजटिल सघर्ष अपनी तीव्र रागात्मकता के साथ कठोर कलानुशासन मे निबद्ध होकर, ऐसी काव्य-मणि के रूप मे यहॉ उपस्थित है, जिसके आलोक मे मानव-मुक्ति का पवित्र उद्देश्य जगमगा रहा है।'[36]

अपने प्रत्येक सग्रह मे कवि ने चरित्रो का रूपांकन करने वाली कविताऍ लिखी है। जैसा कि डॉ. गोविन्द प्रसाद कहते है—'ये चित्र या चरित्र ऐसे है जैसे सामने बैठाकर चित्रकार ने सधे हाथो से चंद लकीरो के बल पर चरित्र की आत्मा को साक्षात् उपस्थित कर दिया हो—लाइव स्केच। छोटे-छोटे सारगर्भित खण्ड वाले वाक्य चरित्र (रेखांकन) का बाहर-भीतर उकेर जाते है। एक-एक शब्द को इस ढब से जड़ते है जैसे रगो की गहरी सूझ रखने वाला कोई पेंटर, चुनकर किसी खास रंग के इस्तेमाल से पोर्ट्रेट में जीवन्तता ला देता है।'[37] चरित्रों की इस श्रृंखला मे, इस सग्रह मे संकलित, बाबा नागार्जुन पर लिखे गये पॉच सॉनेट बेजोड़ है। उनके स्वभाव, रहन-सहन, सामाजिक चिता पर ये सॉनेट केन्द्रित है। निम्न ढाई पक्तियो मे बाबा नागार्जुन के चित्र को उकेर दिया गया है—

'नागार्जुन—काया दुबली, आकार मझोला,
ऑखे धॅसी हुई घन भौहे, चौड़ा माथा,
तीखी दृष्टि, बड़ा सिर।

(पृ० 66)

इस बहिरंग चित्र के बाद, बाबा नागार्जुन का अंतरंग चित्र द्रष्टव्य है, जिसमे कवि नागार्जुन की 'जन-प्रतिबद्धता एवं भाव-सम्पदा' अपनी चमक के साथ उभर गयी है—

अत्याचार अनय पर नागार्जुन का कोड़ा
चूका कभी नही। कोड़ा है वह कविता का

कही किसी ने जानबूझ कर अनभल ताका
अगर किसी का तो कवि ने कब उस को छोड़ा।'

(पृ० 65)

नागार्जुन के लिए उन्होने आगे लिखा है—

'नागार्जुन का स्वर प्रबुद्ध जनता का स्वर है।
नये पुराने कवियो की प्रतिभा कल्याणी
कवि के मुख से बोली है।, ...

(पृ० 68)

ये शब्द स्वयं त्रिलोचन पर भी लागू होते हैं। शोषण के चक्र मे फॅसी श्रमशील जनता का साक्षात्कार कर वे उनकी आजादी के लिये विकल हो उठते है, और सोचते है—

'हाथो के दिन आएँगे। कब तक आएँगे,
यह तो कोई नही बताता। करने वाले
जहॉ कही भी देखा अब तक डरने वाले
मिलते है। सुख की रोटी वे कब खायेगे,
सुख से कब सोएँगे, उस को कब पाएँगे
जिसको पाने की इच्छा है।...'

(पृ० 98)

उनका यह दृढ़ विश्वास है कि—

'मानवता की जय होगी—धोखे पर धोखा
खा खा कर भी यह विश्वास नही टूटा है
मेरा अब तक, किन्तु धैर्य जब तब टूटा है।'

(पृ० 28)

कवि का प्रेम—जीवन के प्रति, जन के प्रति, गॉव-जवार के लोगों, खेतों, वनस्पतियो के प्रति, घर-परिवार तथा सहधर्मिणी के प्रति अनेकश: अभिव्यक्त हुआ है। सहधर्मिणी के प्रति यह प्रेम द्रष्टव्य है—

'सहधर्मिणी, सहचरी और न जाने क्या क्या
तुम हो। मेरे मन का सारा शून्य भरा है
तुम ने अपनी सुधि से। मेरे दुख की मारी
तुम भी हो, . . '

(पृ० 32)

संग्रह की अनेक कविताओ मे प्रकृति-चित्रण मे कवि की सूक्ष्म-पर्यवेक्षण की प्रकृति दृष्टिगोचर होती है। कवि ने बादलो का चित्रण सर्वाधिक किया है—पूरे रंग, गति-लय की भंगिमाओ के साथ। जैसे इस चित्र मे—

'निझरे झीने झीने बादल सरक रहे है,
जैसे हलका धुऑ हो। जरा इन से ऊपर
काले काले स्थिर बादल है जैसे तट पर
धारा की छोड़ी मिट्टी, .. '

(पृ० 77)

अनेकश. वे प्रकृति का इस्तेमाल मानवीय आशा, उत्साह और जीवन-राग के प्रेरक रूप मे करते है। यथा—

'स्वागत है, स्वागत, बसंत प्रिय, आओ आओ,
शिशिर काल के कुहरे पर जब चित्र सुनहले
रवि अपने कर से लिखता है, तब तुम पहले
विहगों को नूतन स्वर दो, फिर मिल कर गाओ,
हलवाही किसान को खेतो में जब पाओ।,

(पृ० 25)

व्यंग्य के गहरे प्रहार से कवि ने अनेक ढोंगो, बुराइयो और छल प्रपंचो का पर्दाफाश किया है। आज के साहित्यिक माहौल और साहित्यकारों के बारे मे त्रिलोचन ने काफी पहले ही यह सच जान लिया था कि—

'कौर छीनकर औरों का जो खा जाते है,
वे भी कवि साहित्यकार की छाय लगाए
पथ पर घूम रहे हैं। ....'

(पृ० 23)

कुल मिलाकर, इस संग्रह के सॉनेट जीवन के अनेक कड़वे-मीठे प्रसंगो और अनुभवो से हमें साक्षात्कार कराते है और कवि की बहुवस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा के प्रति हमे आश्वस्त कराते है।

'चैती' त्रिलोचन का ग्यारहवॉ कविता-संग्रह है, जो वाणी प्रकाशन से 1987 मे प्रकाशित हुआ। इस संग्रह मे 1954, '56, '62, '63 और '64 मे लिखी गई चौतीस कविताएँ सकलित है। यहॉ कवि 'प्रकृति मे जीवन और जीवन मे प्रकृति की तलाश' करता है और प्रकृति के साथ एकाकार होते हुए दिखाई देता है। यहॉ गेहूँ के कटने और सरसो के फलनें में, जौ और मटर के दानो मे जिन्दगी की चमक दिखाई देती है, तो 'यति मे गति' की और 'अगम तम मे सुगम' की चमक भी दिखाई देती है। त्रिलोचन की यही चेतना जन-जन के हृदय मे नयी आशा जगाती है। 'जीवन से जीवन की बाते कहती' 'चैती' सग्रह की कविताओ मे काव्य का सस्कार जितना गहरा है, उससे कही अधिक इन कविताओ के रचना संसार मे एक अनौपचारिकता मिलेगी। कवि बोलचाल की भाषा मे चुटीला और नाटकीय बनाकर इन कविताओ को नया आयाम देता है। संग्रह मे सकलित 'कवि शमशेर से' शीर्षक कविता जनवरी 1963 में कवि शमशेर के जन्म दिवस पर लिखी गई थी। इस समय भारत पर चीन के विश्वासघात पूर्ण आक्रमण और राष्ट्रीय आपातकाल की विडम्बनाओ से आम जनता मे निराशा और भय का गहरा अधकार छाया हुआ था। उस समय त्रिलोचन कविता की शक्ल मे समाज मे नया विचार बो रहे थे, जो समाज की थकी-हारी जनता में नवजीवन का संचार कर रहा था। वे इस महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने युग के तमाम रचनाकारो को एकजुट होकर सहगामी बनने के लिए ललकार रहे थे—

'काव्यों का अनुगान भावमय हो, पाथेय हो, तेज हो,
सोतो का चुपचाप हाथ पकड़े, लाए उन्हे क्षेत्र मे.
द्रष्टा हो तुम, मौन गान मन के देते रहे हो यहॉ
प्राणाकार अभिन्न भाव भर के फूलो फलो वृक्ष से[38]

('कवि शमशेर से', पृ० 29)

संग्रह की 'सारनाथ' कविता विराग के भीतर राग, पलायन के भीतर स्थापन, अलगाव के भीतर लगाव, विरक्ति के भीतर अनुरक्ति और पतझड़ के भीतर बहार की संभावनाओ की कविता है। कवि इन संभावनाओं की तलाश के लिए सारनाथ के बौद्ध विहार और उसके आसपास की प्रकृति का सहारा लेता है।

त्रिलोचन ने अपनी कविताओं मे ग्रामीण जीवन के साथ वहॉ के मौसम, पेड़-पौधे, पक्षी, फसले, खेत-खलिहानो के बारे मे प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ 'सारनाथ' कविता का यह ग्रामीण चित्र प्रस्तुत है—

'चैती अब पक कर तैयार है. खेतो के रंग बदल गए है.
मटर उखड़ रही है. गेहूँ जौ खड़े है, हवा में झूम रहे
है हवा की लहरो पर धूप का पानी चढ़ जाता
है

फूले है पलाश, वैजयंती, कचनार, आम . चिलबिल अब
खखड़ है, पीपल, शिरीष, नीम का भी यही हाल है.
बॉसो की पंक्तियॉ हरियाली तज रही है• जल्दी
ही उन्हे अलग होना है।,

(पृ० 48)

यहॉ कवि ने चैत के मौसम मे गॉव का प्रामाणिक दृश्य उपस्थित कर दिया है। यह कविता उन्हें खेती-बारी, फसलो और मौसम के बारे मे घाघ और भड्डुरी के समान ठेठ देसी, अनुभवी किसान सिद्ध करती है। मौसम सम्बन्धी अनेक चित्र उनकी कविताओ मे भरे पड़े है। बरसाती मौसम की उनकी 'झापस' कविता द्रष्टव्य है—

'कई कई दिनो से पड़ाव पड़ा हुआ है/बादलों का/
हिलने का नाम भी नही लेते/वर्षा/फुहार, कभी झीसी, कभी
झिर्री, कभी रिमझिम/और कभी झर झर झर झर/
बिजली चमकती है/चिर्री गिरती है/पेड़ पालो सभी कॉपते है

.. ... .

* * *

चिड़ियॉ समेटे पंख जहॉ तहॉ बैठी हैं.'

(पृ० 20-21)

'झीसी', झिर्री, चिर्री—जैसे लोकभाषा के शब्द 'झापस' के इस दृश्य-चित्र को और अधिक जीवन्त, प्रमाणिक और प्रभावकारी बनाते है।

त्रिलोचन प्रेम और सौन्दर्य के अकुठ गायक है। सग्रह मे सकलित 'क्षण की खिड़की' कविता मे रूपाकर्षण की जीवन्त अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण और सौन्दर्य के साक्षात् की निष्कपट, सीधी, बेलौस अभिव्यक्ति हुई है—

> 'मैने अगहन के दिन/देखी है मूरत वह/युवती की/
> जिसमे वह जीवन था/ जो जीवन का जीवन होता है/
> चढ़ती हुई धूप/मेरी नाड़ियों मे फैल गई/ऑखो से हो कर/
> कुछ ऐसा/हृदय मे पहुँचा/जिस से/ कुछ कष्ट हुआ/
> कष्ट वह/कुछ ऐसा था/जिस को जी/फिर चाहे/चाहा करे/
> मेरी अपनी पूरी सत्ता मे/सत्ता इस और की/समा गई/
> जैसे/ताल के निर्मल जल मे/कोई वस्तु पैठती चली जाए'

(पृ० 24-25)

आगे इस कविता मे कवि ने उस रूपसी के रूप सौन्दर्य का अकुण्ठ रूपाकन किया है। रूपाकर्षण की अभिव्यक्ति और रागात्मक अनुभव को प्रगाढ़ता देने के लिए प्रकृति यहॉ अनायास आती है। इस सग्रह की 'कर्म की भाषा', 'कह नही सकता', 'ऐसा ही था', 'मै कृतज्ञ हूँ'—जैसी कविताएँ उल्लेखनीय है। संग्रह मे कुछ छोटा-छोटी, चार-चार पक्तियो की मार्मिक कविताएँ भी सकलित है।

बारहवॉ संग्रह **"सबका अपना आकाश"** त्रिलोचन जी के गीतों का संग्रह है, जो 1987 में राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 52 गीत संग्रहीत है और इनमे से 29 गीत सन् '48 के, 8 गीत '49 के, शेष 15 गीत '50 से '63 के बीच रचे गये है। इस सग्रह मे सॉनेट एक भी नही है। हॉ, शिल्प की विविधता अपने सारे प्रयोगो के बाद भी कविता के गेय तत्त्व को छूटने नही देता। प्रगतिशील काव्यधारा मे त्रिलोचन उस प्रगीतात्मक चेतना के कवि है, जिसके भीतर समकालीन यथार्थ को उसके वस्तुगत परिप्रेक्ष्य मे समझने और व्यक्त करने का विवेक है। 'प्रगीतात्मक शिल्प मे वस्तुजगत, उसका बोध और सघर्ष प्राय: अपनी परिणति, सार या निष्कर्ष के रूप में उद्घाटित होता है। इसमे एक कलात्मक संयम और भाषिक मितव्ययिता भी होती है। यथार्थवादी दृष्टि के अनुशासन के कारण इसमे कमजोर भावुकता, वायवीय कल्पनाशीलता या अस्थिर आवेश नही होता। त्रिलोचन मे प्रगीतात्मक चेतना का यही यथार्थवादी स्वरूप उद्घाटित होता है।'[39]

"सबका अपना आकाश" के गीतो का अनुभव-जगत सहज और व्यक्त है। इसके गीतो मे अनेक रंग है, किन्तु प्रत्येक रग मे त्रिलोचन की रचनात्मक निजता कायम है। गीत विधा की प्रकृति संवेदनात्मक-सघनता और आत्मपरकता है। त्रिलोचन का 'आत्म' यहॉ लोक जीवन के विकास की अनवरत चिन्ता के साथ है। लोक के जीवन का राग, उसका जड़ता-विरोध और उसका सुदृढ़ आशावाद त्रिलोचन पहचानते है। संग्रह के अधिकांश गीतों में प्रकृति की प्रकृत प्रगतिशील छवि का भरपूर उपयोग है। लेकिन वे प्रकृति की पारंपरिक छवियो को लोक-जीवन के सार से मॉजकर नया करते है। जैसे—संग्रह के प्रथम गीत 'बादल घिर आये' मे वे कहते है—

'दादुर, मोर, पपीहे, बोले
धरती ने सोधे स्वर खोले
मौन, समीर तरंगित हो ले
यह दिन फिर आए'[40]

(पृ० 9)

'यह दिन फिर आए' को लोक जीवन के अनुभव से समृद्ध चित्त ही लिख सकता है। मानवीय शुभकाक्षा का यह रूप त्रिलोचन मे ही घटित हुआ है। इस तरह की अनेक पंक्तियॉ इस संग्रह के गीतों मे आती है; जैसे—'जब तक सॉसा तब तक आसा', 'जो गया वह था बुरा आया भला है', 'तुम न हारे, देख तुमको दूसरे जन भी न हारे', 'बातचीत गई, करो जीत नई', 'सोच लो जो बीज बोओगे तुम्हें लुनना पड़ेगा', 'अभी चला क्या, बहुत-बहुत आगे चलना है', 'जहॉ चाह है, सुना है वहॉ राह है' आदि-आदि।

त्रिलोचन अपने जीवन-संघर्षो और निजी दुःख-दर्दो के साथ समाज के दुःख-दर्दो से एकाकार होते गये। तभी तो वे अपने एक गीत मे कहते हैं—

'ऑसू बॉधे मैने गठरिया में
अपने भी हैं और पराये भी हैं ये'

(पृ० 69)

वर्ग विभाजित समाज मे शासक वर्गो का जन-विरोध और जनता का मुक्ति-संघर्ष त्रिलोचन के लिए अमूर्त नही है, किन्तु त्रिलोचन इस यथार्थ को कविता में गहरे अर्थवान संकेतो मे उभारते है। वे लिखते है—

'नव मनुष्यता का लेकर विश्वास
अधिकारी मनुष्य के अत्याचार
के विरुद्ध करते ही चलो प्रहार
अत्याचारी को निस्तेज बनाओ'

(पृ० 10)

पीड़ित मानवता की विजय-यात्रा के प्रति आश्वस्त होने के कारण ही वे उद्बोधन करते है—'पराजयो मे गान विजय के गाओ।' इसी विश्वास से वे कह पाते है—

'कब रुकी है ऑसुओ से राह जीवन की
लोटता है धूल मे मन
यदि कही हारा
तन झुके चाहे न कुछ भी
है यही धारा
दीप सा विश्वास ही है चाह जीवन की'

(पृ० 28)

इस संग्रह मे चीन की लाल-क्रान्ति की सफलता पर भी एक गीत है। इस संकलन मे शुद्ध प्राकृतिक चित्र देखे जा सकते है। जैसे कि वसंत कालीन प्रकृति के मनोरम दृश्यो को वे ज्यो का त्यो रख देते है—

'ताल भरे है, खेत भरे है
नई नई बाले लहराए
झूम रहे है धान हरे है
झरती है झीनी मंजरियॉ
खेल रही है लोल लहरियॉ'

(पृ० 17)

पावस-वर्णन के इस दृश्य मे कवि ने संगीत कला का भी सहारा लिया है—

'बरखा, मेघ-मृदंग थाप पर/लहरो से देती हैं जी भर
रिमझिम रिमझिम नृत्य-ताल पर/पवन अथिर आए

दादुर, मोर, पपीहे, बोले/धरती ने सोंधे स्वर खोले
मौन, समीर तरगति हो ले/यह दिन फिर आए'

(पृ० 9)

पावस के विविधवर्णी, विविध रूपाकृति वाले बादलो ने उनके मन मे धूम मचाई है, तो 'शरद का नीला आकाश' उन्हे इतना प्रिय है कि वे उसे 'सबका अपना आकाश' कहना चाहते है। त्रिलोचन के गीतो मे प्रकृति, जीवन के मूल्यवान अर्थो का सृजन भी करती है। यथा—'हॅसते फूल/युग की जलन भूल।'

इस संग्रह की 'मै तुम्हारा' कविता मे चार से छह वर्णो का प्रयोग कर पंक्ति बनाई गयी है। लेकिन पूरी कविता मे क्रम टूटने या भावधारा मे व्यवधान आने का बोध नही होता और कविता अपनी समग्रता के साथ एक दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ती है। सग्रह के अनेक गीतो मे लोकगीतो की सघनता है, तरलता है और लय, यति और सक्षिप्तता के वे गुण मौजूद है, जो गीत की संरचना के अंग है। 'छायावाद का प्रभाव इन गीतों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रकृति के अनेकानेक चित्र, मनुष्य की स्वाभाविक संघर्षमयता और देशकाल-परिप्रेक्ष्य की विभिन्न अनुगूॅजे इन गीतों मे सुनाई पड़ती है और यही चीजें त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व की बुनियाद हैं।'[41] उनके गीत मनुष्य की कर्मभरी स्वाधीन जीवन-छवि का निर्माण करते है। गति, उल्लास, अंकुरण और विकास को वे प्रतिरोधों से निरन्तर संघर्ष मे लिखते है।

सग्रह के गीतो की भाषा 'सहज जीवन बोध की भाषा' है; यानी अलंकारहीन, भावानुसारी और जहॉ-तहॉ देशज शब्दो के पयोग से युक्त। यथा—अवधि के शब्द सुकना, बिराजे, धुरियाई देह, खेह, कढ़ा दो, दियना आदि। आज की लयहीन, छंदहीन, सपाट कविताओ के दौर मे इस संग्रह के ताजगी, लय, छद, अलंकार, सार्थक बिम्बो और गेयता से युक्त गीतो को बार-बार पढ़ने का मन करता है।

त्रिलोचन जी के तेरहवे काव्य सग्रह—**'अमोला'** का अथ 22 अक्टूबर, 1969 को बनारस मे हुआ। इति भी यही 8 जुलाई, 1970 को हुई। अक्टूबर 10, नवम्बर 30, दिसम्बर 31, जनवरी 31, फरवरी 28, मार्च 31, अप्रैल 30, मई 31, जून 30, और जुलाई के 8 दिन, इस तरह कुल मिलाकर 260 दिनों में सारा काम तमाम हुआ।'[42] पर इसकी रचना और प्रकाशन में 20 वर्षो का अन्तराल रहा है। 2685 बरवै छन्दों की इस कृति का प्रकाशन

काल 1990 है। इससे पहले इसके मात्र इक्यावन चुने हुए छन्द "स्थापना-6—शास्त्री त्रिलोचन द्योतकांक-एक 1970" मे छपे थे।

'अमोला' आम के छोटे पौधे को कहते है, जिसे कवि ने अपने गॉव कटघरा चिरानीपट्टी के अपने कच्चे घर के पिछवाड़े स्थित घूरे से उखाड़कर 'गॅवई गॉव क बोली' 'अवधी' के अपने छन्द 'बरवै' मे रचा-बसाकर कविता की कियारी मे रोप दिया है। इसमे मुक्तको मे कवि की विविध जीवनानुभूतियो के मर्मस्पर्शी शब्दाकन है। 'इसमे युग की पीड़ा, निजी पीड़ा मे निहित होकर आई है। पीड़ा को त्रिलोचन ने बैसवाड़े के किसान की बोली मे हमे सुनाया है—उसे फक्कड़पने मे अंगीकार करके। मानो उपवास, बेकारी, भूख, उपेक्षा, प्रियजन-वियोग और जल, वायु, धरती, आकाश, वनस्पति, प्रिय संयोग आदि जीवन—अमोला की डाले, पत्ते, जड़ें और फुनगियॉ हो।'[43] बानगी के लिये कुछ बरवै उद्धृत है—

'जिअत न बनइ अकेल जे रहा अकेल
जइ दिन रहा जनात रहा अनमेल।'

* * *

'तोहरे बिछुरे जिउ होइ जाइ उदास
आउति आइ मन बिसरइ भूखि पियास।'

* * *

'चारिउ ओर होइ चन्नासा घाम
केउ निकरइ जउ टारा जाई न काम,

* * *

बिना चोट खाए केउ निमहा नाइं
सॉखा सॉखा साखी अपनी दाइ,

* * *

किकुरी मारे जाड़ा थाम्हा जाइ
जउले नस-नस खून चलइ गरमाइ।

* * *

'अमोला' की भाषा अवधी है, जो पूर्वी हिन्दी की एक बोली है। 'अमोला' का छद 'बरवै' 19 मात्राओ का है, 12 और 7 मात्राओ के मध्य यति होती है। इस सग्रह के बरवै छद 'दाउद महमद तुलसी' की परम्परा मे आते है। त्रिलोचन के सगतरास कवि विष्णुचन्द्र शर्मा के अनुसार, 'अमोला' की कविताएँ लोक-कठ के अनुभव का ताल भी है, खजाना भी। कहीं लोकपक्ष के कवि त्रिलोचन ने अपनी निजी अनुभूतियो की खोज की है। कहीं अमोला मे लोक जीवन का व्यापक ससार रचा है।'[44] 'अमोला' की धरती से गहरे जुडाव के कवि रहे, स्वर्गीय मानबहादुर सिह ने लिखा है "जिस लोक जीवन को घाघ और भड्डरी ने आते जाते मौसमो के साथ बॉचा था, उसी लोक जीवन की महागाथा है- 'अमोला'। यह इस जीवन के लिए ऐसा नीतिशास्त्र है, जिसे कवि ने भोगकर अपने अनुभव से रचा है। यह नीतिशास्त्र किसी अलौकिकता को पाने के लिए नहीं है, बल्कि इस जीवन को जीने लायक बनाने के लिए है। जन-जीवन से जुडी सूक्तियो का यह भडार अपने मे ऐसे अनछुए-अनूठे बिबों को भरे है कि चकित रह जाना पडता है।"[45] 'अमोला' की भाषा मे लोक बोली की अभिव्यक्तियो का टटकापन है। यह भी सच है कि इतनी अधिक सख्या मे 'बरवै' किसी आधुनिक कवि के नहीं मिलते।

"मेरा घर" त्रिलोचन का चौदहवॉ काव्य-सग्रह है, जिसका प्रकाशन 2002 ई० मे हुआ। इस सग्रह मे उनकी कुछ आरम्भिक कविताऍ भी है, और कुछ कविताऍ सन् '90 के बाद की है। इसमे गीत या मुक्त गीत, सॉनेट, कुडलिया, मुक्त छद, गद्य कविता, अपेक्षाकृत लम्बी कविता और कुछ अति सक्षिप्त—अनेक रगो की कविताऍ सकलित है। त्रिलोचन की सात 'अवधी कविताऍ' इस सग्रह को 'घर की बोली' देती है, और 'भाखा की महिमा' भी बताती है। इस सग्रह की भाषा सादगी और पुरकारी मे अनूठी है। कविताओ मे न कहीं आवेग है, न स्पष्टीकरण।

'मेरा घर' कविता मे त्रिलोचन पूरे आत्मविश्वास से 'पृथ्वी' को ही मेरा घर कहते है, और अनुभव करते है- 'तारे सब सहचर है मेरे'। त्रिलोचन के लिए 'कविताऍ हाथ है पॉव है' और उन्हे पूरा विश्वास है कि दुनिया मे 'कविताऍ रहेगी तो सपने भी रहेगे'। (मेरा घर, पृ० 15) इस संग्रह मे कुछ कविताऍ सलाप की मुद्रा में हैं, और कुछ कविताएँ आत्मलाप की मुद्रा मे। कवि आत्मलाप की मुद्रा मे खुद से पूछता है · 'मैने करने जैसा/क्या कोई काम किया/शब्द ही तो थे केवल/खेलता रहा जिनसे'। (वही, पृ० 29) उसे यह मानने की बेबाकी भी है कि- 'मुझे अपने मरने का/थोडा भी दुख नहीं/मेरे मर जाने पर/शब्दो से/मेरा सम्बन्ध/छूट जाएगा।' (वही, पृ० 29)

अपनी 'जयमूर्ति की सहजीवन की याद मे' लिखी त्रिलोचन की दो कविताएँ इस सग्रह मे सकलित है। उनमे सहजीवन की स्मृति का घना भाव है। 'ईख पकने पर' तीन कविताएँ लिखकर बता देता है कि वह ठेठ किसान सस्कार का कवि है। वह 'पॉचू' से अपनी ठेठ 'अवधी' बोली मे बतियाता है। 'बाल्यस्मृति' कविता मे वह 'काका' को याद करता है। एक कविता मे वह 'हुब्बी' की त्रासदीय अवस्था का मार्मिक बयान करता है। एक कविता मे त्रिलोचन ने 'महानगर महात्म्य' पर तीखा व्यंग्य किया है तो एक दूसरी कविता मे 'जनसेवक या पुलिस' पर। कुल मिलाकर, इस सग्रह की कविताएँ त्रिलोचन के बहुआयामी और विविधरगी काव्यससार की एक झलक प्रस्तुत करती है।

उपर्युक्त चौदह काव्य-सग्रहो के अलावा त्रिलोचन की लिखी अनेक कहानियॉ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुईं। 1986 ई० मे **"देशकाल"** नाम से बीस कहानियो का सग्रह प्रकाशित हुआ। इस सग्रह की कहानियॉ, आजादी के पूर्व के गॉव की बिडम्बना, बदलते हुए मानवीय नाते-रिश्तो और रोटी-बेटी की कथा का परिवेश सुनाती है। कहानियो मे कवि का 'जनपद' अपनी तमाम खूबियो और खामियो के साथ उपस्थित है। इन कहानियो और उनमे आए पात्रो या चरित्रो को त्रिलोचन ने गढी नहीं है, बल्कि गॉव और बनारस के जीवन-काल मे देखी-सुनी है।

त्रिलोचन जी सहृदय कवि के साथ-साथ विवेकशील पाठक और दायित्व-सजग आलोचक तथा अच्छे काव्यमर्मज्ञ भी रहे है। पुराने दौर के 'हस' से लेकर नये दौर के 'ओर' जैसी पत्रिकाओ मे उन्होने कविता के साथ-साथ आलोचनात्मक गद्य भी लिखा है। छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नयी कविता के दौर के अनेक चर्चित-अचर्चित कवियो के काव्य की भाव और शिल्पगत निगूढतम विशेषताओ को उन्होने अपनी तलस्पर्शी समीक्षा-दृष्टि के साथ उद्घाटित किया है, बिना किसी लाग-लपेट के। निराला की कविताओ के अन्तर्गूढ अर्थों और विशेषताओ को उद्घाटित करने मे उनका लोहा आज के सभी नामी समीक्षक भी मानते है। काव्य-समीक्षाओ के अलावा उन्होने 'काव्य और अर्थबोध', 'रचना-आलोचना', 'रचना, आलोचना और पाठक', 'रचनात्मक और सामाजिक दायित्व', 'जनभाषा और काव्यभाषा', 'रीतिकाल एक क्षयी युग', 'शब्दो की यात्रा रचनाकार की कला का उत्कर्ष' आदि गूढ चिन्तनात्मक विषयो पर भी गूढ चिन्तनात्मक और तलस्पर्शी विवेचनात्मक निबन्ध लिखकर अपने आलोचकीय विवेक का अच्छा परिचय दिया है।

हस, विशाल भारत, आलोचना, कवि, कल्पना, ओर, साक्षात्कार, पूर्वाग्रह, नीलपत्र और आज-जैसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ से त्रिलोचन जी के आलोचनात्मक निवधो को खोज-खोज कर उन्हे सग्रहीत और सपादित करने का श्रेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ० अवधेश प्रधान जी को है। उन्होने त्रिलोचन जी के आलोचनात्मक निबन्धो का सग्रह कर **'काव्य और अर्थबोध'** नाम से प्रकाशित कराया। इसका प्रकाशन 1995 मे साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ। इस सग्रह की लम्बी विवेचनात्मक भूमिका मे डॉ० अवधेश प्रधान जी ने कवि त्रिलोचन के आलोचनात्मक गद्य का शोधात्मक और विवेचनात्मक परिचय दिया है। इसमे उन्होने त्रिलोचन जी के आलोचकीय व्यक्तित्व के बारे मे लिखा है 'उन्होने अपने आलोचनात्मक गद्य मे जगत और जीवन को केन्द्र मे रखकर कविता के स्वरूप का विवेचन किया है, जीवन की गतिशीलता के साथ कविता की गतिशीलता को परखते हुए हिन्दी कविता के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की है। निराला को केन्द्र मे रखकर छायावाद के बाद की नयी कविता का नयापन उद्घटित किया है, आधुनिक हिन्दी कविता मे जनभाषा को काव्यभाषा के रूप मे साधने की समस्या पर विचार किया है और रचना, आलोचना और पाठक के अन्त सबध की व्याख्या की है।'[47]

त्रिलोचन जी ने **'मुक्तिबोध की कविताएँ'** का सम्पादन भी किया, जो साहित्य अकादमी, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस काव्य-सकलन की लम्बी विवेचनात्मक भूमिका मे त्रिलोचन ने मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया, स्थापत्य और जन प्रतिबद्धता का तलस्पर्शी विश्लेषण किया है।

त्रिलोचन जी का 'रोज़नामचा' : 1950 ई०

त्रिलोचन की 1951 और '53 की डायरियो के अश सबसे पहले 1970 मे शिवचन्द शर्मा ने 'स्थापना' के छठे, सातवे और आठवे अकों मे छापे थे। उसके बाद फिर 1992 मे साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद से 1950 की पूरी डायरी **'रोज़नामचा'** नाम से पुस्तकाकार छपी। यह निहायत निजी डायरी है। इसलिए त्रिलोचन के जीवन सघर्ष को समझने के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे रोज़मर्रा की नित्य क्रियाये भी है जिनका प्रतिदिन उल्लेख हुआ है। लेकिन उसके भीतर से त्रिलोचन की अत्यन्त अनुशासित, नियमित जीवनचर्या का चित्र उभरता है।'यहॉ एक ऐसे कवि से मुलाकात होती है जो जीवनयापन के लिए परिश्रम से एक-एक पाई का हिसाब रखता है क्योंकि यह उसके जीवन-मरण का सवाल है। यहॉ वे एक पक्के गृहस्थ हैं। जिम्मेदार पति और पिता है और इन सबके साथ एक कवि हैं, इनसे अलग नही।.. त्रिलोचन ने अपनी आत्मपरक

कविताओ मे जो कुछ लिखा है, उसका सजीव सन्दर्भ इन डायरियो मे मौजूद है।'[48]

सन् 1950 के वर्ष के इस 'रोजनामचा' मे त्रिलोचन का अपने समस्त अभावो, आर्थिक दुरावस्था, पीड़ा और संघर्ष से लड़ते हुए अपने अध्ययन को जारी रखने का दृढ़ सकल्प साफ झलकता है। रोजनामचा के पृष्ठो मे काशी और बाहर के अनेक युवा और युवतर मित्रो, सहयोगियों के नाम आये है; मसलन—नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, अजीत कुमार, शंभुनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह, विजयदेव नारायण साही, बच्चन सिंह, मोती सिंह, वासुदेव सिंह, जगत शखधर, प्रभाकर माचवे, शमशेर बहादुर सिंह, विष्णुचन्द शर्मा — आदि आदि। ये वे युवा और युवतर मित्र, साहित्यानुरागी है, जिनका अभी निर्माण हो रहा है; त्रिलोचन इनके निर्माण मे सहयोग कर रहे है और इनके सहयोग और संकल्प के सहारे अभावो से जुझते हुए अपना निर्माण कर रहे है।

हितैषी जनो की स्नेह-छाया और मित्रों के सहयोग-संबल के बावजूद त्रिलोचन को अपने तई काफी कुछ झेलना पड़ता है। खुद बनाना-खाना, कालेज जाना, ट्युशन करना, समय निकाल कर स्वाध्याय और साहित्य सेवा। कभी रोटी-दाल, कभी रोटी के साथ गुड़ या साग, कभी सूखी रोटियॉ, कभी भूने या कच्चे चने और कभी वह भी नही। 29 जुलाई को उन्होने जगत शखधर से अपने लिए कुर्ता पायजामा और ट्युशन की बात की और केदारनाथ सिह से कहा, 'लाचार होने पर रिक्शा चलाऊँगा।'[49] कुल मिलाकर हम देखते है कि 'रोजनामचा—1950 ई.'—उनके कठोर जीवन संघर्ष और आर्थिक संकट के बावजूद अपने दृढ संकल्प के सहारे अहर्निश स्वाध्याय और साहित्य-सेवा का प्रामाणिक दस्तावेज है।

त्रिलोचन की सृजन-यात्रा के उपर्युक्त पड़ावों से गुजरते हुए हम देखते है कि उन्हे जीवन से असीम प्रेम रहा है। वह 'जीवन' चाहे मानव का हो या प्राकृतिक व्यापारो का। 'जीवन' को अस्वास्थ्यकर बनाने वाली सभी अप्रतिगामी चीजों के खिलाफ वे जेहाद छेड़ना चाहते है। वे 'औसत जिन्दगी' के कवि रहे है लेकिन उनकी कविता क्लासिकीय मर्यादाओ से बुनी है।

सन्दर्भ :

1 त्रिलोचन जी से कवि केदारनाथ सिह द्वारा लिया गया साक्षात्कार, आलोचना-82, 1987

2 केदारनाथ सिह का कथन, 'उस जनपद का कवि' हूँ का आवरण पृष्ठ।

3 'प्रान पियारे की गुन गाथा' नामवर सिह, सापेक्ष-38, 1996, पृष्ठ 737, सपा० महावीर अग्रवाल।

4 त्रिलोचन जी से ऊषा वर्मा की बातचीत पर आधारित, स्रोत: 'त्रिलोचन का कवि कर्म'-उषा वर्मा का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, बी०एच०यू०, पृष्ठ-26।

5 धरती एक समीक्षा- मुक्तिबोध, त्रिलोचन के बारे मे . सपा० गोविन्द प्रसाद, पृष्ठ-30 (प्रथम सस्क० 1994)

6 धरती त्रिलोचन, पृ० 108 (द्वितीय सस्क० 1977)।

7 वही, पृष्ठ-18

8 वही, पृष्ठ-84

9 वही, पृष्ठ-11

10 वही, पृष्ठ-96

11 मजहर इमाम, सापेक्ष अक-38 पृष्ठ 506

12 वही, पृष्ठ-508

13 गुलाब और बुलबुल · त्रिलोचन, पृष्ठ 41 (प्रथम सस्क० 1956)

14 वही, पृष्ठ-41

15 वही, पृष्ठ-11

16 वही, पृष्ठ-22

17. वही, पृष्ठ- 125

18. केदारनाथ सिंह- 'ताप के ताये : त्रिलोचन', संकलित—'त्रिलोचन के बारे मे', पृष्ठ-126।

19 'दिगन्त' त्रिलोचन, पृष्ठ-11 (द्वितीय सस्करण . 1996)।

20. प्रो. चन्द्रबली सिह—'कवि त्रिलोचन शास्त्री', संकलित—'त्रिलोचन के बारे मे', पृष्ठ-74

21 'दिगन्त' त्रिलोचन, पृष्ठ-57, 'चित्र' कविता।

22. वही, 'ध्वनिग्राहक', पृष्ठ-25

23. 'जब देखा तब जीवन देखा'—राजेश जोशी, संकलित—'त्रिलोचन के बारे मे'।

24. 'ताप के ताए हुए दिन' . त्रिलोचन, पृ. 47 (द्वितीय संस्करण—1996)।

25. 'देता हूँ जीवन, जीवन के मधुमय गाने' : नरेन्द्र पुडरिक, संकलित—'सापेक्ष' त्रिलोचन विशेषांक, पृष्ठ—226।

26. 'जब देखा तब जीवन देखा' . राजेश जोशी, संकलित—'त्रिलोचन के बारे मे'।

27 'शब्द जहॉ सक्रिय है'—डॉ० नन्दकिशोर नवल, पृष्ठ- 60।

28 'उस जनपद का कवि हूँ' : त्रिलोचन, पृष्ठ 19, (प्रथम सं० 1981)।

29 'रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि'—डॉ० राम विलास शर्मा, पृष्ठ 282 (प्रथम स० 1990)।

30. 'उस जनपद का कवि हूँ' : त्रिलोचन, पृ. 97 (प्रथम संस्क्ररण 1981)।

31. 'अरघान' : त्रिलोचन, पृ. 29 (द्वितीय संस्करण 1998)।

32. 'तुम्हें सौपता हूँ' : त्रिलोचन, पृ. 107 (प्रथम संस्करण 1985)।

33. 'रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि'—डॉ० राम विलास शर्मा, पृष्ठ 280।

34 वही, पृष्ठ 269

35. 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' : त्रिलोचन, आवरण पृष्ठ (प्रथम सं. 1985)।

36. 'फूल नाम है एक' : त्रिलोचन, आवरण पृष्ठ (प्रथम सं. 1985)।

37 'सरलता का आकाश'—डॉ० गोविन्द प्रसाद, सकलित—'त्रिलोचन के बारे मे', पृष्ठ-24।

38 'चैती' : त्रिलोचन, पृष्ठ 29 (प्रथम सं. 1987)।

39. 'त्रिलोचन के गीत' : चन्द्रकला त्रिपाठी, 'दस्तावेज'-79/अप्रैल-जून-1998, पृष्ठ-44।

40 'सबका अपना आकाश' : त्रिलोचन, पृष्ठ 9 (प्रथम संस्करण 1987)।

41 वही, मुखपृष्ठ पर कथित।

42 'स्थापना-6', 1970-शास्त्री त्रिलोचन द्योतांक—एक, पृष्ठ 18।

43 'अमोला' . त्रिलोचन, आवरण पृष्ठ पर विश्वनाथ त्रिपाठी का वक्तव्य (प्रथम सस्करण 1990)।

44 'त्रिलोचन का लोकपक्ष'—विष्णुचन्द शर्मा, संकलित—'त्रिलोचन के बारे मे', पृष्ठ-109।

45 'अमोला की धरती'—मानबहादुर सिह, संकलित—'त्रिलोचन के बारे मे', पृष्ठ 167।

46 'त्रिलोचन की कहानी का देशकाल'—विष्णुचन्द शर्मा, 'सर्वनाम-47, पृष्ठ 7।

47. 'काव्य और अर्थ-बोध' : त्रिलोचन, 'कवि त्रिलोचन का आलोचनात्मक गद्य'—डॉ० अवधेश प्रधान, पृष्ठ-8 (प्रथम संस्करण 1995)।

48. 'सापेक्ष' त्रिलोचन विशेषांक, 'डायरी और पत्रों में त्रिलोचन'—डॉ० अवधेश प्रधान, पृष्ठ 231।

49. वही, पृष्ठ 233।

त्रिलोचन की काव्य संवेदना के अन्तःस्रोत और उनका काव्य-समय

त्रिलोचन की काव्य संवेदना पर विचार करने से पूर्व 'सवेदना' शब्द के सदर्भ मे कुछ विचार कर लेना अपेक्षित है। 'वेदना' शब्द मे 'सम् (स)' उपसर्ग के योग से बना 'संवेदना' शब्द के विभिन्न अर्थ है- अनुभव, समानुभूति (अपैथी), सहानुभूति (Sympathy) तथा ज्ञान भी। 'मूलत· संवेदना का अर्थ है- ज्ञानेन्द्रियो द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान। किन्तु आजकल सामान्यत· इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ मे होने लगा है। मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग इसके मूल अर्थ मे ही किया जाता है और उस अर्थ मे यह किसी वाह्य उत्तेजना के प्रति शरीर-तंत्र की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया होती है।.. ....साहित्य मे इसका प्रयोग स्नायविक सवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओ के लिए ही अधिक होती है। इस प्रकार साहित्यिक संदर्भ मे संवेदनशीलता मन की प्रतिक्रिया की शक्ति ही है, जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति, दूसरे किसी व्यक्ति के सुख-दु·ख को समझकर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है।'[1] वास्तव में संवेदना एक सक्रिय सहानुभूति है, जो रचनाकार को एक मनुष्य के रूप में दूसरे मनुष्यों से, जीवन-जगत के जड-चेतन वस्तुओ, प्राणियों से जोड़ती है। जैसा कि अज्ञेय जी ने कहा है-'सवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीव-व्यष्टि अपने से इतर सब-कुछ के साथ संबंध जोडती है-वह सबध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी, क्योंकि उसके सहारे जहॉ जीव-व्यष्टि अपने से इतर जगत को पहचानती है, वहॉ उससे अपने को अलग भी करती है।'[2]

वस्तुत· रचना-कर्म मे सवेदना भले ही अन्त·स्रोत हो, परन्तु उसके उद्गम के लिए अनुभव और अनुभूति का होना जरूरी है। अत जो अनुभव व्यक्तित्व मे घुलते हुए अनुभूति के रूप में छनकर आते हैं, वे ही 'संवेदना' की संज्ञा पाते हैं। सृजन-कर्म मे कोरी संवेदना नहीं अपितु अनुभवजनित और विचारपोषित संवेदना ही सक्रिय रूप से भाग लेती है। वस्तुतः कलाकार का अन्तर्मन विचारों को आत्मानुभूत जीवन-संदर्भो से एकाकार करके ग्रहण करता है। जीवनानुभवों, जीवनानुभूतियो और तर्कसंगत निष्कर्षो से निकली समझ (Understanding) या ज्ञान-व्यवस्था निःसन्देह संवेदनात्मक हो जाया करती है। इस प्रकार एक सीमा तक बौद्धिक चेतना भी 'संवेदना' शब्द के अर्थ में समाहित है। सर्जक के अनुभवात्मक ज्ञान या परम्परा से प्राप्त अन्तर्दृष्टि सम्पन्न संवेदनात्मक उद्देश्यो के अनुसार ही 'कला जीवन की पुनर्रचना है।' यहॉ मुक्तिबोध को उद्धृत करते हुए कह सकते है कि-'संवेदनात्मक

अनुभवो में गहन जीवन-आलोचना के जो सूत्र होते है, वे सूत्र ही संवेदनात्मक अनुभवो से उत्पन्न या उनसे संयुक्त अन्तर्दृष्टि है। यह जीवन-आलोचना इतना निजगत, निजबद्ध और सवेदनायित होता है कि उसको सवेदनात्मक अनुभवो से विच्छिन्न करके पृथक् रूप से स्थापित करना कदाचित् सम्भव नहीं है। वे हमारे संवेदनात्मक जीवन ही के इतिहास का एक अंश हैं।'[3]

जहॉ तक कविता का सवाल है, कविता संवेगो की अविकल अनुभूति नहीं, उनकी कलागत सत्य के रूप मे अवतारणा है। समष्टि चेतना मे अन्तर्भुक्त होकर कवि की अनुभूति मे निःसंगता और आत्मपरकता का अद्भुत संश्लेष उत्पन्न हो जाता है। वह केवल कवि की संवेदना को ही नहीं अपितु मानव की जिजीविषा, भावबोध तथा संवेदनात्मक उद्वेलन को रेखांकित करने लगती है। समष्टि चेतना से कवि का भावबोध समृद्ध होता है, जो संवेदनात्मक प्रतिक्रिया को तीव्र एवं अनुभूतियो को सघन व संश्लिष्ट कर देता है। वास्तव मे काव्यानुभूति और जीवनानुभूति एक ही वस्तु हैं। कवि के सामने जीवन का जो यथार्थ प्रस्तुत होता है, उसे वह अपनी अतश्चेतना के भीतर जीवन-दृष्टि, अनुभव, सौंदर्य-बोध एव नैतिक बोध आदि के प्रकाश मे विश्लेषित-विवेचित करता है और फिर उसे एक सश्लिष्ट रूप देता है। संवेदना इस स्तर पर रचना में प्रवृत्त होती है। इसलिए कवि की संवेदना स्वय रचनाधर्मी होती है और प्रेरणा की शक्ति से परिपूरित रहती है। भाषा, शिल्प, लय, छद आदि कमियो को पार करने की शक्ति उसी रचनाधर्मी संवेदना में होती है। आचार्यों ने इस सवेदन-शक्ति के विविध रूपो की पर्याप्त मीमासा की है। अनेक आचार्यों का मानना है कि एक ओर वह प्रत्यक्ष यथार्थ को, इन्द्रियगोचर यथार्थ को रत्त्ना के स्तर तक अंतर्जगत मे रूपायित करती है। और दूसरी ओर अभिव्यजना के स्तर पर भाषा, लय, छंद आदि का उपयुक्त विधान करती है, जिससे मूल अनुभूति संप्रेषणीय बनती है। 'काव्य-संवेदना' के इस विवेचन के पश्चात् अब त्रिलोचन की काव्य-संवेदना के मूल बिन्दुओं पर विचार करते है।

सच कहा जाय तो त्रिलोचन 'जीवन' के, 'जन' के और 'जनपद' के प्रति दृढ़ आस्थावान कवि हैं। सैद्धान्तिकता से दूर उनके काव्य में जीवन के वे अनुभव ही बोलते है, जिन्हे उन्होंने जीवन-संघर्षों में तप-गल कर प्राप्त किया है। वे हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में 'जीवन' के सबसे अधिक नज़दीक होने से ही, सबसे अधिक सहज हैं। जीवन

की सामान्यता को जीवन-सघर्षो के बीच से हासिल करने के कारण, निचोड के रूप मे कविता उन्हें प्राप्त हुई। इसीलिए वे बार-बार कहते हैं- 'काव्य जीवन की प्राणमयी भाषा है।' (काव्य और अर्थबोध, पृ०151) 'काव्य तो जीवन ही है।' (रोजनामचा- 1950 ई०, पृ० 46), 'जिसको लोग सचमुच कविता मानते है वह जीवनानुभव ही तो है। कविता जो है, जीवन की अभिव्यक्ति से अलग नहीं मिलती।'[4]

वास्तव मे "एक शब्द त्रिलोचन की कविता मे सुहाग के टीके-सा जगह-जगह पर दिखाई देता है, वह है 'जीवन'। और एक अर्थ जो निहाई पर रखे लाल लोहे-सा, वन के सघन सुनसान को चीरते चलते आदम नाद-निनाद सा, अधकार चमकाता चलता 'अप्पोदीप आप भव'–सा, पथराई ऑखो के लिए रूप-राग-रस-गध के झर-झर-झर-झर झरते झरने-सा लगता है- वो है 'जीवन'।"[5] अगर ध्यान से देखा जाय तो त्रिलोचन के समग्र कविता का कहे कि सर्वस्व ही 'जीवन' है। गिनकर देखा जाय तो 'जीवन' शब्द उनकी कविता-भाषा में प्रयकुत हुए किसी भी शब्द की अपेक्षा कहीं अधिक बार इस्तेमाल हुआ है, और वो भी, अपेक्षाकृत सर्वाधिक सम्यक, सार्थक. सवेदनपरक रूप-अर्थ मे। कवि ने अपने प्रथम काव्य-संग्रह 'धरती' ('45) की पहली कविता मे ही कहा है–

मुझमें जीवन की लय जागी
मैं धरती का हूॅ अनुरागी
× × ×
सुनता हूॅ मैं जीवन का स्वर
गाता हूॅ मैं जीवन का स्वर[6]

तब से कवि का जीवन के प्रति अनुराग कम नहीं हुआ है, वरन् बढ़ता ही गया है। 'धरती' संग्रह की ही एक कविता मे 'जीवन मिला है यह/ रतन मिला है यह' कहने वाले कवि की दृष्टि मे जीवन का मूल्य बढ़ता ही गया है। इस क्रम मे त्रिलोचन की कविता जीवन से फूटकर निर्बाध बहती धारा के समान दिखती है। मॉ के दूध की तरह जीवन की छाती से कविता उत्सरित होती है। जीवन के तमाम क्रिया व्यापारों से गहरा सरोकार रखने वाली कविताओं में उनकी अपनी अनुभूतियॉ बहुत संयम और सहजता के साथ प्रकट होती है; बिना किसी उत्तेजना या चीख-पुकार के। अवध के एक पिछड़े गॉव मे, एक निम्न-मध्यवर्गीय कृषक परिवार में पैदा होकर इस कवि ने बचपन से ही जीवन

की विषमताओ को नजदीक से जाना है। काम लायक पढाई-लिखाई कर लेने के बाद भी वे जीविकोपार्जन के लिए निरन्तर सघर्षरत रहे। अतः जीवन के प्रति उनका गहरा लगाव उसके प्रति मोहवश नहीं, वरन् संघर्ष मे तपकर निखरते जीवन के प्रति निष्ठा के कारण उत्पन्न हुई है, और जीवन को व्यापक प्रसार मे देखने के कारण।

'जीवन के गहरे वैषम्यो का कवि त्रिलोचन है।' 'धरती' सग्रह की समीक्षा लिखते समय मुक्तिबोध ने यह स्वीकार किया और इस तथ्य को भी लक्षित करने से नहीं चूके कि-"कवि की प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण आन्तरिक क्षति-पूर्ति के रूप मे नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन-सघर्ष से मॅज घिसकर तैयार हुई है।"[7] व्यापक स्तर पर फैले अभाव, दैन्य और उत्पीड़न को देखकर त्रिलोचन जीवन से विमुख होकर रहस्योन्मुख नहीं हो जाते, या फिर दुःख का एक दर्शन रचकर उससे व्यक्तित्व को चमकाने का उपदेश नहीं देने लगते। बल्कि वे जीवन मे अपनी आस्था दृढ़तापूर्वक आरोपित करते हैं। कारण यह है कि वे यह देख रहे हैं कि मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे लगातार प्रगति करता जा रहा है, इस ससार से शोषण को समाप्त करता जा रहा है और इसे सुन्दर बनाता जा रहा है। इस पर्यवेक्षण ने उन्हे मनुष्य के प्रति अभेद्य निष्ठा और विश्वास दिया है।[8] वास्तव मे त्रिलोचन की कविता 'गतिमय जीवन का आख्यान' है-

'गतिमय जग, गतिमय जग-जीवन
गतिमय है जीवन का छन छन
गतिमय बादल, बिजली, गर्जन
अविरल धारा
अविरल धारा
धरती के
धन
ये'

(धरती, पृ० 33)

इसीलिए त्रिलोचन जीवन की स्वाभाविक गतिमयता में बाधक तत्वों को पहचानने में चूक नहीं करते। उन्होंने 'तुम बढ़ो विजय के पथ पर' कविता में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद-दोनों को एक साथ नष्ट करने का आह्वान करते हुए लिखा है-

'जो बॉध रहे गति जीवन की कर उन्हे नष्ट
तुम सामाजिक स्वातन्त्र्य-साम्य को करो स्पष्ट'

(धरती, पृ० 16)

'दिगत' ('57) मे भी जीवन-सौन्दर्य और सघर्ष के विविध पक्षो को लेकर लिखी गई कविताएँ है। एक कविता मे कवि कहता है-

मैं जीवन का चित्रकार हूँ चित्र बनाता
घूम रहा हूँ, मन ही मन कल्याण मनाता। [9]

अपनी कविताओ मे त्रिलोचन 'चित्र' कैसा देते है, इस सबंध मे स्वय उन्हीं के शब्दो मे-

लडता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा,
नये चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।

(दिगत, पृ० 25)

नयी आशा-आकांक्षा लेकर शोषण के खिलाफ लडता हुआ समाज और जीवन के नवीन बनने वाले रूपों तथा अभाव, शोषण आदि के चित्रों को कवि अपनी नयेपन से युक्त, जीवन से जुड़ी भाषा के माध्यम से देने में विश्वास करता है। 'भाषाओं के अगम समुद्रों का अवगाहन' करते हुए वह जीवन में ही गहरे पैठता है। क्योंकि जीवन से अलग न भाषा है, न शब्द। 'त्रिलोचन शब्द नहीं उठाते, पूरी भाषा उठाते हैं, पूरा परिवेश उठाते हैं, परिवेश के सुख-दु.ख, जीवन-संघर्ष और जीवनोल्लास उठाते हैं। तभी तो वे लिखते हैं-

भाषा की लहरों मे जीवन की हलचल है,
गति मे क्रिया भरी है और क्रिया में बल है।

(दिगंत, पृ० 67)

अर्थात् जीवन जो सक्रिय और भाषा जो क्रियाशील हो; जैसा कि कबीर ने कहा-'भाषा बहता नीर'। 'सब कुछ पाया शब्दों में, देखा सब कुछ ध्वनि रूप हो गया,' (दिगंत, पृ० 67)- कहने वाले त्रिलोचन अपने आसपास के जीवन को, जनता के सुख-दुःख और उल्लास को ध्वनियों (शब्दो या जनता की भाषा) से पकड़ते हैं- 'ध्वनिग्राहक हूँ मैं। समाज में

उठने वाली ध्वनियॉ पकड लिया करता हूॅ।' (दिगंत, पृ० 25), जीवन की ही खोज में त्रिलोचन की कविता मुसहर के यहॉ जाती है। इससे बडे लोग नाराज हो जाते है। लेकिन इस सम्बन्ध मे त्रिलोचन को कोई सशय नहीं है कि 'जीवन पहचानने वाला ही जीवन की पहचान देगा। वह जीवन सफल, असफल कुछ भी हो सकता है। जीवन अपने पूरे परिवेशो के साथ कविता बनकर कविता को जीवन से अभिन्न कर देता है।'[10] वे स्वय अपने रचना-कर्म के बारे मे स्वीकारते है कि, 'मै जो भी जीवन पकडता हूॅ-चाहे वह गॉव का हो, चाहे शहर का–उसमें अपने को रखकर देखता हूॅ।'[11] अपनी ऊब और एकाकीपन से उबरने का उनका तरीका भी दूसरो से बहुत कुछ अलग पडता है–

मै अपने एकाकीपन से ऊब गया था,
ऊब गया था, ऊब गया था। आख़िर भागा,
अगले क्षण जीवन सागर मे डूब गया था,

(दिगत, पृ० 63)

जबकि प्रयोगवादी और नयी कविता के अधिकाश कवि, शहरी मध्यवर्ग के व्यक्ति की अस्मिता की तलाश और वैयक्तिक कुंठा, हताशा आदि के भावो की अभिव्यक्ति कृत्रिम और चमत्कारी भाषा मे कर रहे थे। तब त्रिलोचन जीवन सागर में गहरे डूबकर अपनी कविता मे गॉव की जिन्दगी की वास्तविकताओ, आकाक्षाओ और किसान-जीवन के सघर्ष-पक्ष, सौन्दर्य-पक्ष और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति गॅवई बोली-बानी, लहजे, मुहावरे युक्त भाषा मे कर रहे थे। अत. उनका काव्य नयी कविता के आधुनिकतावादी मुहावरे का प्रतिपक्षी और प्रतिरोधी है।

'दिगंत' के बाद के कविता-संग्रहों में भी हम पाते है कि कवि ने जीवन की असलियत को अधिक निकट से देखा है। यह निकट से देखी हुई घर और बाहर की सच्चाई जीवन में पाठक का विश्वास बढ़ाती है। मानव, पशु-पक्षी, प्रकृति–सभी के कार्य व्यापार में कवि जीवन का ही संधान करता है। पीड़ा, दैन्य, अभाव से संघर्षरत जीवन के वैषम्यों की गहरी चेतना होने के कारण ही त्रिलोचन का दृष्टिकोण आशावादी है। यथार्थ जीवन से गहरा लगाव और जीवन की सहज गतिमयता में विश्वास, त्रिलोचन की कविता मे बार-बार व्यक्त हुआ है। यथा–'ताप के ताए हुए दिन' में–

जब तक यह पृथ्वी रसवती है/और
जब तक सूर्य की प्रदक्षिणा मे लग्न है,
तब तक आकाश मे/उडते रहेगे बादल
मंडल बॉध कर,/जीवन ही जीवन
बरसा करेगा देशो मे, दिशाओ मे,
दौडेगा प्रवाह/इस ओर, उस ओर, चारो ओर;
नयन देखोगे/जीवन के अंकुरों को/
उठकर अभिवादन करते प्रभात काल का [12]

'शब्द' मे-

जहॉ जहॉ संधान किया जीवन के पथ का
वहॉ वहॉ देखा, अब पथ ही पडा हुआ है
जीवन आगे चला गया है,[13]

'उस जनपद का कवि हूँ' मे-

... ... .मै विलास का
प्रेमी कभी नहीं था, जब देखा तब केवल
जीवन देखा, धूल और मिट्टी से आया
था, रक्त के कणों मे यह संबध समाया [14]
× × ×
रस जीवन का जीवन से खीचा,
दिए हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा
उस को आदर दिया. ....

(पृ० 116)

'अरघान' मे-

जहॉ जहॉ जीवन को देखा वहॉ जा लिया,
मेरे स्वर जीवन की परिक्रमा करते हैं। [15]

'अनकहनी भी कुछ कहनी है'-

'जीवन से मैंने सीखा है और दिशा भी
पाई है तो एक इसी से, ऐसा कहना
सहज सत्य है, ...
मै अपने युग का, समाज का, जन जीवन का
अभिव्यक्तिमय एक व्यक्ति हूँ, जाग्रत मन का।' [16]

इस प्रकार हम देखते है कि त्रिलोचन गहरी जीवन-आस्था के कवि है। उनका जीवन-बोध ठोस भौतिकवादी, यथार्थवादी ज़मीन पर टिका हुआ है- 'सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, हॅसी-ऑसू की भाषा/जीवन क्या है, द्वन्द्वो की स्थायी परिभाषा।' [17] इसी स्पष्ट जीवन-दृष्टि के कारण वह मरण के सन्नाटे पर भी जीवन का गीत गाता है-

गाओ, उर के तारो पर, जी भर कर गाओ
जहॉ मरण का सन्नाटा है जीवन लाओ

(दिगत, पृ० 17)

कुछ ऐसा ही जीवन-स्वर निराला के यहॉ भी मौजूद है

'जीवन का यह है जब प्रथम चरण
इसमें कहॉ मृत्यु
है जीवन ही जीवन।' [18]

अदम्य जिजीविषा निराला और त्रिलोचन मे एक जैसी देखने को मिलती है। फलत· संघर्ष की शक्ति भी। त्रिलोचन के कड़ियल व्यक्तित्व में अटूट संघर्षशीलता विद्यमान है। तभी तो वे कह पाते हैं- 'हार नहीं मै जीते जी मानूँगा। और लडूँगा उत्पातों में।' (दिगंत, पृ० 33), यहॉ हम मुक्तिबोध के कथन को उद्धृत करते हुए कह सकते है कि, 'इसी संघर्ष ने उसकी चेतना को मात्र विकसित ही नहीं किया है, उसे प्रसरणशील भी बनाया और जीवन के विविध अंगो को समझने की शक्ति भी दी है। इस वैविध्य के प्रति संघर्षात्मक प्रसरणशील अनुरक्ति ने उसके मन को वस्तून्मुख और बुद्धि-प्रधान भी कर दिया है। इसके कारण ही उसके काव्य मे बेचैनी और विह्वलता नहीं है, बल्कि एक विशेष प्रकार की तटस्थता है। हिन्दी की उत्तेजना-प्रिय रूचि को कदाचित् यह अच्छा न लगे, परन्तु ज़रा

ध्यान से पढने पर अभिव्यक्ति के पीछे किसी गहराई का अन्दाजा हो जाता है।' [19] यह सही है कि उत्तेजना-प्रिय रूचि और अभिव्यक्ति के पीछे की गहराई का अन्दाज़ा न लगा पाने के कारण वे काफी दिनो तक आलोचको के लिए अग्राह्य बने रहे और प्रगतिशील कवियों की लिस्ट मे भी उनका नाम काफी समय बाद आ पाया।

प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता के कुठा, हताशा, मरण के भावनाओं के अधिक्य भरे दौर मे भी त्रिलोचन अपनी प्रबल जीवन-आस्था और आशावादी दृष्टिकोण से तनिक भी विचलित नहीं हुए। क्योकि उनकी सोच और दृष्टि व्यक्तिवाद के घेरे मे सकुचित नहीं। उनका हृदय तो जनता के हृदय के साथ ही धडकता है। जनता की अटूट संघर्षशीलता में विश्वास होने के कारण ही कवि आश्वस्त है कि 'जीवन के जयगान पराजय में भी दूने होगे।' जीवन से गहरा लगाव, जन के साथ सहज तादात्म्य, सघर्ष मे तपकर निखरते जीवन के प्रति निष्ठा रखने वाले त्रिलोचन के यहॉ कविता इसी जीवन-प्रक्रिया मे रूप ग्रहण करती है, विकास करती और स्वीकृति पाती है।

जीवन के विभिन्न रूपो और दृश्यो मे से त्रिलोचन की कविता जितना कुछ चुनती और पेश करती है, उसका बहुलाश भारतीय निम्नवर्ग, गरीब और विपन्न अचलो से चलकर आता है। कविता का सस्कार भी उन्हे गॉव से मिला, जैसा कि वे स्वीकार करते है– ''मेरे गॉव में बसंत पंचमी से होली तक चौताल गाये जाते थे। हर चौताल के बाद 'उलारा' गाया जाता था। मेरे मन मे कविता का सस्कार उसी को सुनते हुए पडा। यानी कविता मैंने लोक से सीखी, पुस्तक से नहीं।'' [20] वास्तव में त्रिलोचन 'अवध' जनपद के 'जनकवि' हैं और उनके जनपद मे 'जन' का वर्चस्व है, 'पद' का नहीं। सामान्य-जन के प्रति त्रिलोचन की पक्षधरता स्वघोषित है-

> मै ने उन के लिए लिखा है जिन्हें जानता
> हूँ जीवन के लिए लगाकर अपनी बाज़ी
> जूझ रहे हैं, जो फेके टुकड़ो पर राज़ी
> कभी नहीं हो सकते हैं मै उन्हें मानता
> हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता।

(दिगंत, पृ० 26)

> 'अपनी मुक्ति कामना ले कर लडने वाली

जनता के पैरो की आवाजो में मेरा
हृदय धड़कता है,..... .....

(उप०, पृ० 65)

सामान्य जीवन की कठोर परिस्थितियो से जूझने वाले लोगो के लिए उनके हृदय मे असीम सहानुभूति है- 'जो थके हैं, गिरे है, हारे है/उनका आत्मीय हूॅ, सखा हूॅ मै।' (गुलाब और बुलबुल, पृ० 6), वास्तव मे त्रिलोचन की कविता हिन्दी की उस जातीय परपरा (कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, निराला, प्रेमचन्द आदि) का सहज विकास है, 'जिन की सॉसो को आराम नहीं था, और जिन्होने सारा जीवन समाज की कल्मष धोने में लगा दिया।' वस्तुत. उनकी कविता मे–

भाव उन्हीं का सब का है जो थे अभावमय,
पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय।

(दिगंत, पृ० 68)

मेरी दृष्टि मे त्रिलोचन की कविता की केन्द्रीय भावभूमि यही है। उनके प्राण समाज के इन्हीं लोगो मे बसते है। आखिर खुद त्रिलोचन भी तो जीवन की दीर्घावधि मे अभावमय ही रहे हैं। 'उस जनपद का कवि हूॅ' (1981) सग्रह की 'मैं' पर लिखी कविताऍ इसका साक्ष्य हैं। इन कविताओ का 'मैं' चीर भरा पाजामा पहने, अनाहार, अपना स्वाभिमान अक्षत रखे हुए है और उसका मन अदीन है। यह औसत भारतीय जन का 'मै' है- एक साथ वैयक्तिक और सामूहिक।

भारतीय जन के चरित्र का एक पक्ष– स्वाभिमान और अक्खड़ता– को त्रिलोचन ने बहुत सादगी से इन कविताओं में चित्रित किया है। 'महाकुंभ' (इला० 1953) पर लिखे गये 25 सानेट ('सर्वनाम' के मई, 1973-अंक में प्रकाशित और बाद में 'अरघान' सग्रह में संकलित) भारतीय जन के चरित्र का दूसरा पक्ष प्रस्तुत करते हैं– अंधविश्वासी और रूढ़िवादी। 'लेकिन यह रूप भी कम दिलचस्प नहीं है। पहली बार संभवतः हिन्दी कविता में यह रूप इतनी विविधता से चित्रित हुआ है। त्रिलोचन ने पूरे सम्मान के साथ भारतीय जन के चरित्र के इस शव को कंधा दिया है। कहीं भी ज़रा भी रोष नहीं, केवल दुख है।' [21]

इलाहाबाद मे रहते हुए त्रिलोचन ने 'महाकुभ · 1953' की विडम्बना को परखा और रचा था। तुलसीदास के बाद त्रिलोचन के इस खण्डकाव्य में पूरे युग की झलक भारत को मिलती है। मरणशील परपरा बदलते हुए भारत से टकराती है यहॉ। यह ईमानदार कवि की एक कसौटी है। वह जीवन की आईरनी (विडम्बना) पर भीतरी व्यंग्य करता है। त्रिलोचन अपनी जमीन पर यहॉ खडे है कबीर से और उधेडते चलते है आधुनिकतावादी मध्यस्थो की सत्ता को।[22] कवि ने यहॉ श्रमशील, धार्मिक जनता का पूरा सास्कृतिक परिवेश दिखाया है-

सतुआ और पिसान बॉधकर कुभ नहाने
नर नारी घर पुर तज कर प्रयाग आए थे,
संगम की धारा में अपने पाप बहाने

(अरघान, पृ० 52)

महाकुंभ के धार्मिक 'जन-महोत्सव' मे आने वाले जनसमूह को 'सहस्रशीर्ष पुरूष' मानकर वे नमन करते है और कहते हैं- 'महाकुभ मे देखा मैने मानव-कानन,/मानचित्र था भारत का रेखाकित आनन'। (अरघान, पृ० 54) कवि जनता को पर्वत की दुहिता के रूप में देखता है जो बल प्रयोग से नहीं झुकती। लेकिन यह जन-महोत्सव तब लोमहर्षक त्रासदी में बदल जाता है जब हिम्र हो उठे नागाओ का नंगा-नाच होता है और भीड में भगदड़ मच जाती है। तब वह दृश्य उपस्थित हुआ जिसे कवि की 'ऑखे देख नहीं पाती थीं'–

दब पिच कर कितने ही जन दम तोड रहे थे,
माया, ममता माल मता सब छोड़ रहे थे

(अरघान, पृ० 68)

इस भयावह मरण-दृश्य से वे अत्यन्त मर्माहत हो उठते हैं और सोंचते है- 'महाकुभ में हत निरीह प्राणों की पीड़ा/कौन समझ कर बढ़ता है लेने को बीड़ा'। (अरघान, पृ० 69) 'त्रासदी का चित्रण बीस सॉनेटों में हुआ है। संकेत स्पष्ट है कि यह त्रासदी मानवकृत है, कोई दैवी अभिशाप नहीं। न कहीं ऑसू, न करूणा का प्रदर्शन, और न आक्रोश। नागा साधुओं के नंगे नाच पर टिप्पड़ी अवश्य है, और सुलफे का दम लगाने वाले

साधुओं पर भी। लाशो की प्रदर्शनी लगाने वाली पुलिस पर और सहानुभूति प्रकट करने के लिए दौरे पर आये राजनीतिक नेताओं पर भी। इस प्रकार 'महाकुभ' कविता-क्रम अन्तत एक अन्धविश्वास का महिमामडन नहीं, बल्कि परम्परा और आधुनिक व्यवस्था के वर्तमान सबध पर मार्मिक टिप्पणी है। 'महाकुभ' मे एक जीती-जागती सस्कृति भी है, उसकी विभत्स विकृति भी और अन्त मे सामूहिक संहार भी। यह महाकाव्यात्मक गरिमा की ऐसी त्रासदी है जिसमे कवि ने करूणा और भय का अप्रतिम सयोग घटित किया है।'[23] सभी महाकुभ सॉनेटों की मुख्य चिन्ता है–'कब स्वतंत्र होगी यह जनता टूटी हारी'।

वस्तुत· त्रिलोचन की कविता मे जन से लगाव, आत्मीयता का भाव विशेष रूप से रेखाकित करने योग्य तथ्य है और इसी कारण उनकी कविता का चरित्र पूरी तरह से जनवादी हो गया है। सदियो से दलित-पीडित एवं व्यवस्था का नरक भोगने को अभिशप्त जनता के प्रति कवि को विशेष सहानुभूति है और उनके प्रति करूणा त्रिलोचन की कविता का मूल राग बन गया है। त्रिलोचन की कविता के अधिकांश चरित्र गॉव के है और उन चरित्रो के साथ आया है- ग्रामीण नेह-छोह, उमग-जीवनोल्लास, दु:ख-दर्द, अभाव-मजबूरी, अज्ञान-अशिक्षा, वर्णगत कट्टरता और ऊॅच-नीच के भावों के साथ-साथ लोक-प्रकृति, रीति-रिवाज और तीज-त्यौहार। उन्होंने अपनी कविता मे मानव-उद्यमशीलता, संघर्ष-चेतना, जिजीविषा और अपराजेयता के भाव को विशेष तौर पर उद्घाटित किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान महॅगाई की मार झेलता हियाई का बाशिदा 'भोरई केवट' हो, चाहे 'जीवन का एक लघु प्रसंग' में मॉ के अंधविश्वास और अभाव के विरूद्ध ज्ञानप्राप्ति हेतु लडता छोटा बालक (वासुदेव या त्रिलोचन) व बूआ हों, चाहे 'काले काले अच्छर न चीन्हने वाली चम्पा' हो– ये सभी चरित्र गॉव के है, और अपनी विपन्नता, कर्मठता, अपराजेयता और आशावादिता के साथ 'धरती' संग्रह की कविताओ मे आते हैं।

'जीवन का एक लघु प्रसंग' त्रिलोचन के बनने की लड़ाई का एक लघु प्रसंग है। छोटे-से बालक की पढ़ाई के रास्ते मे घर के रूढ़ संस्कार, अंधविश्वास और गरीबी बाध--क बनते हैं। यहॉ मॉ और बूआ (दादी) के संस्कारों के बीच द्वन्द्व दिखाई देता है। माँ अंधविश्वासी, पुराने विचारों की रूढ़िग्रस्त महिला है, जिसका कहना है–

> 'पढ़-लिख कर क्या होगा, पढना अब बन्द करो इसका, घर काम करे,
> पढना हमारे नहीं सहता पर बात मेरी कौन यहॉ सुनता है।

रान-परोसी कहते है, लडका इन्हे भारी है, इसी राह खो रहे है।'

(धरती, पृ० 82)

किन्तु बूआ ज्ञान के प्रति आस्थाशील है और नये ज्ञान की आशा बनकर सामने आती है, और उसका कहना है

'दुलहिन (मॉ को वे यही कहा करती थीं) इस बच्चे को
मैने श्रद्धा से, प्रेम से, निष्ठा से,
विद्या को दान कर दिया है,
जानबूझ कर दान कैसे फेर लूॅ,
ऐसा कभी नहीं हुआ–
विद्या माता ही अब इसको निरखे-परखे।
रक्षा और पालन-पोषण करे!'

(धरती, पृ० 82)

इस पूरी कविता मे नाटकीय सवाद की शैली, बोलचाल की शैली मौजूद है। कुछ इसी तरह की सवाद-शैली निराला ने भी 'नये पत्ते' और 'अणिमा' मे दी थी।

कवि के 'भूखा, दूखा, नगा, अनजान' जनपद मे सुन्दर ग्वाला की चचल, नटखट लड़की चम्पा भी रहती है जो 'काले काले अच्छर नहीं चीन्हती'। चम्पा के साथ ही यह उसके समाज की भी त्रासदीय विडम्बना है। इस कविता मे चम्पा अपने बच्चे-सी भोलेपन के साथ मौजूद है और स्वय बोलती है- अपने गॅवई बोली-बानी, लहजे मे। 'उसे बडा अचरज होता है : इन काले चीन्हो से कैसे ये सब स्वर निकला करते हैं'। यह उसका बाल-सुलभ औत्सुक्य व भोलापन है। इसी बाल-सुलभ भोलेपन से वह कवि से कहती है· 'तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर/क्या यह काम बहुत अच्छा है'।

नामवर सिंह के अनुसार यह कविता सन् 1940-41 के आसपास की है ('धरती' संग्रह की कविताओं का रचना-काल नहीं दिया गया है)। उस समय गॉधी जी का प्रभाव यहॉ की हवा में घुला हुआ था और सब शिक्षित-अशिक्षित जनों पर उनका प्रभाव था। अतः चम्पा को पढ़ने के पक्ष मे तर्क देता हुआ कवि कहता है . 'गॉधी बाबा की इच्छा है/सब जन पढ़ना-लिखना सीखें/चम्पा ने यह कहा कि/मैं तो नहीं पढूॅगी/तुम कहते थे

गॉधी बाबा अच्छे हैं/वे पढने लिखने की कैसे बात कहेगे/मै तो नहीं पढ़ूँगी'। (धरती, पृ० 89) यहॉ चम्पा के मन में पढने के प्रति छोटे बच्चो की सी कसमसाहट है, कतराने का भाव है। साथ ही चम्पा के इस कथन मे उस समय गॉवो मे प्रचलित यह रूढि भी मौजूद है कि पढना-लिखना (खासकर लडकियो के लिए) बुरी बात है। फिर कवि चम्पा को पढने के पक्ष मे एक ठेठ देशज तर्क देता है 'ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,/कुछ दिन बालम सग साथ रह चला जायगा जब कलकत्ता/बड़ी दूर है वह कलकत्ता/कैसे उसे सँदेसा दोगी/कैसे उसके पत्र पढोगी/चम्पा पढ लेना अच्छा है!' यह तर्क बालिका की आन्तरिकता को छू लेता है-उसे दहला देने की हद तक। और उसके भोले मन को चोट पहुॅचती है, तब कवि को झूठा ठहरा देती है

'चम्पा बोली : तुम कितने झूठे हो, देखा,
हाय राम, तुम पढ-लिखाकर इतने झूठे हो
मै तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मै अपने बालम को सँग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे।'

(धरती, पृ० 89)

'कलकत्ते पर बजर गिरे' का बद्दुआ उस कलकत्ता शहर पर है, जो बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रमीणों को बेघर बनाकर हजम किए जा रहा था (कमोबेश आज भी ऐसा ही है)। रोजी-रोटी के लिए गॉवो से विस्थापित गरीब, मजदूर बनकर चटकल मिलो में जॉगर खटते, हाथ-रिक्शा खींचते और रोटी-प्याज-सत्तू खाते हुए रोग-जर्जर, ककालवत शरीर लिए वर्षों बाद घर आते या बीमारी या अकाल का ग्रास बन जाते। बालम का गॉव से विस्थापित होकर वर्षों तक सुधि न लेने अथवा अकाल में मर-खप जाने [24] से उपजी हृदय-द्रावक विडम्बना ने बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के छोटे किसानों और मजदूरों की विवाहिताओं के लिए कलकत्ता और पूरब दारूण मिथक बन गया। इसी विडम्बना से यह मान्यता भी उत्तर प्रांत में फैल गई कि पूरब की औरतें जादू-टोना जानती हैं और यहॉ के मर्दों को वश में कर लेती है। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रचलित 'बिदेसिया' लोकगीतों में बालम के विस्थापन से उपजी पीड़ा को बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति

मिली। दारूण वियोग सहती विवाहिता युवतियो की मर्म-व्यथा को चम्पा सुनती और थोडा-बहुत समझती भी होगी कि 'सईयॉ के ले गै बिदेसवा, ई पइसवा बैरी हो।' चम्पा पैसा कमाने से ज्यादा जीवन की खुशी को महत्व देती है। ऐसा पैसा आखिर किस काम का जो पति को दूर देश भेजकर जीवन की खुशियों को ही छीन ले। लेकिन पूॅजीवादी व्यवस्था मे समस्त मानवीय संबधो का आधार पैसा हो जाता है और मनुष्य का प्रेम, आस्था, विश्वास, ईमान सब पैसो पर बिकने लगता है। ऐसा लगता है कि–

> 'मानव की छाती पर चिपक गया है पैसा
> जो अपना था वही पराया हुआ घडी पर।' [25]

'जन' और 'जनपद' के कवि त्रिलोचन को 'यह तो सदा कामना थी, इस तरह से लिखूॅ/जिन पर लिखूॅ, वही यों अपने स्वर मे बोलें'। (उस जनपद... ,पृ० 115) अत· इस कविता मे चम्पा स्वयं बोलती है- अपने गॅवई बोली-बानी, लहजे और सहज भोलेपन के साथ। गद्यमय वाक्य-विन्यास के बावजूद इसमे एक आन्तरिक लय मौजदू है– वर्णन और सलाप दोनों मे। उस दौर में नारे के रूप मे लिखी प्रगतिवादी कविताओ और वैयक्तिक कुठा के उद्गार के रूप में लिखी गई प्रयोगवादी कविताओं के कृत्रिम भाव और भाषा से यह एकदम अलग है। यह कविता लोकबोली, लोक संवेदना और लोकगीतों की मार्मिक सवदेना के निकट है।

'परदेसी के नाम पत्र' मे भी एक दूसरी चम्पा मौजूद है, जिसका बालम परदेसी हो गया है, और वह अपने बालम को पत्र लिखाती है- 'सोसती सिरी सर्ब उपमा जोग बाबू रामदास को.....'। कविता में पत्र लिखने की पुरानी चाल को, देशज भाषा को और लोकगीतो की शैली को अपनाया गया है। पत्नी का उलाहना है कि–

> 'तुम्हें गॉव की क्या कभी याद नहीं आती है
> आती तो आ जाते
> मुझ को विश्वास है।'

(अरघान, पृ० 87)

उसके पत्र में तीन समाचार दिए गये हैं- 'अमोला बड़ा हो गया है', 'बछिया कोराती है' और 'मन्नू बाबा की भैंस ब्याई है'। लेकिन पत्नी का असली समाचार तो यह इंगित

करना है कि 'यहॉ जो तुम होते' और अन्त मे लिखती है 'थोडा लिखा समझना बहुत'। उधर प्रवासी पति असहाय और दयनीय वेदना से भरा उत्तर देता है–

'सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ, पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड जाना और कमाई
का हिसाब जोडना, बराबर चित्त उचटना.
इस उस पर मन दौडाना. फिर उठ कर रोटी
करना. कभी नमक से कभी साग से खाना.
× × ×
धीरज धरो, आज कल करते तब आऊॅगा,
जब देखूॅगा अपने पुर, कुछ कर पाऊॅगा.

(तप के ताए हुए दिन, पृ० 54)

त्रिलोचन की कविता में गॉव के साधारण जनो के बीच से उठाए हुए चरित्र बहुत आये है। भोरई केवट, टेल्हू मुसहर, फेरू कहार, नगई महरा, सुकनी बुढ़िया, भिखरिया, अतवरिया आदि के चरित्रो के माध्यम से कवि ने ग्रामीण जन-जीवन की पीड़ा, अभाव और रूढ़िग्रस्त संस्कारो मे जकडे सामती समाज के अन्तर्विरोधो को दर्शाया है। 'नगई महरा' पर लिखी लंबी कविता[26] में गॉव की पूरी संस्कृति अपने सारे अन्तर्विरोधो के साथ उपस्थित हुई है। गॉव के आम मजदूर वर्ग के जीवन का-श्रम, सौन्दर्य और गृहस्थी का-एक जीवत चित्र यहॉ मिलता है। इस कविता मे त्रिलोचन ने गॅवई परिवेश मे, बोलचाल मे आने वाले शब्दो को ही सीधे आने दिया है-

'नगई का परिवार/छोटा था/घरनी
और एक बच्ची/बच्ची गोहनलगुई थी/
घरनी सेंदुर से मिली नहीं थी/
धरौवा कर लिया था'

(ताप के ताए हुए दिन, पृ० 65)

'गोहन' का अर्थ होता है-'धोती या साड़ी का वह भाग जो पुरूष या स्त्री की पिंडलियों से सटा होता है।' 'गोहनलगुई' का अर्थ होगा-'गोहन से लगी रहने वाली' अर्थात्

तीन-चार साल की छोटी बच्ची। सेदुर से शादी की पद्धति से अलग, गॉवो की छोटी जातियो मे 'धरौवा कर लेने की पद्धति' भी प्रचलित है। अर्थात् किसी स्त्री को उसकी सहमति से, बिना शादी किए, घर मे पत्नी के रूप मे रख लेना। यह ग्रामीण सस्कृति का समाजशास्त्र है। त्रिलोचन (जो कविता का नैरेटर भी है) की टिप्पणी है 'कहारो में/किसी को छोड कर दूसरे को कर लेना/चलता था/और अब भी चलता है,'। लेकिन 'नगई ने अपने सगे भाई की सास को/घर मे बैठाया था/उसी घर मे बेटी मॉ/जेठानी देवरानी थीं/संबंधो की छीछालेदर/घर मे न हो/गॉव भर मे होती थी'। फिर बिरादरी की पचायत बैठी और जात-गगा ने उसे पावन कर दिया, वह धन्य हुआ। 'और फिर भोज हुआ/नाच और नाटक हुए'।

इस कविता में गॉव के अपढ कथावाचक की भॉति कहानी कहने की कला का उपयोग किया गया है और एक-एक दृश्य और घटना को सामने लाया गया है। यह कविता नाटकीय गुणों से भरपूर है। बातचीत का लहजा, वर्णनात्मकता और गद्यात्मकता पर ज्यादा जोर है। फिर भी इसमे एक आन्तरिक लय मौजूद है। भाषा मे लोक-बोली का, अवधी का गहरा पुट अपने नैसर्गिक रूप मे मौजूद है, जो एक पूरे समाज के नेम--धर्म, रस्मोरिवाज और अन्तर्विरोधों को खोलता चलता है। इस कविता मे लोक-बोली के नैसर्गिक शब्द-प्रयोगों को देखा जा सकता है, यथा-'नई बात से अनकुस होता ही है मन हाल रहा था', 'पूरा परिवार मैने देखा पैरो पैरो है', 'मैने इस घर मे टुन्न पुन्न नहीं देखी', 'कोई मुॅह, मुॅह देखे','उबेने पॉव चलना कठिन होता है', 'ऑखे उन हाथो को हथवट चिताती हुई' आदि। इस कविता मे हम पाते हैं कि भाषा में सक्रिय जीवन-गतिविधियों को रेखांकित किया गया है। यह कविता, कविता को कहानी की तरह वाचिक परम्परा के निकट ला देती है। यहॉ प्रेमचन्द के कथा-पात्र होरी की तरह नगई भी एक पूरा जीवन-संग्राम में भिडा हुआ दिखाई देता है। नगई की तुलना निराला के कथा-चरित्र 'चतुरी चमार' से की जा सकती है। त्रिलोचन स्वीकारते हैं कि, 'नगई महरा का मेरे व्यक्तित्व के निर्माण में बड़ा हाथ है। उनको कई पुराने कवियो की रचनाऍ याद थीं। मतलब भी जानता था। बालभट्ट कवि का वह सेवक था। इस कारण कविता पढ़ने का लहजा भी जानता था। अलंकार आदि भी बताता था। नगई महरा सिर्फ कविता ही नहीं, खेती-बाड़ी के बारे में भी सलाह देता था।'[27]

छायावादी भाषा के असर से मुक्त होने और अपना नया रास्ता तैयार करने के

लिए त्रिलोचन दो बातो की मदद लेते है– गद्य का वाक्य-विन्यास और वर्णनात्मकता। इसीलिए उनकी अधिकतर कविताओ में हमे कोई न कोई कहानी अवश्य मिलती है। इस कथात्मक वर्णन को ठेठ गद्य के वाक्य-विन्यास मे सजाकर त्रिलोचन एक बिल्कुल नयी यथार्थवादी शैली का निर्माण करते है। इसका संबध यदि जोडा जा सकता है, तो निराला की 'नये पत्ते' की कविताओं से ही। त्रिलोचन के 'नगई महरा' का ही एक और जोडीदार 'फेरू कहार' है–

'फेरू अमरेथू रहता है/वह कहार है/
काकवर्ण है/सृष्टि वृक्ष का/एक
पर्ण है/मन का मौजी/और
निरंकुश/राग-रंग में ही रहता है। [28]

इस छोटी-सी कविता मे भी छोटी-सी कहानी है। कविता एकदम सीधे वर्णन से शुरू होती है और उसमे छोटे-छोटे गद्य-वाक्यो की लडियॉ जुड़ती जाती हैं। [29] 'कविता के नये प्रतिमान' तलाशते समय नामवर सिह इस तथ्य को अनदेखा न कर सके कि, त्रिलोचन ही थे जो नयी कविता के उत्कर्ष काल मे भी प्रवाह-पतित होने का खतरा उठाकर, धारा के विरूद्ध, अटूट वाक्य-विन्यास, अनवरूद्ध प्रवाह की रक्षा के लिए आवाज बुलद करते रहे। [30] सीधे-सादे वर्णन मे भी त्रिलोचन हमेशा व्यक्ति-सत्य के माध्यम से किसी-न-किसी समाज सत्य का, और समाजगत अन्तर्विरोध का उद्घाटन करते हैं। भीषण अभाव मे जीने वाली 'सुकनी बुढ़िया' के जीवन की त्रासदी का वर्णन कुछ यों करते हैं–

सुकनी उस बुढिया को सभी कहा करते थे
ऊसर पर उस की मॅड़ई थी. बिल्कुल सूखी,
हड्डी हड्डी तन मे थी. पीछे चरते थे
चौपाए चरवाहे दरवाजे जा खूखी
मुट्ठी उसे दिखाते-'ले बुढ़िया दाना ले';
रोज़ रोज़ का धंधा था. बुढ़िया भी गाली
गिन गिन कर अनगिन देती थी. पर खाना ले.
कोई उस के पास न पहुॅचा. जा कर ताली
बजा बजा कर लड़के नित्य चिढ़ाया करते

सिला बीनती थी, करती थी कहीं पिसौनी,
तब गड्ढा भरता था. छह छह बेटे मरते
गए, छोडते गए उसे, रह गई घिसौनी

(उस जनपद...,पृ० 95)

'सुकनी बुढिया' के इस त्रासद-जीवन से मिलती-जुलती गॉव की औरतो का चित्र केदारनाथ अग्रवाल ने भी खींचा है–

'गॉव की औरते/गन्दी कोठरियो मे हॉफती, खॉसती,
खसोटती, रूखे बाल/घिसती है जॉता जटिलतर,
गॉव की औरते/सूखा पिसान फॉक फॉक कर
पेट पीठ एक कर हाड़ तोड/मरती है' [31]

जब बुढ़िया मरी तो चमारो ने अंधे कुऍ में फेक दिया, चिता के लिए लकडी तक उनको किसी ने नहीं दी। चमारो को प्रेत का भय हुआ। महीनो बाद भी वे सुनते है कि अंधे कुऍ मे बुढ़िया अभी भी 'जैसी की तैसी' है। कवि ने सुना, फिर जाकर देखा–

... ... कल्पना न वैसी
मुझ को थी कि गीध, कौवे भी पास न आए,
सड़ी गली भी नहीं, पडी थी लाश भी खुली
उसी खाट पर जिस पर दम तोडा था. पाए
टिकठी, कहॉ भाग था उस का.

(उस जनपद ...,पृ० 96)

यह है कवि के जनपद के सर्वहारा, दलित वर्ग की हीन अवस्था और दारिद्रय–जबकि एक सदस्य की मृत्यु होने पर कफ़न, टिकठी अथवा शवदाह भी नसीब नहीं हुआ। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि त्रिलोचन की काव्यानुभूति में समाज में गहरे धॅसकर 'भोगा हुआ यथार्थ' है, न कि प्रयोगवादी और नयी कविता के व्यक्तिवादी रचनाकारों के समान समाज से कटा, अहंकेन्द्रित, कुंठित व्यक्तित्व का 'भोगा हुआ यथार्थ' या 'क्षण सत्य'।

त्रिलोचन ने गरीबी और अंधविश्वास के बीच पिसती, मरती-जीती भारतीय जनता के दु:ख-दर्द को भोक्ता के रूप में देखा। 'धक्का खाने वाले, पीड़ित, दु.खी, क्षुधित और

रोटी के लिए परेशान लोग उनकी कविताओ के स्थायी भाव है। भोले-भाले किसान, पूर्ण सर्वहारा और गॉवो के श्रमिको का जीवन, साथ ही जीवनानुभव से प्राप्त जीवन और जगत सम्बन्धी बाते–उनकी सवेदना को निर्मित, विकसित और अभिव्यक्ति-क्षम बनाती है। एक अर्थ मे त्रिलोचन की संवेदना काफी कुछ हिन्दुस्तान के गॉवो से निर्मित है।'[32] वही उनकी प्रेरणा का उत्स है। उनके मन-प्राण गॉव वालो के सग-साथ के लिए लालायित रहते है–

निरधिन, तुम लोगो से रूखा होकर जाना
अलग असंभव है, मेरे मन की खुशहाली
रूपयो की मुहताज नहीं है, गाने गाना
तुम लोगों का रहना, इसकी आदत डाली
है मैने, कल गीत लिखा है, आज सुनाना
फिर मिल कर गाना है, शैली बिरहे वाली।

(फूल नाम है एक..., पृ० 14)

पॉचवे-छठे दशक मे कबीरा-तुलसी की काशी भी अपने आन-बान मे उनको गॉव-सी लगती है. जहॉ अनेक दुर्गुण होने के बावजूद लोग चना-चबेना खा कर, गगा जल पी कर मस्ती व बेफिक्री के साथ आपस मे घुले-मिले रहते थे।

मन मे उपजी पीड़ा और उल्लास दोनो ही स्थितियों मे त्रिलोचन जन से जुड़ते है, उनकी सुनते और अपनी कहते है-'जब पीडा बढ़ जाती है/बेहिसाब/तब/जाने अनजाने लोगों में/जाता हूॅ/उन का हो जाता हूॅ/हॅसता हॅसाता हूॅ'। (अरघान, पृ० 27) बहुत पहले से ही त्रिलोचन का घर 'अभावों का ही घर था'। 'ठोकरें दर-ब-दर थीं, हम थे/कम नहीं हमने मुॅह की खाई है' (गुलाब और बुलबुल) - कहने वाले त्रिलोचन की अभावग्रस्त ज़िन्दगी के अनेक चित्र उनकी कविताओ मे मिलते हैं, खासकर 'उस जनपद का कवि हूॅ' संग्रह के पहले चार सॉनेटों और 'ताप के ताए हुए दिन' के पहले तीन सॉनेटों में। इन सॉनेटो में 'सेल्फ पोर्ट्रेट' होने के बावजूद आत्मग्रस्तता नहीं है, क्योंकि यहॉ 'त्रिलोचन' शब्द का 'अन्य पुरूष' में प्रयोग हुआ है, जो अभावग्रस्त किन्तु अपराजेय भारतीय जन का परिचय भी कराता है। इनमें 'त्रिलोचन' नाम के माध्यम से सामान्य सत्य का विशेषीकरण करने का प्रयास किया गया है। वास्तव मे त्रिलोचन की अपनी दुनिया अभावग्रस्त भारतीय जन की असली दुनिया है, और वे गर्व के साथ इसका बयान करते हैं-

तुम को अपना कहूँ किंतु कहने का साहस
मेरे मन में नही बचा है. मेरे गदे
कपडो से तुम को नफरत है. तो फिर बंदे.
बड़े बनो तुम, मुझ को अपनी दुनिया में रस
मिलता है, तुम गाडी-घोडो का सुख लूटो,
मै पैदल ही भला. चला हूँ जैसे अब तक
चला करूँगा, पॉव दबा लूँगा जब मै थक
जाऊँगा. अच्छा है, तीर की तरह छूटो
जिधर लाभ है. मुझ को जो पिछडे है पथ पर
उन्हें देखना है,- मेरे इतने अपने हैं
जितने तुम हो नहीं. सग उन के तपने है
तप जीवन के, जाते देखा करते रथ पर
औरो को चुपचाप, पडे हैं जहॉ वहॉ है,
तुम महिमा मे मुग्ध, तुम्हें क्या कौन कहॉ है.

(उस जनपद..., पृ० 34)

क्या यह उन प्रयोगवादी और नयी कविता के रचनाकारों पर तीखा व्यग्य नहीं है, जो पूँजीवादी सस्थानों से जुडकर पद-प्रतिष्ठा, लोभ-लाभ के मद में चूर होकर जाग्रत चेतन समाज को भीड़ समझ रहे थे। लेकिन त्रिलोचन समाज में धॅसकर जीना ही सार्थक मानते हैं-

'.....संकोचों से सागर तरना
शक्य नहीं है. अगर चाहते हो तुम जीना,
धक्के मारो इसी भीड़ पर,इससे डरना,
जीवन को विनष्ट करना है... ... ...
उर्वर होता है, जीवन भी आघातो से
विकसित होता है, बढ़ता है उत्पातो से.'

(अनकहनी भी कुछ कहनी है...,पृ० 14)

जीवन मे निरन्तर अभाव, उपेक्षा और अपमान का कोडा नंगी पीठ झेलने वाले त्रिलोचन अपनी कविताओं मे 'मैं' या 'त्रिलोचन' नाम के माध्यम से सामान्य सत्य का

विशेषीकरण भी करते हैं। तभी ऐसी कविताएँ समाज मे पीडित और प्रताड़ित व्यक्ति को अडने, सहने, लडने आदि की शक्ति देती है, ढाढस बधाती है। वे कहते है-

झेला नंगी पीठ ज़माने का वह कोडा
सर्र सर्र जो पड़ता रहा न रूकना सीखा
जिस ने, मै ने भी कब सचित धीरज छोडा
पल भर को भी. ताजा है मुझ को वह तीखा
मॉसपेशियो का मथन, उस का क्या कहना
चेतनता का रक्त बूँद बन बन कर धीरे
धीरे बहना, तड़पो का पीछे आ रहना
ओठो के, जैसे कोई अतस्तल चीरे
× × ×
अगर न पीड़ा होती तो भी क्या मै गाता
यदि गाता तो क्या उस मे ऐसा स्वर आता

(अनकहनी भी..., पृ० 92)

त्रिलोचन स्वीकारते हैं कि, 'जीवन की कटुतम सच्चाइयो से मैने प्रगतिशील मूल्य-बोध प्राप्त किया और मार्क्स के दर्शन ने मेरी दृष्टि को और साफ किया।' [33] इसी कारण त्रिलोचन ने अपने को एक तरफ प्रयोगवादी आन्दोलन के अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी और रूपवादी आग्रहो से बचाया, और दूसरी तरफ प्रगतिवाद की नारेबाजी और क्रान्ति-कथन के भावोच्छ्वास से भी बचे। वे 'वस्तु-स्थिति को अपनी ऑखो से देख रहे थे और किसी तरह का ढोंग खडा करने से साफ इन्कार कर रहे थे।

... ...'अगर न हो हरियाली
कहॉ दिखा सकता हूँ ...
...अगर कोठरी अँधेरी
है तो उसे ॲधेरी समझाने कहने का
मुझको है अधिकार. ... ...'

(दिगत, पृ० 25)

अन्य प्रगतिशीलों से त्रिलोचन का यह महत्वपूर्ण अन्तर है कि जहॉ उन्होने खोखली ललकारो से लोगो के कान बहरे किए, वहॉ त्रिलोचन ने अपनी इस चेतना को सुरक्षित रखा था और अपने कलात्मक विवेक से कविताएॅ लिख रहे थे।' [34] इसीलिए त्रिलोचन ने अपनी कविता में जनता की दैन्य, अभाव और पस्ती के अनेक चित्र दिए है। ये चित्र अत्यन्त सवेदनशीलता और सहानुभूति के साथ अंकित किए गए है। जीवन व्यवहार मे भी कवि इतना सवेदनशील है कि उसे दूसरो का दुख भी अपना लगता है। वह स्वय से पूछता है कि आखिर–

'क्यो मै ने पाया है इतना नरम कलेजा
जो दुख कभी किसी का नहीं देख सकता है,
ऑखे भर भर आती है, मन थकता है
नही उठा रखने मे कुछ भी...
× × ×
तेरे दुख ने तुझ को ठीक पते पर भेजा.'

(दिगंत, पृ० 38)

समाज मे व्याप्त भूख, अभाव और शोषण के दृश्यो को देखकर कवि का यह 'नरम कलेजा' टूक-टूक होने लगता है। तब कवि अपने को रोक नहीं पाता–'दुख से दबे हुए मानव, आ आ, मै ले लूॅ/तेरा सब दुख, तू हल्का हो कर सिर ताने/आसमान में, इस दुनिया को अपनी माने/जिस को अपनी नहीं मानता' (शब्द, पृ० 18) त्रिलोचन को पता है कि उनके जनपद मे भूख, अभाव है; अशिक्षा, रूढ़िग्रस्तता, परम्पराप्रियता और धर्मभीरूता है। लेकिन दुःखो, अभावों मे पिसती जनता के अपराजेय चरित्र और संघर्षशीलता मे उन्हे पूरा विश्वास है। इसीलिए वे सत्ता, व्यवस्था द्वारा खड़ी की जाने वाली धर्म, जाति, भाषा, प्रातीयता आदि की दीवारों को ढहाने के लिए जनता को जागृत करते है। क्योंकि इन दीवारो को ढहाए बिना, मुक्तिकामी जनता को व्यवस्था के नरक से छुटकारा नहीं मिल सकता–

दीवारें दीवारें दीवारें
चारो ओर खड़ी हैं. तुम चुपचाप खडे हो
हाथ धरे छाती पर, मानो वहीं गड़े हो.

मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारे
और ढहा दे, उद्यम करते कभी न हारे
ऐसे वैसे आघातो से.....

(उस जनपद.. ., पृ० 97)

वे जानते है कि जिस दिन शोषित, श्रमशील जनता को बॉटने वाली दीवारे ढहा दी जायेंगी, उसी दिन 'हाथों के दिन आयेगे'। 'लेकिन कब ऐसा होगा?'– अपने-आप से संलाप करते हुए त्रिलोचन चितित और उद्विग्न हो उठते है–

हाथो के दिन आऍगे। कब तक आऍगे,
यह तो कोई नहीं बताता। ....
.......सुख की रोटी वे कब खाऍगे,
सुख से कब सोऍगे, उस को कब पाऍगे
जिसको पाने की इच्छा है। ....
हाथ कहॉ है, वंचक हाथों के चक्के मे
बधक है, बॅधुए कहलाते है।

(फूल नाम है एक, पृ० 98)

वे जानते है कि पीपर (ज़मींदार) जहॉ उगता-बढता-फैलता है, वहॉ दूसरा कोई पेड़-पालो (गरीब-गुरबा) कभी पनप नहीं पाता।

पीपर जामइ दुसरे पेड़े जाइ
ओकर बाढ़ि बियास ऐंचि के खाइ।
मनइन मा पिपराह अहे बहु खानि
जिनके विकसे बहुतन कइ हित हानि। [35]

इसीलिए वे गरीबी, भाग्यवाद और अंधविश्वास के तले सोई जनता को ललकार कर, शोषण पर आधारित वर्तमान व्यवस्था को बदलने के लिए जागृत करते हैं-

'सड़ी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए
मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को,
जिस को नेता लूट रहे हैं, कह कर, ताको

मत, हम तो है ही•अत्यधिक विमोह के लिए
कौल करारो की बौछार किया करते है'

(अनकहनी भी...,पृ० 87)

भारत को आजाद हुए पचपन साल पूरे हो चुके है, और इस कालावधि मे नेताओ द्वारा जनता की गाढ़ी कमाई से इकट्ठी हुई राष्ट्रीय सम्पत्ति का अधाधुध लूट जारी है। श्रमशील जनता आज भी सच्ची आजादी नहीं पा सकी है। ऐसी विषम परिस्थिति मे त्रिलोचन का जन-उद्बोधन आज भी प्रासंगिक व सार्थक है। यहॉ मुक्तिबोध का यह सार्थक विचार ध्यातव्य है कि, ''अपनी बिकी हुई मेहनत, बे-सहारा ज़िन्दगी की आकाक्षाएँ, सामाजिक उलझनो से होने वाले मानसिक तनाव, स्थिति-परिस्थिति की क्रिया-प्रतिक्रियात्मक सवेदनाऍ आदि को अपने में सम्मिलित करने वाला विचार-वेदना-मंडल जब लोक-मुक्ति की नयी क्रान्तिकारी विचारधारा से और भी सशक्त, और भी सवेदनमय हो जाता है तब जिस साहित्य का अविर्भाव होता है, उसमे महान 'मनुष्य-सत्य' होता है।''[36] सचमुच त्रिलोचन का साहित्य ऐसा ही है। त्रिलोचन को जनता के अभाव, दैन्य, पस्ती के बावजूद उनकी अपराजेयता और अटूट संघर्षशीलता में पूरा विश्वास है। इसीलिए तो वे यह आह्वान करते हैं–

'... ... ... उठ, हियाव कर,
अभी सामने सारा रास्ता पड़ा हुआ है.
चमडा छिला, चोट काफी घुटनों को आई.
मल कर पॉव झटक दे, चल फिर, नये भाव भर;
मानव है तू, अपने पैरो खड़ा हुआ है.'

(उस जनपद ..., पृ० 104)

ऐसे संघर्षशील मानवता की जय-यात्रा में त्रिलोचन को पूरा विश्वास है–

'मानवता की जय होगी — धोखे पर धोखा
खा खा कर भी यह विश्वास नहीं टूटा है
मेरा अब तक; किंतु धैर्य जब तब छूटा है।
× × ×
जिन की साँसों ने आस्था का ही स्वर गाया,

आज नहीं तो कल उन की अवश्य जय होगी।'

(फूल नाम है एक, पृ० 28)

वस्तुतः जैसा कि मैनेजर पाण्डेय का कहना है "त्रिलोचन का यथार्थवाद दूसरे कवियो के यथार्थवाद से कुछ अलग है। उसमे न कहीं भावुकता है, न झूठा आशावाद; न काल्पनिक सघर्षो के अमूर्त चित्र है, न मारो-मारो, काटो-काटो की ललकार है। वहॉ जनशक्ति मे आस्था है, संघर्ष के लिए आह्वान है, मुक्ति-आन्दोलन के गीत भी है; लेकिन यह चेतवानी है कि 'सोच-समझकर चलना होगा।'"[37] त्रिलोचन की कविता मे श्रमशील जनता की गरीबी, अभावो, पीडा, शोषण, जीवन-सघर्ष और अपराजयेता की अभिव्यक्ति तो हुई ही है; साथ ही साथ मेहनतकश खेतिहर मजदूर, कर्मठ किसानी जीवन के सामूहिक श्रम व संघर्ष के चित्रो को सहज व अनलकृत ढंग से रखा गया है। वर्षा न होने और नित भयंकर घाम होने से जब फसल सूखने लगती है तो किसान-दम्पति अपने बाहुबल के सहारे कठिन श्रमपूर्वक, गड्ढे से पानी उबाहकर बेडी से खेत सींचते है-

है धूप कठिन सिर-ऊपर
थम गयी हवा है जैसे
दोनो दूबो के ऊपर
रख पैर खींचते पानी

उस मलिन हरी धरती पर
मिल कर वे दोनो प्रानी
दे रहे खेत मे पानी

है अचल पवन, सॉसे चल
चल रहा पसीना अविरल
चलती है बेडी प्रतिपल
विश्राम नहीं है उनको

है आज नहीं उनको कल

(धरती, पृ० 18)

थमी हुई हवा, चिलचिलाती धूप तथा धरती की तपन से दग्ध, पसीने से लथपथ किसान-दम्पति को कभी 'उजले कपसीले बादल' आकर तपन से क्षण भर को मुक्त कर

जाते है, तो कभी पुरवा का हल्का झोका उनके पसीने को सुखा जाता है। अविराम कर्मरत रहते हुए जब तब वे सॉसो को संयत रखकर कुछ बातचीत भी करते है, और पल दो पल को नयन भी मिलाते है। लेकिन यह नयन मिलाना रोमैटिक नहीं बल्कि, बल को थाहने के लिए होता है कि क्या और अधिक समय तक बेडी चल सकती है? वे अपनी थकान मिटाने और 'नव कर्म-शक्ति' प्राप्त करने के लिए निकट के पेड की छाया में थोड़ा सुस्ताते भी है। इस प्रकार पूरी कविता खेत-सिचाई के कठिन-श्रम का समग्र चित्र सामने ला देती है। ऐसा हृदयग्राही चित्र किसान जीवन से गहरा लगाव और परिचय होने पर ही खींचा जा सकता है। कविता की गहराई जीवन-निर्वाह के लिए किसान-दम्पति के श्रम-सहयोग करने मे निहित है। किसान-जीवन के श्रम-सहयोग का एक ऐसा ही चित्र रामविलास शर्मा ने भी खींचा है। पति बैलो को नॉधकर पुर (ढेकुल) से पानी खींचता है और पत्नो खेत में पानी लगाती है–

'बीच खेत में सहसा उठकर/खड़ी हुई वह युवती सुन्दर,
लगा रही थी पानी झुककर,/सीधी करे कमर वह पल भर,

× × ×

इधर-उधर वह पेड हटाती,/रूकती जल की धार बहाती,'[38]

किसान-दम्पति का परस्पर प्रेम श्रम-जीवन के बीच ही विकास पाता है। अपने खेतो की हरियाली देखकर उन्हे परस्पर श्रम-सहयोग की याद ताजी हो जाती है-

'वे हरे खेत-/है याद तुम्हे?-/मैने जोता तुमने
बोया/धीरे धीरे अंकुर आये/फिर और बढ़े/
हमने तुमने मिल कर सींचा/फैली मनमोहन
हरियाली/धरती माता का रूप सजा/उन परम सलोने
पौदो को/हम दोनों ने मिल बड़ा किया'

(धरती, पृ० 31)

सांध्य गगन के इन्द्रधनुषी छटा के सुरूप-दृश्य के भीतर धान बैठाने वाली मजदूरिनो का श्रम-सौन्दर्यांकन भी अप्रतिम है-

... ... धान बैठाने वाला

दल मजूरिनो का प्रसन्नता से कुछ चचल
हुआ, झुकी कटि सीधी की, ओठो पर मगल
ठहर गया, जॉघे छूती हाथो की ऑटी
और सुहाई, पूॅजे कॉपे जल पर पल पल,
उधर बलाका ने अभिनव श्री घन को बॉटी।

(दिगत, पृ० 66)

त्रिलोचन का 'नगई महरा' स्वय भाड झोकता है और उसकी घरनी ने कुछ घरो का पानी थाम लिया है। श्रम के प्रति नगई की गहरी आस्था और दुनिया के बारे मे उसकी विवेकपूर्ण दृष्टि, सामंती और जाति-विभक्त समाज के सारे अभिशाप भोगने के बावजूद उसे हताश नहीं होने देती। उसके बारे मे कुछ पक्तियॉ है-

'सूखे पत्ते वहॉ बहुत सारे थे
नगई ने भाड बैठा दिया
दिन मे सॉस मिलने पर
भाड को जगाता था
× × ×
रस्सियॉ भी नगई बरा करता था
सुतली को कात कर बाध भी बनाता था
कहता था, दैव ने मुॅह चीर दिया है
उस मे कुछ देने को हाथ तो चलाना है।'

(ताप के ताए..., पृ० 64 व 66)

त्रिलोचन का कवि, मेहनतकश श्रमिक और खेतिहर किसान से ही बात किया करता है, और यह बात उसकी कविता है। उसका मन तो श्रमजीवी और खेतिहर किसान के साथ ही लगा रहता है-

'मैं तुम्हारे खेत में तुम्हारे साथ रहता हूॅ
कभी लू चलती है कभी वर्षा आती है कभी जाड़ा होता है
तुम्हें कभी बैठा भी पाया तो जरा देर

कभी चिलम चढा ली कभी बीडी सुलगाई
फिर कुदाल या खुरपा या हल की मुठिया को लिए हुए
कभी अपने आप कभी और कई हाथो को लगा कर
काम किया करते हो'

(उप०, पृ० 60-61)

एक छोटे खेतिहर किसान परिवार मे पैदा हुए कवि त्रिलोचन ने स्वय को किसान कहा है, जिसका मिट्टी, बादल, वर्षा, खेत-खलिहानो, गाय-बैलो से गहरा रिश्ता है। इस सम्बन्ध मे डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने बहुत सारगर्भित विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि, 'त्रिलोचन की कविता के बारे मे यह कहना काफी नहीं है कि वह किसानो के जीवन-संघर्ष की कविता है। यह भी देखना जरूरी है कि वे किसान-जीवन के यथार्थ को किस दृष्टि से देखते और चित्रित करते हैं। हिन्दी में किसान-जीवन के कवियों की कमी नहीं है। उनमे से अधिकांश कवि मध्यवर्गीय दृष्टि से किसान-जीवन के यथार्थ को देखते है। वे कभी समय की माँग और कभी बौद्धिक सहानुभूति के कारण किसान जीवन की कविता लिखते है। ऐसी कविताओं में कहीं कवि तटस्थ दर्शक की तरह होता है तो कहीं किसानों का वकील। इनसे भिन्न मध्यवर्गीय दृष्टि के कवि है जो किसान-जीवन की दयनीयता से द्रवित होकर उसकी व्यथा-कथा कहते है या किसान जीवन की सरलता, सादगी और पवित्रता का गौरव-गान करते हैं। त्रिलोचन ऐसे कवि नहीं है। उनकी दृष्टि एक सजग किसान की दृष्टि है जो उस जीवन को जीते, देखते-सुनते और समझते हुए कवि को मिली है, इसलिए उसमे मध्यवर्गीय तटस्थता और भावुकता नहीं है। उसमें किसान-जीवन से आत्मीयता और तादात्म्य है, लेकिन उस जीवन मे मौजूद रूढ़ियों की आलोचना भी है। उनकी दृष्टि किसान-जीवन की समग्रता को देखती है।'[39]

गाय किसान के जीवन का, ग्रामीण संस्कृति का अभिन्न अंग है। किसान के समान ही गाय के क्रिया-व्यापारों का और उससे सन्नद्ध कौवे के क्रिया-व्यापारों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण कवि त्रिलोचन ने किया है-

गाय जुगाली करती हो चाहे खडी खडी
या लेटी अधलेटी अपने खूँटे पर हो
या चरने के लिये खुली होकर बाहर हो

खोज खोज कर घास चर रही हो जरा बडी
चकत्तियॉ पाकर थोडी सी देर को अडी
हो आगे ही बढ़ते चारो पैर, चॅवर हो
पूॅछ डॉस, कुकुरौछी, माछी इधर उधर हो
तो, कौवा भी आता है उड़कर इसी घडी
पूॅछ चलाती है गैया तो उसे बचाकर,
वह शरीर से चिपके कीडे चुन लेता है
खा जाता है और मैल भी ऑख-कान के
हर लेता है गैया के कितना सॅभाल कर.

(तुम्हे सौपता हूँ, पृ० 54)

यह शुद्ध पर्यवेक्षण की कविता है और कवि गाय को किसान की आत्मीय दृष्टि से देखता है। ऐसा चित्र प्रयोगवादी और नयी कविता के दौर के कवियो के यहॉ नहीं मिलेगा, क्योंकि वे गॉव, किसान और किसान-संस्कृति से कटकर 'आत्मकेन्द्रित' हो चुके थे। किन्तु त्रिलोचन अवध जनपद और चिरानीपट्टी से दूर होकर भी अपनी जमीन, अपने नाल से अलग नहीं हुए थे-

पिर्थी बिसरइ कबहुॅ न आपनि चाल
दिन बीतइ रितु बीतइ बीतइ साल।

(अमोला, पृ० 103)

'जैसे प्रकृति के बिना किसान का जीवन अधूरा होता है, वैसे ही प्रकृति की उपेक्षा करने वाली किसान-जीवन की कविता भी अधूरी होगी–यह बात किसान–जीवन की समग्रता का कवि जानता है। प्रकृति किसान-जीवन का अंग है। उससे किसान का सम्बन्ध मनमाने की बात नहीं है, अस्तित्व की अनिवार्यता है। त्रिलोचन का किसान-मन प्रकृति मे खूब रमता है। उनके यहॉ प्रकृति किसान-जीवन के अंग के रूप मे है और उससे स्वतंत्र भी, उसका आकर्षक सौन्दर्य है और विस्मयकारी रूप भी, सावन की बरसात का संगीत है और भादों का प्रचण्ड मेघ-गर्जन भी, प्रकृति से सहज आत्मीयता है और कठिन संघर्ष भी। प्रकृति से किसान जीवन का ऐसा ही नाता है।' [40] डॉ० मैनेजर पाण्डेय के इस सारगर्भित विचार के आलोक में हम त्रिलोचन द्वारा उरेहे गये 'प्रकृति के किसानी चित्रों'

को देख सकते हैं।

त्रिलोचन ने बहुरगी ग्राम्य-प्रकृति का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करके बहुत से चित्र उपस्थित किए है। प्रकृति को कवि किसान की ऑखो से देखता है। सध्या-प्रात, सर्दी-गर्मी, बादल, वर्षा, बसन्त और शरद ऋतुओ के चित्र खेत-खलिहान से जुडकर, किसान-जीवन का अभिन्न अंग बनकर आए है। किसान-जीवन का बादल और वर्षा से बहुत लगाव होता है, क्योकि उनसे किसानो को जीवन मिलता है। कालिदास के 'मेघदूतम्' मे यक्ष मेघ की अभ्यर्थना करते हुए कहता है कि- 'तुम्हारे ऊपर ही कृषि-फल निर्भर है।' कवि त्रिलोचन का किसान-मन बादलो को जीवन दाता मानता है। अतः वर्षा-ऋतु में आसमान मे बादलों को न पाकर उसके मन मे भय समा जाता है-

हॅसता है अकाल तारो के दॉत निकाले,
मन किसान का मेरा, चैन नहीं पाता है.
× × ×
ताक रहे आकाश, नहीं जलधर की छाया
कहीं दिखाई देती है, भय तन धर आया.

(अनकहनी भी..,पृ० 75)

वर्षा और बादल के अनेक हृदयग्राही चित्र त्रिलोचन की कविता मे मिलते हैं। प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन ने वर्षा और बादल पर शायद सबसे अधिक लिखा है। त्रिलोचन का मन किसान का है, और बादल से बहुत अपनापा होता है किसान का। क्योकि बादल उनके जीवन में हरियाली लाते है। बादल से किसान के मन का उल्लास, उमग और आकांक्षा जुडी हुई हैं। आसमान में उमड़े हुए काले बादलों को देखकर कवि का किसान मन प्रफुल्लित, उल्लसित हो जाता है, और वह पुकार उठता है-

'उठ किसान ओ, उठ किसान ओ,
बादल घिर आये हैं
तेरे हरे भरे सावन के
साथी ये आये है
आसमान भर गया देख तो
इधर देख तो, उधर देख तो

नाच रहे है उमड़-घुमड़ कर
काले बादल तनिक देख तो

तेरे प्राणो मे भरने को
नये राग लाये है

× × ×

फिर वे परदेसी पाहुन, सुन,
तेरे घर आये है'

(धरती, पृ० 126)

जेठ की तपती दोपहरी के बाद आषाढ में बादलो को देखकर किसान के मन में नया राग फूटता है, क्योंकि वे बादल फसलो का जीवन है। वही बादल फसलो मे दानो का रूप धरकर मुसकायेगा-

'हरा खेत जब लहरायेगा/हरी पताका फहरायेगा/
छिपा हुआ बादल तब उसमें/रूप बदल कर मुसकायेगा/
तेरे सपनों के ये मीठे/गीत आज छाये है'

(उप०, पृ० 127)

त्रिलोचन आसमान में उमड़ते मेघों के बनते-मिटते चित्रो को गहरे लगाव के साथ, अत्यन्त तल्लीनता के साथ निरीक्षण करते हैं। कभी-कभी वे एक सधे चित्रकार के समान मेघो के बनते-मिटते चित्रो को मन में साधकर शब्दो मे उतार भी देते है-

'संध्या ने मेघो के कितने चित्र बनाए-
हाथी, घोडे, पेड, आदमी, जगल, क्या क्या
नहीं रच दिया और कभी रंगो से क्रीडा
की, आकृतियॉ नहीं बनाईं. कभी चलाए
झीने से बादल जिन में चटकीली लाली
उभर उठी थी, जिन की आभा हरियाली पर
थिरक उठी थी. जाते जाते क्षितिज-पटी पर
सूरज ने सोना बरसाया. छाया काली

बढने लगी, रग धीरे धीरे फिर बदले,
पेंसिल के रेखाचित्रो से बादल छाए'

(उस जनपद .,पृ 55)

त्रिलोचन की कविता मे वर्षा के अनेक रूपो (झापस, रिमझिम, धारासार) के चित्र है; यथा भादो की रात मे वर्षा का यह ध्वनिमय चित्र अनूठा है-

'भरी रात भादो की.....पथ.....लपका वह कौधा
दीप्ति भर उठी ऑखो मे इतनी, फिर हम तुम
कुछ भी पकड सके न डीठ से, छाया चौधा.
तड़ तड तड़त्तड़ाड्.धाड़् धा धाड़् ध्रुड् ध्रू हुम
.. ..फिर चमक, कड़ कड कड़क कड़ग्घम्
.....रिम झिम रिम झिम, छ्क् छ्क् छ्क् छ्क् सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक धमाके घन के, उत्सव निशि भर.'

(दिगंत, पृ० 31)

इस सॉनेट मे बिजली कौधने, ऑखों के चौधियाने, बिजली के गिरने, तडकने, बादलो के गरजने, चमकने और वर्षा के झमाके के साथ हवा के बहने का जो अत्यन्त सश्लिष्ट चित्रांकन हुआ है वह पूरी हिन्दी कविता मे अनन्य है।[41] धारासार वर्षा के इस चित्र से अलग 'झापस' का ध्वनि और संगीतमय चित्र–

'कई कई दिनों से पड़ाव पडा हुआ है/बादलो का/
हिलने का नाम भी नहीं लेते/वर्षा/फुहार, कभी झीसी,
कभी झिर्री, कभी रिमझिम/और कभी झर झर झर झर/
बिजली चमकती है/चिर्री गिरती है/पेड़ पालो सभी कॉपते है
× × ×
चिड़ियॉ समेटे पंख जहॉ तहॉ बैठी हैं।'[42]

कविता मे आये 'झापस', 'झीसी', 'झिर्री', 'चिर्री'- आदि देशज शब्दों का प्रयोग गॅवई प्रकृति से जुडा कवि ही कर सकता है।

'धरती' सग्रह की अनेक कविताओं में ग्रामीण प्रकृति अनेक छटाओं के साथ उपस्थित

होती है। सग्रह की 'धूप सुन्दर धूप मे जग-रूप सुन्दर' कविता मे सस्यश्यामला ग्रामीण प्रकृति का मनोरम चित्र अंकित हुआ है-

'सघन पीली/ऊर्मियों मे/बोर/हरियाली/सलोनी/झूमती
सरसों/प्रकम्पित वात से/अपरूप सुन्दर/धूप सुन्दर'

(धरती, पृ० 84)

'उस जनपद का कवि हूँ' सग्रह की बहुत सारी कविताओं मे ग्राम-प्रकृति और कृषि-संस्कृति के अनेक छोटे-छोटे खण्ड-चित्र मिलते है। 'खिली दृश्यता आज शरद की', 'हरियाली के माथे पर बिन्दी', 'फूलो की चादनी नीम मे', ''बाढ़ चांदनी की आई है', 'झांय-झांय करती दुपहरिया', गेहूँ जौ के ऊपर सरसो की रगीनी', 'मुझ को हरियाली पसद है', 'फूल मुझे भाए बबूल के', 'मैं बादल हूँ', 'बैठ धूप मे हरी मटर की घूँघनी खाना' आदि बहुत सारी ऐसी कविताएँ है, जिन्हे त्रिलोचन ने ग्रामीण प्रकृति और ग्रामीण संस्कृति में रमकर, तल्लीन होकर या अभिन्न भाव से लिखा है। कवि ने गेहूँ, जौ, सरसो और मटर से लहलहाते हुए खेतों का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है-

'गेहूँ जौ के ऊपर सरसो की रगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरे कुछ भीनी भीनी
नाक मे समा जाती है, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक झुक कर. समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूलभरा ऑचल है,
लगी किचोई है, अब भी छीमी की पेटी
नहीं भरी है, बात हवा से करती, बल है
कहीं नहीं इसके उभार में. यह खेती की
शोभा है. .. ..'

(उस जनपद..., पृ० 62)

यह बसंतकालीन सस्यश्यामला धरती है। अब शरद ऋतु में जनपद की शोभा-श्री का सजीव इन्द्रिय बिम्ब प्रस्तुत है–

'पेग मारती हवा झूलते तरू-तृण सन सन,
करते हैं किसान खेतों में काज. विचरती

है खिडरिच, उठती गिरती सी लहरो पर, कन
चुनती है, सगीत की तरह नन्हा सा तन
इधर उधर को बढता है सौरभ धानो का
और दूब का प्रखर धूप से विखर कर विजन
को वासित करता है. ... .'

(उप०, पृ० 48)

कवि जीवन और प्रकृति से वास्तविक प्रेम करता है, अत उनके यथार्थ सौन्दर्य का ऑखो देखा वर्णन करता है। किसानो के जीवन मे लहलहाते खेत, तैयार खडी फसल खुशियों के त्यौहार के समान होता है। क्योकि यह फसलो के संचय का पर्व होता है-

'तोड तोड कर बाल खेत से खग उड उड कर
चल देते है नीड-दिशा मे. ये मंगल के
दिन हैं. अपने काम से लगे सब, हलचल के
स्वर उठते है. ....
...........अभी हुक्के पुड़ पुड़ कर
बजे, उठा कुछ धूम, रग ऑखो मे, आया
हॅसिए में उत्साह, नया पहॅटा वह सलटा,
कुछ मालुम हुआ न, उधर से गीत कढाए
मजूरिनों ने, आम और मद से बौराया,
कटहल की अरघान उड़ी, फागो का पलटा
उमडा बन कर ज्वार, सभी ने वेग बढ़ाए.'

(शब्द, पृ० 60)

यहॉ कवि ने फसल कटनी के समय सामूहिक श्रम व जीवनोल्लास का चित्रण पूरी तल्लीनता के साथ किया है। पूरे परिवेश और वातावरण का जीवत चित्रण हुआ है। किसान जीवन मे फैले चतुर्दिक आमोद को कवि ने रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द द्वारा अनूभूत कराया है। एक अन्य कविता मे जाडे की धूप मे क्रियाशील जीवन का अकन करता हुआ कवि कहता है-

'प्रिय लगती है बहुत, घमौनी, घाम देख कर
लोग कहीं जमते है, गाएँ और बकरियॉ
खड़ी धूप मे मौज लिया करती है, सर्दी
इसी तरह जाती है। .. '

(शब्द, पृ०22)

धूप मे यह क्रियाशील जीवन बहुत कुछ निराला की प्रसिद्ध कविता 'बहुत दिनो बाद खुला आसमान/निकली है धूप हुआ खुश जहान' के निकट है। जैसा कि नामवर सिह का कहना है- "जीवन के प्रेमी त्रिलोचन प्रकृति मे भी जीवन ही देखते है, बल्कि प्रकृति मे उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहॉ जीवन दीखता है। वस्तुत त्रिलोचन के काव्य का एक बड़ा भाग जीवन का महोत्सव है।"[43]

जाड़े की गुनगुनी धूप सुखकर लगती है। लेकिन जेठ की प्रचण्ड दोपहरी मे पैदल मार्ग तय करने वाले राही तपन, गर्मी और पसीने से बेहाल हो जाते है। जेठ की दुपहर मे मार्ग तय करते समय की निम्न स्मृतियॉ त्रिलोचन जैसे किसान चेतना वाले कवि को ही हो सकती है–

दुपहर थी जेठ की. हवा भी चल कर ठहरी
थी. नीम की छाह. चलता कुऑ. मुडे चले
हम तुम. प्यास कड़ी थी और थकन्न भी गहरी.
घनी छॉह देखी. जा बैठे पेड के तले.
घमा गये थे हम. फिर नंगे पॉव भी जले
थे. मर गया पसीना, जी भर बैठ जुड़ाए.
लोटा-डोर फॉस कर जल काढ़ा. पिया. भले
चंगे हुए. हवा ने जब तब वस्त्र उड़ाए.

(उस जनपद .., पृ० 67)

यहॉ लोक जीवन की अपनी विशिष्ट स्मृतियों को लोक जीवन के शब्दो के सहारे अभिव्यक्ति मिली है। चलता कूऑं, प्यास कड़ी थी, थकन भी गहरी, मर गया पसीना–आदि मुहावरेदार प्रयोगों द्वारा कवि ने अपनी बात संक्षेप में, चुस्त ढंग से कह दिया है। यह बात ध्यातव्य है कि जहॉ प्रयोगवादी और नयी कविता के कवियों के शव्द, प्रतीक व

बिम्ब लोक-जीवन के अनुभव, अनुभूतियो से कटे है और प्राय चमत्कार सृष्टि के लिए लाए गए, वहॉ त्रिलोचन के शब्द, जीवन की सघन अनुभूतियों से जुडे, जीवन और उसके परिवेश से जुडे जीवंत शब्द है तथा आम बोलचाल के शब्दो और मुहावरो के रूप मे आते हैं।

लोक जीवन से निकट सानिध्य के कारण ही कवि ने 'माली के छोकरे, माली के छोकरे/फूल मुझे ला दे बेले के', 'मॅजर गये आम/कोइलिया न बोली', 'ये दिन न भुला ऽऽऽऽ ना/ओ सनेही' जैसे गीत लिखे। ये गीत लोकगीतो की तकनीक पर रचित और प्रायः उनसे मिलते-जुलते है।

त्रिलोचन की कविता में गॉव में पाये जाने वाले-गेहॅू, जौ, मटर, सरसो, ज्वार–जैसे फसल, आम, जामुन, कटहल, महुआ, सेमल, चितबिल, पीपल, पाकड, बबूल, शिरीष, बॉस, पुरइन, मकोय, झरबेरी, ढाक, आछी, मेंहदी, जलकुम्भी, दूब, काई-जैसे पेड़-पौधे-झाडियॉ-वनस्पतियॉ और काग, कोयल, बुलबुल, गौरेय्या, चरखी, पेडकी, किलहॅटा, बनमुर्गी–आदि पक्षी दिखाई देते हैं। उनकी कविता में ग्रामीण प्रकृति के अनुरूप सरसो, कचनार, नीम, बबूल, शिरीष, अरण्यानी तथा सेमल आदि के फूलो की बहार है।

त्रिलोचन जानते है कि गॉव मे प्रकृति के सहारे मनुष्य का जीवन व्यापार चलता है। यथा- महुआ बीनकर कितने ही गरीब परिवारो का भरण-पोषण हो जाता है। कुछ जन भोर मे ही महुआ बीनने चल देते है-

> कुकुडॅू कूॅ ऽऽ/उठो, जल्दी उठो,/महुए बीन लो/
> दखिनहिया जगी/और तारे ढले/नींद से
> जाग कर/बटोही चले/चिड़िया बोली-/
> (सुनो! सुनो!!) /ठाकुर जीऽ/उठो,
> जल्दी उठो,/महुए बीन लो
>
> (अरघान, पृ० 29)

यहॉ भोर के समय गॉव का सारा वातावरण उपस्थित हो गया है।

त्रिलोचन जनपदीय जीवन या लोक से पूरे तौर पर जुड़े रहे-'धरती' से 'अमोला' तक की रचना-यात्रा में। उनकी कविताओं में जनपदीय जीवन के अभाव, दुःख, पिछड़ापन

के साथ-साथ उसके जीवनोल्लास, मस्ती के चित्र भी मिलते है। उनके निम्न सॉनेट में अवध जनपद के लोक जीवन की पूरी मस्ती छलक रही है-

बैठ धूप मे हरी मटर की घुँघनी खाना,
जाडे का आनद यही है रस गन्ने का
ताजा ताजा पीना, कोल्हाड़ो मे जाना,
इन उन बातों से मन बहलाना, बनने का

भाव न मन मे आने देना, आवाजाही
का तॉता, रस का कड़ाह मे पकना, झोका
जाना गुलौर का, आलू ले कर मनचाही
सख्या मे पकने के लिए पहुँचना, चोका
किसी कमानी या पतली लकडी में, डाला
फिर कड़ाह मे, कही सुनी सानद कहानी
'सीत बसत' 'सख राजा' की,..

(उस जनपद . ., पृ० 74)

यहॉ अवध की जनपदीय संस्कृति के जीवंत तत्त्व उभर कर सामने आते है। त्रिलोचन गॉव के ठेठ, जीवत क्रिया-व्यापारों का वर्णन स्वय को हिस्सा बना कर करते हैं। 'धरती' संग्रह की कविता 'तारको से ज्योति चलकर भूमि तल पर आ रही है'- बहुत ही प्यार से ठेठ भारतीय विवाह का चित्रण करती है। जहॉ तक मुझे स्मरण है, लोक-प्रचलित विवाह-समारोह पर यह एक मात्र कविता है। यह थोड़ा आश्चर्यजनक है। हर कवि का, प्रायः हर कवि का, अनुभव होते हुए भी यह प्रसंग अछूता ही रहा। बहू, वर, सास, माता, नारियॉ, बारात- पूरे गॉव की जीवन-रागिनी का बहुत मार्मिक रेखांकन यहॉ मिलता है। लेकिन त्रिलोचन सारे मोह को तोडकर 'प्राचीनता से लौ लगाये' इस समाज को झिडकते हैं।" [44]

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिलोचन जीवन-संघर्ष के साथ-साथ जीवन-सौन्दर्य के भी कवि हैं। उन्होंने लिखा हैः 'मैं सौन्दर्य का उपासक हूँ'। उनकी सौन्दर्य-दृष्टि जीवन-जगत के बीच जिजीविषा, उल्लास, जीवंतता और मानवीय सबंधो की उष्णता की तलाश करती है। वे पिता, दादी, भाभी, मॉ, पत्नी, सहचरी और मित्र के नाते हर मानवीय रिस्तो के

चित्रण मे रमते है। वे सौन्दर्य के काल्पनिक चित्र नहीं बनाते, बल्कि अपनी लम्बी जीवन-यात्रा मे आए हुए जीवन-सौन्दर्य के अविस्मरणीय सस्मरणो को अपनी कविता मे ऑक देते है। उनके लिए जीवन वहॉ है जिससे मानव-जीवन विकसित, उन्नत और जीवत होता है। इसीलिए मानव को जीवन और उल्लास का दान देने वाली प्रकृति से उन्हे अतिशय प्रेम है। इस प्रकार सौन्दर्य का मूलाधार–मानव और उसका जीवन–ही कवि का सौन्दर्य-साधन है। 'सबारे ऊपरे मानुष सत्य तहारे ऊपरे नाईं'-चडीदास की यह उक्ति त्रिलोचन के सौन्दर्यबोध के विश्लेषण के लिए सबसे बडी कसौटी है।

वास्तव मे त्रिलोचन मूलत· 'राग' के, जीवन-राग के कवि हैं। उनके यहॉ मानव, प्रकृति-दोनों को व्यक्त करने वाली संवेदना का आधार तत्त्व है- उदात्त प्रेम। यह प्रेम मानव-मात्र को व्यापक, मुक्त एवं उदात्त बनाता है, उसके हृदय को विश्व-हृदय से मिला देता है। उनके प्रेम की गहराई और सघनता ने भाव को गहराई दी है और हृदय का प्रसार किया है। उनके लिए प्रेम जीवनासक्ति का ही पर्याय है। उन्होने प्रेम को पूरे अन्तर्मन से गहा है। इसलिए स्वच्छन्द-प्रेम के चित्रण मे भी उनके संयम और स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। अपने स्वस्थ राग-बोध की अभिव्यक्ति वह कुठाहीन हृदय से करते हैं। त्रिलोचन के कुंठाहीन हृदय मे अंकित स्फूर्तिदायक 'प्रथम परिचय' का एक चित्र प्रस्तुत है–

'यो ही कुछ मुसकाकर तुमने
परिचय की यह गॉठ लगा दी
था पथ पर मैं भूला भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन लहर थी उस दिन
तुमने अपनी याद जगा दी

कभी कभी यों हो जाता है
गीत कहीं कोई गाता है
गूॅज किसी उर में उठती है
तुमने वही धार उमगा दी

जडता है जीवन की पीडा
निस्तरग पाषाणी क्रीडा
तुमने अनजाने वह पीडा
छवि के शर से दूर भगा दी'

(तुम्हे सौंपता हूँ, पृ० 86)

कवि ने यहाँ प्रथम परिचय-जन्य प्रेम के आरम्भ का बयान करने के लिए रूमानी कवियो के समान भावोच्छ्वास- स्फीत शब्दावली का प्रयोग न करके अकुठ भाव से सहजता के साथ सीधे-सादे शब्दों में कह दिया है। वास्तव मे, प्रेम को सम्पूर्ण जीवन का अग समझकर अनुभव करने के कारण ही उसका प्रेम इतना स्वस्थ और स्फूर्तिदायक बन पडा है। उसका प्रेम-सम्बन्ध समाज से कटा एकान्त भावना नहीं है, वरन् वह समाजोन्मुख है और सामाजिक भावना को बल प्रदान करता है- 'मुझे जगत-जीवन का प्रेमी/बना रहा है प्यार तुम्हारा' (धरती, पृ० 11)। दाम्पत्य-प्रेम, कवि के जीवन मे राग रस का सचार करता हुआ उसे सामाजिक पथ की ओर क्रियाशील बनाता है। वह जगत-जीवन का प्रेमी बन जाता है। इसलिए प्रयोगवादी कवि की तरह वह सुख या दुःख- कुछ भी अकेला नहीं भोगना चाहता; बल्कि समाज से साझीदार की आकांक्षा करता है-

'आज मैं अकेला हूँ/अकेले रहा नहीं जाता

× × ×

सुख आये दुख आये/ दिन आये रात आये/
फूल मे/कि/धूल में/आये/जैसे/जब आये/
सुख दुख एक भी/अकेले सहा नहीं जाता'

(धरती, पृ० 60-61)

यह प्राणाधिक प्रिय से, स्वजनो से दूर रहने की उदासी है। अकेलेपन के उदास-क्षणों में उन्हे अपनी प्रिया की याद रागदिप्त कर जाती है-

'मैं जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूँ
ध्यान तुम्हारा आता है लय हो जाता हूँ
ऑखे मूँदे तुम्हें देखता हूँ.

× × ×

देख गया इतिहास कि जब से एक सूत्र मे हम दोनों है'
(उप०, पृ० 52)

त्रिलोचन की प्रेम कविताओ मे प्रेम के स्मृति-चित्र ही ज्यादा हैं। संयोग के क्षण जो बीत चुके है, वे बडी सहजता एवं तटस्थता के साथ आते है। उनका बस चलता नहीं और प्रिया के सग-साथ के क्षणो की सुधि बार-बार आया करती है-

'बस चलता नहीं, तुम्हारी सुधि
आया करती है/ बार-बार
× × ×
तुमसे जो दुर्लभ मिला अमृत
उससे अब तक सक्रिय जीवित
हो गई शक्ति इतनी संचित
जय-पथ पर हूँ मै
हार हार'

(उप०, पृ० 38)

त्रिलोचन को प्रिया की सुधि 'दुर्लभ अमृत' की तरह जीवन देती है, शक्ति देती है, न कि अज्ञेय की तरह 'प्रिया की कनक चम्पे की कली जैसी देह की स्पर्शातीत लुनाई' और 'दहकते दाड़िम पुहुप जैसे ओठ' की सुधि कामपीड़ित करती हे। 'प्रेम का बयान करते-करते रूग्ण मानसिकता या तनाव का शिकार हो जाना-अक्सर आधुनिकतावादी कवि की नियति रही है। उनमें बहुतो के लिए प्रेम का अर्थ या तो आत्मरति है, या आत्मपीड़ा, या स्त्री के प्रति एक बर्बर हिंस्र प्रतिक्रिया। त्रिलोचन की दृष्टि मे प्रेम व्यक्ति को समाज से जोड़ने वाला सहज, अंकुठ, अकृत्रिम अनुभव है-यहॉ अकेले होकर भी अकेले होना सभव नहीं; क्योकि एक व्यापक साथीपन, वृहत्तर आत्मीयता का अहसास प्रेम की बुनियादी स्थिति में ही है।'[45] इसलिए प्रेम का अनुभव उनके यहॉ नितान्त व्यक्तिगत अनुभव न होकर व्यापक सामाजिक भावना से जुड़ा है-

'प्रेम व्यक्ति व्यक्ति से/समाज को पकड़ता है/जैसे
फूल खिलता है/उस का पराग किसी और जगह

पडता है/फूलो की दुनिया बन जाती है/प्रेम में
अकेले भी हम/अकेले नहीं है'

(अरघान, पृ० 49)

त्रिलोचन का प्रणय मूलत दाम्पत्य प्रणय है। उनके लिए पत्नी-प्रिया, प्रेयसी और जीवन-मित्र है। उन्होने अनेक प्रेम कविताएँ सहधर्मिणी को लक्ष्य करके लिखी है। 'मेरी दुर्बलता को हर कर', 'बस चलता नहीं तुम्हारी सुधि आया करती है बार-बार', 'चाहे जो समझे यह दुनिया मैंने तुमको प्यार किया है,' 'मै जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूॅ' जैसे दर्जनों गीत 'धरती' सग्रह में है, जिनमे बैठी 'तुम' एक नये किस्म की 'प्रेमिका' है, जो 'प्रेरिका' है, जो स्मृति है, जो जीवन-पथ पर आगे बढ़ने का आह्वान करती रहती है।....'धरती' मे यह 'तुम' एक ऐसी 'स्त्री' है जो 'गिरस्तिन' है।[46] 'उस जनपद का कवि हूॅ' संग्रह में कोई एक दर्जन सॉनेट 'सखि, प्रेयसी, प्राणाधिक' पर है। यहॉ प्रेम रूमानी नहीं अपितु गृहस्थी मे टिका स्वस्थ प्रेम है, सौ फीसदी जिम्मेदार प्रेम। प्राण-सखी के पीहर जाने पर कवि का मन अधीर हो उठता है-

'सखि, तुम आज समीप नहीं हो, यह मेरा मन
अस्थिर है• सोचता हूॅ-कहॉ होगी, कैसे,
तुम इस समय. न जाने कैसा कुछ सूनापन
प्राणों में भर आया है. तुम भी तो वैसे
बेगानों में नहीं गई हो. अपने, जैसे
होते है माँ बाप, और कोई क्या होगा,
इसे जानता हूॅ. फिर भी मेरा मन ऐसे
धीर नहीं धरता है. ....'

(उस जनपद..., पृ० 33)

गहरे दाम्पत्य-प्रेम मे डूबी यह एक मार्मिक कविता है। प्रिया से प्रथम संयोग के अमृत-क्षणों की मधुर स्मृति सॅजोए एक मुग्धकारी सॉनेट-

'पलकें नीचे गिरीं, आँख में कहॉ ढिठाई
तब तक आ पाई थी, रोम रोम ही मानो

ऑख बन गया, सिहरन से लहराया, दानो
से किस के यह हर्ष भरा था और मिठाई
मन मे पाग उठी थी, मेरी और तुम्हारी
दो दुनिया अब एक थी, उधर कोयल बोली
कहीं पपीहा चीखा, फेरी यो ही हो ली
प्राणो की. मन की छवि अपने आप उतारी
हम ने अपनी अपनी ऑखो मे. . .
चुपके चुपके प्राणो की वह अदलाबदली
भीतर बाहर छाई इद्रधनुष की बदली.'

(उप०, पृ० 39)

'रोम रोम ही मानो ऑख बन गया', 'मिठाई मन मे पाग उठी थी', 'चुपके चुपके प्राणो की वह अदलाबदली', 'भीतर बाहर छाई इन्द्रधनुष की बदली' आदि अभिव्यक्तियों मे रची-बसी स्वकीया प्रेम पर यह एक मुग्धकारी सॉनेट है। "इस प्रेम के बिना जनपद नहीं बनता त्रिलोचन का। उनके 'भूखे दूखे' जनपद में प्रेम ही अभाव को हरता है, मानो प्रतिरोध का स्वर बनता है।"[47] लेकिन त्रिलोचन का यह प्रेम उनकी जीवन-स्थितियो से स्वतंत्र नहीं है। उन्हें अवध के आम बाशिन्दे की तरह गरीबी और अभाव दूर करने, रोजी-रोटी की तलाश मे गॉव छोड़कर शहर आना पडता है। गॉव मे परदेसी की बाट जोहती पत्नी 'परदेसी के नाम पत्र' लिखाती है, जिसका मज़मून कुछ इस तरह है-

'तुम्हें गॉव की क्या कभी याद नही आती है
आती तो आ जाते
मुझे को विश्वास है.
थोडा लिखा समझना बहुत,
समझदार के लिए इशारा ही काफी है'

(अरघान,पृ० 87)

'थोड़ा लिखा समझना बहुत' में पत्नी के प्यार और अभाव की वो सारी अनकहीं बातें ध्वनित हो जाती हैं, जो-जो उसके मन में हैं। उधर परदेसी मजदूर पति भी इस पत्र का जवाब देते हुए घर न आ पाने की अपनी मजबूरी और अभावमय ज़िन्दगी का

बयान कुछ यो करता है-

सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ. पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आ कर पड जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना,
इस उस पर मन दौडाना, फिर उठ कर रोटी
करना, कभी नमक से, कभी साग से खाना.

× × ×

धीरज धरो आज कल करते तब आऊँगा,
जब देखूँगा अपने पुर कुछ कर पाऊँगा

(ताप के ताए हुए दिन, पृ० 54)

यहॉ मुनाफे पर आधारित पूँजीवादी समाज मे परिवार से विच्छिन्न और परायापन (एलिअनेशन) का शिकार, 'आरर डाल' नौकरी मे जुते मजूर की मर्मव्यथा को पूरी आत्मीयता एवं कुशलता से प्रकट किया गया है। पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण का शिकार परदेसी मजूर खाली हाथ गॉव आता है। विदा के समय पत्नी द्वारा मॉगी गई चीजे अथवा कोई प्रेमोपहार न ला पाने का उसे बेहद मलाल है-

बिदा किया तब कहा कि यह लाना वह लाना,
ग्वैंड़े आया, और हाथ दोनों है खाली,
सजी खूब थी हाट, मगर मुश्किल था पाना
पैसों बिना. 'जानती हो, मुझ को खुशहाली
जैसे यहॉ, वहॉ भी न थी'-क्या यही कह दूँ.
कितनी ठेस लगेगी उस को. अपने मन मे
क्या क्या सोचे बैठी होगी. कैसे चह दूँ
बॉध बात से. ...

(उस जनपद ..., पृ० 42)

त्रिलोचन के 'देशकाल' कहानी-संग्रह मे 'जोखन' एक ऐसा ही चरित्र है जो 'घर छोड़कर कलकत्ता गया था रूपये कमाने के लिए, लेकिन वहॉ कुछ महीने बिताकर एक

रोज रोग-जर्जर देह लेकर खाली हाथ घर वापस आया।'[48] दीर्घकाल तक जीवन के अभावो, दुखो मे साथ निभाने वाली सहधर्मिणी को लक्ष्य करके कवि ने लिखा है–

सहधर्मिणी, सहचरी और न जाने क्या क्या
तुम हो। मेरे मन का सारा शून्य भरा है
तुम ने अपनी सुधि से। मेरे दुख की मारी
तुम भी हो, मुरझाई हो, मै ने पहचाना
है तुम को, हो अष्टधातु की, ऋतभरा है
सखि, तुम्हारी धृति को देखा कहीं न हारी।

(फूल नाम है एक, पृ० 32)

ऐसी प्राणाधिक प्रिय से बिछडने पर वह भूख-प्यास भूल जाता है और उसकी सुधि बार-बार आया करती है-

तोहँसे बिछुरे जिउ होई जाइ उदास
अउँतिआइ मन बिसरइ भूखि पिआस।
उठे चले बइठे ओलरे हर दॉइँ
तोहरिन सुधि हमरे आपन कुछु नॉइँ।

(अमोला, पृ० 9)

ऐसी सहधर्मिणी से कुछ दिनों के प्रवास के बाद मिलने पर उसका हृदय जुड़ा गया–

तुम को देखा, आज डीठ डहडही हो गई,
मन का सारा शून्य आप ही आप भर गया,
लहरो का उन्माद तीर को पार कर गया,
पुर पुर गई दरार। ...

(फूल नाम है एक, पृ० 91)

'राग तत्त्व' से जुड़ाव के कारण विपरीत परिस्थितियों मे भी त्रिलोचन के पास एक आन्तरिक दृढ़ता और अतिरिक्त ऊर्जा मौजूद रहती है–

मुझ को तो मुसकान तुम्हारी जिला रही है।

जहॉ कहीं भी और जब कहीं भी जाता हूँ,
वही स्निग्ध मुसकान ऑख आगे पाता हूँ,
मर्त्य लोक मे श्रात देख कर पिला रहीं है
मुझे सुधा का सार, ...

(उप०, पृ० 85)

विश्व-मैत्री और करूणा भी त्रिलोचन की कविता मे राग-तत्त्व की प्रबलता के कारण ही कल्पना- समृद्ध हुए हैं। वे सहज ही स्वीकारते हैं कि ! 'सभी मित्र है मेरे जिनको मैंने देखा कभी किसी दिन' (उस जनपद. ., पृ० 36) वे चेतन तक ही नहीं, अचेतन तक अपनी मैत्री का विस्तार मानते है– 'मैत्री चेतन की ही मै तो नहीं मानता,/ चेतन तक सीमित जगती को नहीं जानता,' (उस जनपद..., पृ० 36),19-3-1963 को प्रेमलता वर्मा के नाम लिखे पत्र मे भी वे लिखते हैं– 'मुझे पेड-पौधे, जीव-जन्तु, नदी-जलाशय, पहाड-भवन सभी मित्र लगते है।'[49]

त्रिलोचन की कविता में बूआ (दादी), मॉ, पिता, पत्नी, भाई, भाभी आदि के आत्मीय संबंधो की अभिव्यक्ति करते हुए अनेक पारिवारिक चित्र आते है। ऐसे आत्मीय सबधो की उष्मा से युक्त पारिवारिक चित्र अहंकेन्द्रित प्रयोगवादी, नयी कविता के अधिकांश कवियो के यहॉ दुर्लभ हैं। कवि ने 'दिगत' संग्रह की 'भौजी' शीर्षक कविता में भौजी से जुडे मधुर स्नेह-संबंध की स्मृतियो को बड़े आत्मीय रूप में अभिव्यक्त किया है–

'भौजी नई नई आई थीं, मै छोटा था.
झेंपू था. मिलने जुलने में सिकुडा सिकुडा
रहता था. ...
........कभी पकड मे आता
नहीं. खड़ा था, और अचानक मुझे आ लिया,
हाथ पॉव फेंके पर छूट कहॉ से पाता,
लगीं गुदगुदाने मन का सकोच धो दिया.
दे कर दुलहिन नाम मिठाई मुँह में भर दी.
गॉव नहीं रह पाया, भागा ज्यों ही आया,

कई होलियॉ गईं एक होली मे कर दी
अपने मन की, रॅग दी कनई से यह काया.,

(दिगत, पृ० 32)

वस्तुत· त्रिलोचन उस जनवादी धारा के कवि है, जिसका अपने गॉव की धरती, गॉव के लोगो, परिवार और समाज से भरपूर नेह-छोह कायम रहा है। नन्हे, चित्रा जाबोरकर, छोटू, रैन बसेरा, सब्जी वाली बुढ़िया, बिना मिले लौटने की राह में–आदि कविताएॅ उनकी पहचान गॅवई नेह-छोह मे सराबोर, अति आत्मीय व्यक्ति के रूप मे कराती हैं।

'गुलाब और बुलबुल' (नव० '56) की गज़लो व रूबाइयो में त्रिलोचन की कविता मे एक नया तत्त्व जुडता है, वह है उनका 'व्यग्य'। उनका व्यग्य गहरी पीडा से उठने वाला व्यग्य है, जो समाज की ह्रासशील, प्रतिगामी प्रवृत्तियों, सामाजिक, राजनीतिक विडम्बनाओ, पाखण्डो पर करारा प्रहार करता है। उनके व्यग्य मे अधिकतर विद्रूप की जगह संयम, गहरी चोट की जगह नोक चुभोने की प्रवृत्ति मौजूद है। 'गुलाब और बुलबुल' संग्रह की एक रूबाई मे 'झूरी' आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त करता है और विपत्तिग्रस्त समाज से लाभ उठाने वाले मुनाफाखोरो पर करारा व्यग्य करता है-

'झूरी बोला कि बाढ़ क्या आई
लीलने अन्न को सुरसा आई
अबकी श्रीनाथ तिवारी का घर
पक्का बन जाने की सुविधा आई'

(पृ० 11)

'दिगंत' सग्रह के प्रथम सॉनेट मे तो वे स्वय पर ही सहज भाव से, मुस्कुराते हुए व्यग्य करते है-

'सॉनेट, सॉनेट, सॉनेट, सॉनेट-क्या कर डाला
यह उस ने भी अजब तमाशा. मन की माला
गले डाल ली. ... ...
... ... उसने तो झूठे
ठाटबाट बॉधे हैं. चीज़ किराए की है.
... ... उसने नई चीज़ क्या दी है.

सॉनेट से मजाक भी उस ने खूब किया है,
जहॉ तहॉ रंग व्यग्य का छिडक दिया है.'

(दिगत, पृ० 11)

इस सॉनेट मे कवि ने अपने सॉनेट के ऊपर की जाने वाली आलोचनाओ को स्वयं दे दिया है। 'रोटी' शीर्षक सॉनेट मे कवि ने रोटी के दर्शन का उपहास करने वालो का मजाक उड़ाया है, बहुत कुछ कबीर की तरह-

'एक हज़ार आठ स्वामी . ... जी ने डकार ली,
हाथ पेट पर फेरा. बोले, 'अधिक खा गया.
मर्यादा पुरूषोत्तम प्रभु का ध्यान आ गया,
भूल गया मै. उन लोगो ने तो उतार ली
मर्यादा इस पुण्यभूमि की, जिन लोगो ने
कहा कि रोटी ही सब कुछ है. . . ..
... ...
हॅसी हिलोरो से फिर तो वह काया मोटी
हिलने लगी. तोद मे सिहरी सचित रोटी.'

(उप०, पृ० 22)

यहॉ यथार्थ जीवन से कटे ऐसे आदर्शवादी विचारकों के खोखलापन की हॅसी उडाई गई है, जो रोटी को तुच्छ तो कहते हैं, लेकिन खुद उनका पेट दूसरे दस लोगो के कौर हज़म कर ऊॅचा होता है। दूसरी तरफ कवि देखता है कि 'अतवरिया' जैसे गरीबों को तो पेट के आगे बार-बार हार खानी पड़ती है। 'ताप के ताए हुए दिन' संग्रह के 'आलोचक' शीर्षक सॉनेट मे 'जिसका खाना उसका गाना'-धर्म का निर्वाह करने वाले आलोचकों पर व्यंग्य प्रहार किया गया है-

आलोचक है नया पुरोहित उसे खिलाओ
सकल कवि यशः प्रार्थी, दे कर मिलो मिलाओ.

(ताप के ताए ..., पृ० 48)

त्रिलोचन ऐसे किसी आलोचक से दोस्ती और खातिरदारी करके उसे गॉठ न सके। अत प्रगतिशील कवियो की लिस्ट मे काफी समय तक उनका और उन जैसे अनेक प्रगतिशील कवियो का नाम नहीं था।

छठे दशक के आरभ मे भारतीय बुर्जुआ वर्ग से जुडकर हिन्दी की नयी काव्य-धारा के कवि 'साहित्य की स्वायत्तता' एवं 'अनुभव की प्रामाणिकता' के नाम पर व्यक्तिवादी और तथाकथित आधुनिकतावादी मूल्यो की अभिव्यक्ति करने लगे। त्रिलोचन ने ऐसे कवियो पर कटाक्ष करते हुए कहा–

> 'देसी और विदेसी लादी ढोते ढोते
> जिनकी पीठ कट गई थी वे गधे शान से
> घोड़े कहलाते फिरते है। . .. . .
> ... .
> साम्यवाद के पथ मे लीद किया करते है,
> मानवता का पोस्टर देखा, लगे रेकने।
> क्या प्रतीक है और तथ्य क्या, दूर-दूर हैं,
> समझ बडी भोली है, व्यस्त जिया करते हैं।
> सस्कृति की हरियाली देखी, लगे छेकने,
> अपनी दुलत्तियो के मद मे सदा चूर है।'

(फूल नाम है एक, पृ० 21)

वे देखते है कि शोषको की श्रेणी मे पूँजीपतियो व शासन-सत्ता में बैठे लोगों के साथ कुछ तथाकथित साहित्यकार भी हैं। पूँजीवादी, व्यक्तिवादी व्यवस्था के पोषक, समर्थक बने नयी भावधारा के साहित्यकारों पर उन्होने चुभता व्यग्य किया है-

> 'कौर छीनकर औरों का जो खा जाते हैं,
> वे भी कवि साहित्यकार की छाप लगाए
> पथ पर घूम रहे हैं। ... ...
> ... ...
> राज्यपाल को देखा तो पैरो पर माथा
> टेक दिया फिर स्पष्टीकरण दिया-भारत की

परपरा ऐसी ही है। दूतों को देखा,
सिर के बल दौडे, फोटो मे उभरी गाथा,
ऐसी ऐसी चालढाल है गत आगत की
मानवता शरमाए ऐसी जीवन रेखा।'

(उप०, पृ० 23)

कुछ इसी तरह के चाल-ढाल में ढले नवीन इलाहाबादी (परिमलवादी) साहित्यकार की तस्वीर त्रिलोचन ने कुछ इस तरह खींची है–

काफे रेस्त्रॉ मे हिलमिल कर बैठे. बाते
की, कुछ व्यग्य विनोद और कुछ नए टहोके
लहरो मे लिए दिए. अपनी अपनी घातें
रहे ताकते. यो, भीतर भीतर मन दो के
एक न हुए, समीप टिके, अपनापा खो के,
जीवन से अनजान रहे, पर गाना गाया
जन का, जीवन का, लेकिन दुनिया के हो के
दुनिया में न रहे. दुनिया को बुरा बताया.
उस से तन बैठे जिस ने कुछ दोष दिखाया.
इस प्रकार से ढले नवीन इलाहाबादी

(अरघान, पृ० 77)

अपने समय के साहित्यिक-सांस्कृतिक माहौल पर उन्होंने जो शालीन और चुभते व्यंग्य किए हैं, उसमें उनकी आत्मवेदना सजग है। 1953 ई० के प्रयाग के कुम्भ-स्नान के दौरान सैकड़ों लोग नागाओं के नगा-नाच से मचे भगदड़ मे दब-पिस गये थे। तब उ०प्र० के तत्कालीन राज्यपाल और प्रसिद्ध साहित्यकार, उपन्यासकार कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी जी कुम्भ मेले मे पधारे थे–

लाशों की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था
राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही
चहलपहल थी, सागर और ज्वारभाटा था।
जो सुनता था वही थूकता था, ‘हू. ही ही.

यह क्या रग ढग है. मानवता थोडी सी
आज दिखा दी होती.' 'वे साहित्यकार है'
कहा किसी ने. औरत बोली झल्लाई सी-
'बादर होइँ, पहाड होइँ, आपन कपार है'
पति ने कहा, 'होश मे बोलो' 'धुँआधार हैं
उन के भाषण सस्कृति पर' .. ..

(उप०, पृ० 73)

वेदना-भाव के साथ-साथ यहॉ हास्य उभरता है किन्तु अन्तत· करूणा उत्पन्न करता है। शासन-सत्ता से जुड़े साहित्यकार की अमानवीयता, संवेदनहीनता के साथ-साथ यहॉ अपने समय की विडम्बना व विसंगति से भी सीधा साक्षात्कार हो जाता है। त्रिलोचन देखते है कि शासन-सत्ता प्राप्त कर जनता को भेड समझने वाले नेता पुन· 'चुनाव के दिन' गिरगिट की तरह रंग बदल कर किसान-मजूर के आत्मीय होने का नाटक करते हैं-

इलायची से बसा हुआ रूमाल लगाया
ऑखों पर कि बह चले ऑसू, और साथ ही
नाम किसान मजूर का लिया, और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया

उसी पुराने गले से, चकित थे सब श्रोता
कैसे शेर बन गया बिल्ली, कौन बात थी
आज नहीं कुछ दिन पहले किस की बिसात थी
इस से बाते करता, समय नहीं है, होता
बना बनाया उत्तर, और काम पड़ने पर
बोला करती थीं उस की ओर से गोलियॉ,
बिछ जाती थीं एक दो नहीं, कई टोलियॉ;
आज चिरौरी करता है घोड़ा अड़ने पर.

(ताप के ताए ..., पृ० 52)

यहॉ आज के नेताओ के अवसरवादी, जनविरोधी चरित्र का पर्दाफाश कर उन पर व्यंग्य किया गया है। वस्तुत· त्रिलोचन कबीर, सूर, तुलसी जैसे समदर्शी कवियो के समान

अपनी भी हॅसी उडाने की कूबत रखते है। अत. उन्हे समाज के आडम्बरो, बुराइयो पर हॅसने और उनका पर्दाफाश करने का नैतिक बल मिला-

> 'औरों की ही नहीं, हॅसी मै ने अपनी भी
> खूब उडाई है. मै तो खोजा करता हूॅ
> किधर बढ़ रहा है आडबर, कब डरता हूॅ
> कहीं किसी से. कुछ ऐसा है अपना जी भी
> झूठ दभ छल द्वेष घृणा का काला पर्दा
> फाडे बिना नहीं सुख पाता. मै यथार्थ का
> प्रेमी हूॅ, शिव हो सुन्दर हो. ..'

(उस जनपद...., पृ० 86)

त्रिलोचन ने प्रचलित अर्थ में राजनीतिक कविताएॅ बहुत कम लिखा है, पर राजनीति की मूल्यपरक गहरी चेतना निस्सदेह उनकी कविता को सदा अनुप्राणित करती रही है। वस्तुत उनकी अधिकाश राजनीतिक कविताएॅ सरकार या नेताओ के सीधे-सीधे नामोल्लेख के बिना रचित हैं, फिर भी उनकी पृष्ठभूमि मे अपने समय की राजनीति की गहरी समझ विद्यमान है। ऐसी रचनाओं मे राजनीतिक संदर्भ को केवल कुछ शब्द-सकेतों और इशारो के जरिए पकडना होता है। स्वय त्रिलोचन जी का कहना है कि- 'मेरी कविताओ मे यदि राजनीति की छानबीन करनी हो तो उन्हे क्रियाओं मे खोजा जाना चाहिए, सज्ञा पदो मे नहीं।'[50] राजनीति, कविता मे कविता की तरह आये, यह उन्हें ज्यादा अच्छा लगता है। वैसे उन्होंने बहुत से राजनीतिक व्यक्तियों को लक्ष्य करके भी कविताएॅ लिखा है; जैसे-गॉधी, सुभाष, माओत्से-तुग आदि। पर उनके यहॉ ऐसी कविताओ की सख्या कम है। लेकिन त्रिलोचन की राजनीतिक समझ बहुत साफ और दृढ़ है। वे मार्क्सवादी विचारधारा के प्रतिबद्ध कवि है। वे मानते है कि समाज और मानव का उद्धार तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि शोषण और सत्ता के आतक मे पिसती हुई जनता पूॅजीवादी, साम्राज्यवादी और सामंतवादी शक्तियो के विरूद्ध एकजुट होकर क्रान्ति के लिए तैयार न हो जाए। अतः बुद्धिजीवी वर्ग का कर्त्तव्य इस जनशक्ति को क्रान्ति के दिपदिपाते विचारो से लैस करने का है और जनता को उसके शोषण, शोषणकर्त्ता व शोषण के हथियारो से वाकिफ़ करवा कर उनमें चेतना जगाने का है। इसलिए अपनी कविताओं में त्रिलोचन बार-बार अपनी प्रतिबद्धता इस जनता के पक्ष में रखते हैं और उसे पूॅजीपतियों, मुनाफाखोरो, सुविधाभोगी,

भ्रष्टाचारी वर्ग से आगाह करते हैं तथा उनमे आत्मविश्वास जगाते है।

त्रिलोचन की कविता मे अपने समय और समाज की विडम्बनापूर्ण स्थितियो का मार्मिक चित्रण भी कमोबेश मिलता है। 'धरती' ('45) से ही त्रिलोचन को साम्राज्यवाद, सामतवाद और व्यक्तिवाद (या पूॅजीवाद) से पूर्ण स्वाधीनता का प्रश्न बेचैन करने लगा था। क्योकि वे स्पष्ट देख रहे थे कि-'अब तक जो होता आया है/उसमे जन-सम्मान नहीं है/उसमें मानव को मानव के/सुख-दुख का कुछ ध्यान नहीं है/उससे व्यक्तिवाद पनपा है/उससे पूॅजीवाद हुआ है' (धरती, पृ० 14)। वे यह भी देख रहे थे कि 'पूॅजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सब का/जीवन का, जन का, समाज का, कला का' (धरती, पृ० 98), साथ ही समस्त जनता साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन-व्यवस्था की परतत्रता मे घुट-पिस रही थी। अतः कवि 'जन सम्मान' की रक्षा के लिए, शोषित समाज और मनुष्य की मुक्ति के लिए—साम्राज्यवादी, सामतवादी और व्यक्तिवादी (पूॅजीवादी) व्यवस्था के विरूद्ध सघर्ष के लिए जनता का आह्वान करता है–

'तुम बढो जिस तरह दीप्त ज्वाल
कर दग्ध रूढ़ि का अन्तराल
साम्राज्यवाद
सामन्तवाद
औ' व्यक्तिवाद
जो बॉध रहे गति जीवन की कर उन्हें नष्ट
तुम सामाजिक स्वातन्त्र्य-साम्य को करो स्पष्ट
होवे स्वतंत्र नारी-नर
हो सामंजस्य अमलतर'

(धरती, पृ० 16)

द्वितीय विश्व-युद्ध के परिवेश की स्पष्ट झलक 'धरती' सग्रह की चार कविताओं-'आजकल लड़ाई का जमाना है', 'भोरई केवट के घर', 'एकाधिकार के पंजे में' तथा 'इन दिनों मनुष्य का महत्व कोई नहीं है'-में मिलता है। इन कविताओं में लड़ाई के प्रति भारत के दूर-दराज के गॉवों में बसी मुक्तिकामी जनता की चिंता, लड़ाई के अवसर का लाभ उठाने वाले मुट्ठीभर मुनाफाखोर पूॅजीपतियो की दिन-दिन बढ़ती संपदा और सर्वहारा वर्ग की

दिन-दिन बढती सख्या तथा बेतरह बढी महँगाई की मार झेलती गॉव की गरीब जनता की असहाय अवस्था का मार्मिक वर्णन किया गया है।

त्रिलोचन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के परिवेश को लेकर चार काव्य-रूपक 1944-45 ई० में लिखा, जो 'तुम्हे सौपता हूँ' ('85) सग्रह मे 'शातिपर्व' शीर्षक से एक अलग खण्ड मे सग्रहीत है। 'वे घर आ रहे है' शीर्षक पहला काव्य-रूपक द्वितीय विश्व युद्ध से लौटने वाले भारतीय सैनिको के बारे मे है, जो एक नयी समझदारी से लैस होकर आते है और देश की आजादी मे भाग लेते है। दूसरा, 'फ्रास' शीर्षक रूपक नाजियो के आगे घुटने टेकने के बाद प्रतिरोध मे पुनः उठ खडे होने वाले फ्रास के बारे मे है। तीसरा रूपक 'भूखे भेडिये'-हिन्द-चीन मे अनाम (अब वियतनाम) के स्वाधीनता-सग्राम तथा वहॉ किये जाने वाले फ्रासीसी, अमेरीकी-जापानी षड्यन्त्रों के बारे मे है। अन्तिम, 'शैतान और इन्सान' शीर्षक काव्य-रूपक मुसोलिनी के पतन के बाद ग्रीस के फासिस्टो की देशद्रोही चालों तथा ब्रिटिश आधिपत्य के खिलाफ ग्रीस की जनता के छापामार सघर्ष के बारे मे है। [51]

देश की आजादी के बाद भी आम जनता की आर्थिक दुरावस्था मे सुधार न होने से अनेक रचनाकारों का मोहभग हुआ। लेकिन त्रिलोचन तो पहले से ही, विदेशी शासन से मुक्ति से आगे बढकर जन-जन की मुक्ति की बात सोचते थे और अनेक देशी नेताओ का पूँजीवाद, सामतवाद से गठजोड़ को पहचान रहे थे। अत· आजादी के बाद उनके अनुभव मे बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ। पहले से ही नयी स्थितियो से मोह न होने का ही कारण था कि राजनीति के अन्तर्विरोध को साकार करते हुए उन्होने लिखा–

> 'कहा हैं वे लोग/जो संभाषिका मे जोश से/बोला
> किए परसाल/और उन के बोल से जो छॉह/छा गई
> थी/सोचते थे तुम दुलारे,/ताप के दिन गए/हाथ जितने
> हैं/आड़ करते रहेंगे/कहॉ हैं वे लोग/जो सहयोग
> झोलों में सँभाले/यहॉ आए थे'
>
> (ताप के ताए ..., पृ० 29)

आजादी के बाद शासन-सत्ता के अमानवीय, जनविरोधी रूप का उद्‌घाटन करते हुए 'गुलाब और बुलबुल' की एक रूबाई में वे व्यंग्य करते हैं-

'वह जो इन्दौर मे चली गोली
जॉच उसकी अदालती हो ली
बदली कर दी वहॉ जो अफसर थे
न्याय की क्या नई प्रथा खोली'

(पृ० 22)

यहॉ सरकार की न्याय-प्रक्रिया की विसगति व विडम्बना से सीधा साक्षात्कार होता है। आज भी सरकार जनता को न्याय दिलाने हेतु यही प्रक्रिया अपनाती है। अक्टूबर, 1951 मे ही वह प्रत्यक्ष देखते है कि 'अच्छाई के बिगड़े दिन है, और बुराई राजपाट करती है।...जन मन में भय ही भय पैठा।' (दिगंत, पृ० 39) 1951 मे ही वे देखते है कि राजनेताओ ने सेठ-साहूकारों से गठजोड करके जनविरोधी रूख अख्तियार कर लिया है और परिस्थितियो की मार सहती गरीब जनता गूँगी होती जा रही है। तब वे अपने काव्य की अभिव्यक्ति-संयम की प्रकृति से अलग हटकर जनता की त्रासद स्थिति के लिए जिम्मेदार सत्ताधारी एव विपक्षी नेताओ का नाम लेकर उन्हे जलील करते हैं- 'जिसने भोगा/है, वह तो गूँगी जनता है, जिसे जवाहर/ जयप्रकाश गोलवलकर फुसलाया करते है-'। (अनकहनी भी..., पृ० 36) और काफी रोष के साथ यह भी कहते है कि-

अलापते हैं इसी राग को. ये जनता के
प्रतिनिधि है, भूखी, अपमानित, जड जनता के
ये खद्दरधारी प्रतिनिधि हैं, दीन हीन हैं
जरा और इन का घर भर दो, ...

(अनकहनी भी..., पृ० 37)

इन पंक्तियों मे स्वातंत्र्योत्तर जन-नियतियो की विडम्बना, पीड़ा की अभिव्यक्ति मर्मबेधी व्यंग्य के माध्यम से हुई है। राजनेताओ का आम जनता के प्रति अपनाये जाने वाले छल-छद्मो से खिन्न होकर उसे पागल के समकक्ष बताते हुए उसी पर और गहरी चोट करते है-'नेता पागल दोनों खाते हैं धर्मादा,/नेता घाघ है, मगर पागल सीधा सादा।' (अनकहनी भी.., पृ० 102) अन्ततः वे शोषक, जनपीड़क शासन व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए गरीबी, अंधविश्वास व भाग्यवाद के तले सोई जनता को ललकारते हैं–

'सड़ी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए

मै ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को,
जिस को नेता लूट रहे है, कह कर, ताको
मत, हम तो है ही. अत्यधिक विमोह के लिए
कौल क़रारो की बौछार किया करते हैं'

(अनकहनी भी ., पृ० 87)

इस शोषक व्यवस्था को बदलकर त्रिलोचन एक ऐसी नयी व्यवस्था चाहते है जिसमे- 'पेट की आग न दुख दे/ कहीं किसी को, शान्ति सभी की हो, शासन की/शान्ति, शान्ति की विडम्बना है और व्यवस्था/ कहीं अव्यवस्था भी है, जो सबको सुख दे/ वह आचरण और भाषा हो. सन्त्रासन की/रीति मिटे, अपनाव ही बने नई अवस्था।'

(तुम्हे सौंपता हूँ, पृ० 45)

त्रिलोचन ने देखा कि शोषको में पूँजीपतियों, राजनेताओ के साथ कुछ तथाकथित साहित्यकार भी हैं, जो पूँजीवादी, व्यक्तिवादी व्यवस्था के समर्थक-पोषक हैं। वास्तव मे छठे दशक के आरम्भ से हिन्दी की नयी काव्यधारा भारतीय बुर्जुआ वर्ग की अगतिशील मान्यताओ से जुड़ा और तथाकथित आधुनिकतावादी मूल्यो, साहित्य की स्वायत्तता व अनुभव की प्रामाणिकता के नाम पर व्यक्ति-मनुष्य को सामाजिक परिवेश से, उसकी सामाजिक जिम्मेदारियो से विच्छिन्न करने का जोरदार अभियान चलाया गया। रेडियो, सरकारी-अर्धसरकारी संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओ से प्रगतिशील लोगो को हटाकर नयी व्यक्तिवादी भावधारा के अवसरवादी लोगों की भरती की गई।[52] इस स्थिति को लक्ष्य कर मुक्तिबोध ने लिखा है- 'पूँजीवादी समाज के नाश की कल्पना को साम्यवादीबहककह कर मोटे सेठो से नाता जोडा गया। सरकार के अच्छे कामों की आलोचना करते हुए भी, पश्चिमी पूँजी से जुड़े भारतीय करोड़पतियों के दरबारों मे पहुँचने की दृश्यावली प्रस्तुत की गयी।'[53] त्रिलोचन ने सन् 1951 के अन्त मे ही ऐसे लोगो को लक्ष्य कर लिखा-

कवि खा खा कर तुम धनियों के फेंके टुकडे
गान वासना के गाते हो, तुम जीवन का
सत्य कहॉ से देख सकोगे. इनको टुकड़े
पर भी कोई कभी न पूछेगा. तुम मन का
महल बनाया करो और जैसे मन बहले

वैसे करतब किया करो .

(अनकहनी भी. ., पृ० 103)

'नयी कविता' गुट द्वारा प्रगतिशील भावधारा के साहित्याकारो को विभिन्न प्रलोभनो द्वारा फॉसने का संगठित प्रयास किया गया; बकौल त्रिलोचन–

प्रतिभा नहीं चाहिए, मेरे गुट मे आओ
इधर उधर मत भटको। देखो स्वय, ज़माना
बहुत बुरा है, बेकारी छाई है। जाना
सुना तथ्य है। जाओ वहॉ जहॉ सुख पाओ।
अपना है रेडियो, वहॉ बोलो या गाओ।
जगह जगह शाखाऍ हैं, अब नाम कमाना
और डुबाना अपनी इच्छा पर है। आना
चाहो आ जाओ, या चूको फिर पछताओ।

(फूल नाम है एक, पृ० 22)

लेकिन त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल जैसे जन-प्रतिबद्ध, प्रगतिशील कवियो पर इन प्रलोभनों का असर नहीं हुआ और न उन्हे कोई पछतावा रहा। त्रिलोचन ने आत्मविश्वासपूर्वक लिखा-

नही चाहिए, नहीं चाहिए मुझे सहारा,
मेरे हाथो मे पैरो मे इतना बल है,
स्वय खोज लूँगा किस किस डाली मे फल है,
उसे बॉट दूँगा जो नंगा, भूखा, हारा,
दुर्बल दिखलायी देगा। ... .

(उप०, पृ० 41)

'त्रिलोचन ने अपने समय की पहचान 'कबंध युग' के रूप मे की है, जहॉ सबका सिर पेट मे धॅसा है। इस पेट का प्रभुत्व–दर्शन, ज्ञान, कला, कौशल, विज्ञान सभी पर है। इस सच को त्रिलोचन ही नहीं, उनके वे सामान्य जन भी समझते हैं, जो ज़िन्दगी में हॅसते-खेलते और सुख-दु·ख सहते हुए अपने मन की बात कहने से नहीं चूकते–

झॅसा गया रामू तो उसने श्याम को झॅसा.
महाराज पेट के सभी मानुष चाकर है,
दर्शन, ज्ञान, कला, कौशल, विज्ञान उन्हीं की
टहल बजाया करते है ..

(उस जनपद., पृ० 103)

कुल साढे तीन पक्तियो मे आज के पूँजी-युग के यथार्थ को त्रिलोचन के भीतर का सामान्य जन बिना किसी साज-श्रृंगार और लाग-लपेट के रख देता है। सच्चाई को इतने खरेपन और दो-टूक रूप मे कहने का साहस उसी कवि और जन का हो सकता है, जो कहीं किसी तरह के स्वार्थभाव से आबद्ध नहीं है।[54] काफी बडी सख्या मे बेरोजगारो का होना विकासशील देशों की कडवी सच्चाई है। त्रिलोचन ने बेरोजगारो के प्रति सच्ची सहानुभूति व्यक्त करते हुए लिखा-'देखता हूॅ/बेरोजगारो को/ असहाय हाथ बगल में दबाये/ पॉव-पॉव चलते/और चुप चाप/कहीं पड जाते'। (तुम्हे सौंपता हूॅ, पृ० 57)

त्रिलोचन इस कड़वी सच्चाई को उघाडते है कि आज के 'फ्री वर्ल्ड' में सारा काम स्वार्थ के लिए, मुनाफा कमाने के लिए होता है और पैसा, जो विनिमय का माध्यम है, वह आदमी का मालिक बन गया है-'मानव की छाती पर चिपक गया है पैसा/जो अपना था वही पराया हुआ घड़ी पर।' (फूल नाम, पृ० 40) मार्क्स और एंगेल्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' मे लिखा है कि– 'पूँजीपति वर्ग ने...नग्न स्वार्थ के 'नकद पैसे कौडी' के हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यो के बीच और कोई दूसरा सबध बाकी नहीं रहने दिया' और 'मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को उसने विनिमय मूल्य बना दिया है...।' त्रिलोचन ने एक सॉनेट मे पूॅजीवादी समाज की उस भयावह स्थिति का वर्णन किया है, जिसमे पैसा ही मनुष्य का साधन और साध्य हो गया है और उसी के लिए विश्राम को, जो कि श्रमजीवी जनता के लिए आवश्यक और मानव-सुख का एक रूप है, हेय बताया जाता है। स्वभावत. इस पूॅजीवादी समाज में लोगों के लिए प्रकृति के सौन्दर्य का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पुष्प और लताएॅ उनके लिए वैसे ही महत्वहीन हो जाती हैं, जैसे आकाश के नक्षत्र।[55] उक्त सॉनेट की कुछ पंक्तियॉ हैं–

'जीवन में अर्जन का मतलब पैसा ही है,
पैसा ही जीवन के स्तर का मानदंड है,

इसीलिए आराम हराम कहा जाता है,
फूलो का बेलो का होना ऐसा ही है
जैसा शुक्र और मगल का नभोखंड है'

(शब्द, पृ० 41)

पूँजीवादी समाज की हृदयहीन आर्थिक स्वार्थो को लेकर एक समाज मे अथवा दो राष्ट्रो के बीच होड़ाहोडी मची रहती है। त्रिलोचन को ये सवाल परेशान करते है कि आखिर-

'कब तक जीवन मे समाज के होडाहोडी
चला करेगी, और राष्ट्र भी उसी बाट से
चला करेगे, रोज़ नए से नए ठाट से
छीनाझपटी कही करेगी तोडातोडी,
फिर अपने दल-बल के हित में जोडा जोड़ी'

(तुम्हे सौंपता हूँ, पृ० 45)

इस होड़ाहोडी की रीति को बदल कर वे नये विश्व की रचना की आकांक्षा करते है, जिसमे-'चाही मोड़ामोडी/कहीं दिखाई न दे, पेट की आग न दुख दे/ कहीं किसी को, शान्ति सभी की हो,.....सन्त्रासन की रीति मिटे, अपनाव ही बने नई अवस्था।' (तुम्हें सौपता हूँ, पृ० 45) मीरा भान को दिए गए एक साक्षात्कार मे त्रिलोचन ने बताया कि- 'अपनी कविताओ मे मैं जीवन को, अपनी समझ को अनेक स्तरों पर जैसा पाता हूँ, वैसा ही रख देता हूँ। मेरी कविताओ में आपको आवेश नहीं, शान्त व्यंजना मिलेगी क्योंकि वे तात्कालिक नहीं होती। मेरी कविताएँ स्वत.स्फूर्त नहीं होतीं क्योकि मेरा विश्वास 'रिकलेक्श:न' मे है।'[56] इस सन्दर्भ मे डॉ० मैनेजर पाण्डेय का यह कहना अत्यन्त सार्थक है कि- "त्रिलोचन घटनाओ के कवि नहीं हैं। वे मूल्यो के कवि हैं। उनकी कविता में सामाजिक-राजनीतिक घटनाओ का चित्रण-वर्णन बहुत कम है, मानव जीवन की दशाओं और अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक है। वे मानवीय अनुभवों और जीवन-दशाओं की अभिव्यक्ति करते हुए संघर्ष, आस्था, जिजीविषा, प्रेम, न्याय और स्वतंत्रता जैसे जीवन-मूल्यों की व्यंजना करते हैं। इन जीवन-मूल्यों के बारे में वे कविता में वक्तव्य भी देते हैं, लेकिन कविता वही होती है जहॉ मूल्य या तो जीवन के अनुभवों के बीच व्यक्त होते हैं या वक्तव्य के पीछे मन्तव्य में रहते हैं।"[57]

वस्तुत. संघर्षमय जीवन मे पाये गये मूल्य, कवि के आत्मविश्वास को और समाजिक-स्वातंत्र्य लक्ष्य के प्रति उसकी ईमानदारी को ठोस जमीन प्रदान करते है। सामाजिक लक्ष्य के प्रति उसकी ईमानदारी और दृढ़ता अवध के किसानी सस्कार के कारण है। ऐसा किसानी संस्कार जो विपरीत परिस्थितियों के बीच हताशा को परे ठेलकर कर्म करते जाने की अदम्य इच्छा और कूबत रखता है। आशा और विश्वास इस कवि की पूँजी है, जो उसे लोक-मन से मिली है और लोक-मन ही उसकी काव्य-सवेदना का प्रेरणास्रोत भी है। कविता उनके लिए जन जीवन के अनेक स्पन्दनो और आशा-आकाक्षाओं को व्यक्त करने वाली वस्तु है। वे उसमे ऐसे भाव सॅजोना चाहते है, जो केवल उनके नहीं, जन–जन के हैं और उन्नायक हैं। मनुष्य-मनुष्य के बीच वे समता और ममता के हामी है। इसी प्रकार कला-पक्ष मे वे ऐसी भाषा और कथन-शैली का प्रयोग करना चाहते है जो बोलचाल की भाषा के समीप और सहज बोधगम्य है।

संदर्भः

1. 'मानविकी परिभाषा कोश' (साहित्य खण्ड) डॉ० नगेन्द्र, पृ० 232
2. सर्जना और सौन्दर्य · अज्ञेय (प्रथम सस्क० 1985), पृ० 95
3. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र मुक्तिबोध, पृ० 10
4. त्रिलोचन से कवि विजेन्द्र की बातचीत, सापेक्ष- 38, 1996, पृ० 485
5. सधान- 6, 1983, पृ० 28 (संपा० जीवन प्रकाश जोशी)
6. धरती त्रिलोचन, पृ० 11 (सस्करण -1977)
7. त्रिलोचन के बारे मे . संपा० गोबिन्द प्रसाद, पृ० 30 (प्रथम संस्क० 1994)
8. शब्द जहॉ सक्रिय हैं (आलो.) · नन्दकिशोर नवल, पृ० 50
9. दिगंत . त्रिलोचन, पृ० 57 (द्वितीय सस्क० 1996)
10. प्रेमलता वर्मा के नाम त्रिलोचन का पत्र (दि० 5.1.63), सापेक्ष-38, 1996, पृ० 317
11. त्रिलोचन से मंगलेश डबराल की बातचीत, संकलित-'त्रिलोचन के बारे में', पृ० 246
12. ताप के ताए हुए दिन . त्रिलोचन, पृ० 14 (द्वितीय संस्क० 1996)
13. शब्द त्रिलोचन (प्रथम सस्क० 1980), पृ० 17
14. उस जनपद का कवि हूॅ · त्रिलोचन (प्रथम संस्क० 1981), पृ० 85
15. अरघान : त्रिलोचन (द्वितीय संस्क० 1998), पृ० 54
16. अनकहनी भी कुछ कहनी है त्रिलोचन (प्रथम सस्क० 1985), पृ० 76
17. रोज़नामचा . 1950 ई० : त्रिलोचन (प्रथम संस्क० 1992), पृ० 16
18. राग-विराग . निराला (सपा. रामविलास शर्मा, संस्क० 1997), पृ० 63
19. त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 39
20 त्रिलोचन से केदारनाथ सिह की बातचीत, आलोचना-82, 1987, पृ० 8
21. 'त्रिलोचन का जनपद एक नक्शा'-अरूण कमल, आलो०-अक्टूबर-दिसम्बर 1987, पृ०33
22. विष्णुचन्द शर्मा, सापेक्ष -38, 1996 पृ० 136
23. नामवर सिंह का कथन, 'त्रिलोचन के बारे मे'- सपा० गोबिन्द प्रसाद, पृ० 82
24. बंगाल का अकाल 1943 में पडा, जिसमे 35 लाख से अधिक लोग मरे थे। यह भयानक अकाल इसलिए हुआ कि अनाज का उत्पादन कम हुआ और बाजार से ही मुनाफाखोरों ने महॅगे दामो पर अनाज खरीद कर गोदामो में भर लिया। अत.

अनाज की कीमते आसमान छूने लगीं।

25 फूल नाम है एक : त्रिलोचन (प्रथम सस्क०-1985) पृ० 40

26. 'नगई महरा' कविता 'आलोचना' (सपा. नामवर सिह) के जन० मार्च 1973 के अक मे प्रकाशित हुई थी और नीचे टीप दिया गया था-'चार खण्डो मे समाप्य एक लम्बी कविता का प्रथम खड।' त्रिलोचन जी ने मुझसे बातचीत मे कहा था कि 'इस लंबी कविता के आगे के हिस्सो का कच्चे रूप मे लिखा गया प्लाट कहीं खो गया।' लेकिन यह एक सम्पूर्ण खण्ड है। किन्तु कविता असमाप्त है। बाद मे यह कविता 'ताप के ताए हुए दिन' (1980) सग्रह मे सकलित हुई।

27. साक्षात् त्रिलोचन : संपा०-कमलाकात द्विवेदी व दिविक रमेश, (प्रथम सस्क० 1990) पृ० 155

28. तुम्हे सौपता हूँ त्रिलोचन (प्रथम सस्क०-1985), पृ० 20

29. श्याम कश्यप, आलोचना-अक्टू० दिस० '85, पृ० 80

30. कविता के नये प्रतिमान . नामवर सिंह (पेपरबैक सस्करण 1997) पृ० 127

31. जो शिलाएँ तोड़ते हैं . केदारनाथ अग्रवाल, पृ० 77

32 डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र, 'वर्तमान साहित्य'-अगस्त-92, पृ० 44

33. त्रिलोचन से अजीत प्रियदर्शी की बातचीत, 'हिन्दुस्तानी'-जन०-मार्च-2001, पृ० 80

34. डा० भगवान सिह का कथन, त्रिलोचन के बारे में संपा० गोबिन्द प्रसाद, पृ० 130

35. अमोला . त्रिलोचन (प्रथम संस्करण-1990) पृ० 109

36. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र मुक्तिबोध, पृ० 74

37. 'त्रिलोचन के बारे मे' ,पृ० 149

38. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि . रामविलास शर्मा, (प्रथम संस्करण 1990) पृ० 65-66

39. 'त्रिलोचन के बारे मे' ,पृ० 150

40. वही, पृ० 153

41. वही, पृ० 133, डॉ० भगवान सिंह का कथन

42. चैती : त्रिलोचन (प्रथम संस्क० 1987) पृ० 21

43. 'त्रिलोचन के बारे मे' ,पृ० 85

44. अरूण कमल-'त्रिलोचन का जनपद एक नक्शा', आलो०।83, अक्टू०-दिस० 1987, पृ० 34
45. वर्तमान साहित्य. अंक-12, 1992, पृ० 39
46. सुधीश पचौरी, सापेक्ष-38, 1996, पृ० 160
47. वही, पृ० 166
48. 'देशकाल' (कहानी संग्रह) त्रिलोचन (द्वितीय सस्क०- 1989), पृ० 102
49. सापेक्ष, अक-38, 1996, पृ० 323
50. त्रिलोचन से केदारनाथ सिह की बातचीत, आलोचना 82, 1987, पृ० 12
51. श्याम कश्यप, आलोचना-अक्टू०-दिस० 85, पृ० 79
52. हिन्दी की प्रगतिशील कविता · डॉ० लल्लन राय (प्रथम संस्क० 1989), पृ० 74
53. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबध मुक्तिबोध (द्वितीय संस्क०-1977) पृ० 38
54. सापेक्ष-38, 1996, पृ० 182
55. शब्द जहॉ सक्रिय है (आलो०) . डॉ० नन्दकिशोर नवल, पृ० 54
56. अभिन्न (संस्मरण) · विष्णुचन्द शर्मा (प्रथम संस्क० 1996), पृ० 113
57. 'त्रिलोचन के बारे मे' ,पृ० 157-58

हिन्दी कविता की जातीय चेतना और त्रिलोचन की कविता

हिन्दी कविता व त्रिलोचन की कविता की जातीय चेतना के सबंध मे विचार करने से पूर्व, जाति, जातीय भाषा, हिन्दी जाति और जातीय चेतना के सबध मे विचार कर लेना समीचीन होगा।

'जाति' शब्द के अनेक अर्थ किए जाते है किन्तु 'वास्तव मे जाति के दो ही मूल अर्थ है। एक का संबंध जन्म से है और दूसरे का संबध प्रदेश मे रहने वाले बडे मानव-समुदाय से है। जाति-बिरादरी वाली जाति का संबंध जन्म से है, इसलिए वह उसी जन्म वाले अर्थ के अन्तर्गत आती है। पशु जाति, मानव जाति आदि का सबध भी जन्म से है लेकिन जो लोग किसी देश या प्रान्त की प्राकृतिक या सांस्कृतिक विशेषताओ से जुडे हुए हैं, वे इस जन्म वाली विशेषता का अतिक्रमण कर जाते हैं। वहॉ जाति जन्म वाले अर्थ से ठीक उलटा अर्थ देती है।'[1] 'जाति' के अर्थ मे अग्रेजी में दो शब्द व्यवहृत होते हैं-'रेस' (Race) और 'नेशन' (Nation)। '1934 मे प्रकाशित 'द कॉन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ करेंट इगलिश'मे नेशन का अर्थ दिया हुआ है- Distinct race or people having common descent, language, history or political institutions'[2] और 'रेस' का अर्थ- Group of persons or animals or plants connected by common descent मनुष्यो, पशुओ, वनस्पतियों का ऐसा समुदाय जो सामान्य उद्भव के कारण आपस मे सम्बद्ध हो। रेस और नेशन, इस दोनों शब्दो मे सामान्य उद्भव वाला भाव बना हुआ है। इसलिए रेस और नेशन, इन दोनो शब्दों से अधिक प्राचीन 'जाति' शब्द मे जन्म वाला भाव बना हुआ है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मार्के की बात यह है कि संदर्भ के अनुसार जब हम जाति का अर्थ प्रदेशगत मानव- समुदाय करते है, तब वहॉ जन्म वाली बात का निषेध हो जाता है।[3]

सामान्य प्रदेश, सामान्य आर्थिक सबंध, सामान्य भाषा, सामान्य सास्कृतिक-ऐतिहासिक परंपराओं से जुडे बड़े मानव-समुदाय को 'जाति' नाम दिया जाता है। यथा-'भारत मे बंगाली, पंजाबी, मराठी आदि अनेक जातियॉ हैं। जातियॉ प्रदेशगत होती हैं, उनका पेशे और बिरादरियों से संबंध नहीं होता।'[4] लेकिन 'राष्ट्र और जाति परस्पर विरोधी नहीं हैं। राष्ट्र की सज्ञा अधिक व्यापक है। भारतीय संदर्भ में प्रादेशिक जातियॉ राष्ट्र की अतर्वस्तु हैं। इनके बिना राष्ट्र की संज्ञा खोखली है। इसी तरह वर्ग— पूँजीपति, मजदूर आदि— जाति

की अतर्वस्तु है। विभिन्न जातियों के समानधर्मा वर्ग आपस मे जुड़कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ करते हैं।'[5]

हॉब्सबॉम के अनुसार "जाति की अपनी निवासभूमि होती है लेकिन जाति के टुकड़े इस निवासभूमि से अलग हो जाते है, तब भी वे अपनी जातीयता याद रखते हैं। राजनीतिक रूप से विभाजित होने पर जातीयता टूट नहीं जाती, जैसे पूर्वी बगाल और पश्चिमी बंगाल के लोग राजनीतिक रूप से अलग-अलग हैं किन्तु भाषा और संस्कृति के विचार से वे एक ही जाति के दो भाग हैं। आस्ट्रेलिया और जर्मनी में एक ही भाषा बोलने वाले लोग रहते है किन्तु उनकी सास्कृतिक, ऐतिहासिक परपराएँ अलग-अलग है। इसलिए वे दो अलग राज्यों मे रहते हैं और अपनी जातीयता की अलग पहचान बनाए हुए है। जातीय प्रदेश अटूट भू-खण्ड हो, यह आवश्यक नहीं।"[6]

जाति का निर्माण एक प्रगतिशील प्रक्रिया है, इसलिए कि सामती व्यवस्था के विरोध में वह पूँजीवादी विकास-प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। डॉ0 रामविलास शर्मा का मत है कि "जातीय एकता सामंती अलगाव को दूर करके ही कायम होती है, इसलिए वह सामंतविरोधी प्रक्रिया है। साम्राज्यवाद अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए सामती शक्तियो से सहयोग करता है, वह किसी भी जाति की आन्तरिक एकता को अपने लिए खतरनाक समझता है। इस कारण किसी भी जाति के एकताबद्ध होने की प्रक्रिया साम्राज्य विरोधी प्रक्रिया भी होती है। राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है कि राष्ट्र की प्रत्येक जाति स्वय भी एकताबद्ध हो। भारतीय इतिहास की एक विशेषता यह है कि जिस समय जातीय एकता की यह प्रक्रिया आगे बढ रही थी, उस समय अग्रेजो ने सामंतो के साथ मिलकर इसे पीछे ठेल दिया।"[7]

सामंती व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारिक पूँजीवाद के विकास, व्यापार-संबंधो व आर्थिक संबधों के कायम होने के कारण जनपदों के मिलने से जातीय क्षेत्र का निर्माण होता है। व्यापार का प्रसार होने पर अन्तर्जनपदीय मेलजोल के कारण बने जातीय क्षेत्र मे अन्तर्जनपदीय व्यवहार की भाषा के रूप मे जातीय भाषा का विकास होता है और इसमें मुख्य भूमिका व्यापारियों की होती है। 'अक्सर सौदागर पुरानी क्लासिकल भाषाएँ जानते ही नहीं। आपस में वे किसी लोकभाषा का व्यवहार करते हैं। अनेक जनपदों की भाषाओ मे कोई एक भाषा उभर कर सामने आती है। अन्य जनपदों के तत्त्व समेटते हुए वह जातीय भाषा

का रूप लेती है। जातीय भाषा के प्रसार से मडीतत्र का गहरा सबध है। विनिमय के जो नये केन्द्र कायम होते है, वे आपस मे जुडे होते है। इन्हे जोडने वाली भाषा ही आगे चलकर जातीय भाषा बनती है। सामन्य विनिमय की आवश्कता के कारण स्थानीय भेद छोड़कर एक मानक भाषा के विकास की आवश्यकता पैदा होती है। जो मंडीतत्र के केन्द्र होते है, अक्सर वहीं की भाषा मानक भाषा का रूप लेती है।'[8] इसी प्रक्रिया से हिन्दी भाषी प्रदेश में तुर्कों और मुगलो के काल मे राज्यसत्ता और मंडीतत्र के केन्द्र दिल्ली के आसपास (प्राचीन कुरू जनपद) की कौरवी या बॉगरू भाषा (या खडी बोली) अपने अन्तर्जनपदीय व्यवहार के फलस्वरूप विभिन्न जनपदो के भाषा तत्त्वो को ग्रहण करते हुए और स्थानीय भेदो को छोड़ते हुए जातीय भाषा और मानक भाषा के रूप मे विकसित हुई। मिथिला, अवध, मालवा, ब्रज आदि जनपद आज हिन्दी प्रदेश के अन्तर्गत है। इनकी सामान्य अन्तर्जनपदीय भाषा हिन्दी है, उसे हम इनकी जातीय भाषा कहते हैं।

हिन्दी जाति का निर्माण मिथिला, अवध, मालवा, ब्रज, बुंदेलखण्ड, भोजपुर आदि जनपद के निवासियों से मिलकर हुआ है। इन जनपदों की 'जनपदीय भाषाएँ, उनमे रचा हुआ साहित्य, विभिन्न जनपदों की लोक-संस्कृति हमारे जातीय विकास मे बाधक नहीं हैं, इसके विपरीत वे इस विकास को नयी शक्ति देने वाला बहुत बड़ा स्रोत हैं। जाति का निर्माण जनपदीय तत्त्वो से होता है, जातीय भाषाओ मे जनपदीय भाषाओ अथवा उपभाषाओ के तत्त्व निरंतर शमिल होते है, जातीय सस्कृति का आधार विभिन्न जनपदो की लोक संस्कृति है। जातीय भाषा और जनपदीय उपभाषा एक-दूसरे की पूरक है, विरोधी नहीं है।'[9] यहॉ यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि हिन्दी जाति हिन्दू जाति नहीं है। हिन्दी जाति मे हिन्दू और मुसलमान दोनो हैं। इसी तरह हिन्दी की बोलियो और उर्दू को स्वतंत्र जाति मामना गलत है। ये सभी हिन्दी जाति के अन्तर्गत है और इन सभी के शब्दो का प्रयोग जातीय भाषा हिन्दी में– बोलचाल व साहित्य मे–बराबर होता रहता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द, बालकृष्ण भट्ट , प्रेमचन्द, निराला आदि लेखक हिन्दी-उर्दू को सदैव एक ही भाषा के दो रूप मानते रहे।

ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली आदि सभी ने हिन्दुस्तानी जाति के निर्माण में मदद की। हमारी जाति का चरित्र संघर्षों द्वारा और पक्का हुआ। इन संघर्षों के दो पहलू थे, एक तो जातीय, दूसरा जनवादी। यानी एक तरफ तो यहॉ के लोग विदेशी आततायियों के खिलाफ लड़े, दूसरी तरफ वे सामंती उत्पीडन के खिलाफ,वर्णव्यवस्था और पुरोहितों-सामंतों

के विशेष अधिकारों के खिलाफ भी लडे। भक्ति-आदोलन में ये दोनो पहलू मौजूद हैं। जुलाहे और किसान इस आदोलन को शक्ति देने वाले हैं। सौदागर उसके सहायक हैं, हिन्दू और मुसलमान, सूफी और सन्त दोनो उसमे शामिल हैं। भक्ति आंदोलन एक जातीय और जनवादी आदोलन है।[10]

जातीय चेतना के अनेक अश होते हैं। उनमे एक अश है–भाषा-प्रेम और दूसरा है-इतिहासबोध। यह दोनो अश बहुत ही महत्वपूर्ण है।[11]जैसा कि डॉ0 रामविलास शर्मा कहते हैं: "जातीय चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम प्रादेशिक भाषा होती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुब्रह्मण्य भारती, निराला के साहित्य मे बॉग्ला, तमिल और हिन्दी के प्रति उत्कट प्रेम देखा जा सकता है। ये भाषाऍ ही उनके राष्ट्रवाद और मानवतावाद की अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। जातीय चेतना वह उत्स है जिससे देश-प्रेम व मानव -प्रेम की धाराऍ फूटती हैं। बंग-भग के विरोध ने जातीय चेतना को, उसके साथ राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध किया। जातीय चेतना केवल भाषागत, प्रदेश गत चेतना नहीं है। उसमें साम्राज्य-विरोध, सामंती-रूढियों का विरोध तथा समाज को पुनर्गठित करने की धाराणाऍ मौजूद हैं।" [12] जहॉ जातीय भाषा, विशेष भाषा-भाषी क्षेत्र की सपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, अनुभूति और अभिव्यक्ति का माध्यम होती है, वहॉ वही भाषा उस क्षेत्र को समग्र राष्ट्रीय मुख्यधारा से भी सम्बद्ध करके राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध बनाती है।

जातीय चेतना का तकाज़ा है कि उस जाति के लोगो को अपने जातीय प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास का बोध हो और उनके सामने अपना जातीय प्रदेश-एक सामाजिक, ऐतिहासिक इकाई के रूप मे विद्यमान हो। साथ ही उस जातीय प्रदेश के लोग अपने जातीय चरित्र की उन्नति के लिए ऐसे महापुरूषो को अपनी जातीय स्मृति में महत्वपूर्ण स्थान दे, जिन्होने उस जाति के लोगो को अंधविश्वास, थोथे कर्मकाण्ड, मानव-मानव मे भेद डालने वाली-सम्प्रदायवाद, जातिवाद जैसी तुच्छताओ व राजतंत्र, साम्राज्य-तत्र तथा सामंती शोषण के विरूद्ध आवाज उठाकर मानव-मानव में प्रेम और साम्य-भाव का संदेश दिया हो। लोग जान-बूझकर जातीय चेतना का प्रसार करना चाहते हैं और जातीय चेतना को सुगठित करके, उसके स्तर को ऊँचा उठाकर वे जातीय निर्माण में सहयोग करते हैं। यह भी सच है कि जातीय चेतना का अभ्युदय पहले शिक्षित जनों में होता है। शिक्षा का प्रसार धीरे-धीरे होता है, इसलिए किसान-मजदूर इस जातीय चेतना को ग्रहण करने में सबसे पीछे आते दिखाई देते हैं।

इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'जातीयता की भावना अमृत है और विष भी। 1905 मे अग्रेजो ने बंगाल का विभाजन किया। बगालियो ने इसका विरोध किया, अंग्रेजी की जगह बॉग्ला बोलने और लिखने पर जोर दिया, स्वदेशी आदोलन चलाकर सारे देश को नयी प्रेरणा दी इस प्रबुद्ध जातीय चेतना ने बॉग्ला साहित्य के विकास में बडी सहायता की । साथ ही यह चेतना कभी-कभी सकीर्ण प्रान्तीयता का रूप लेकर दूसरो की भाषा और साहित्य पर अनुचित आक्षेप करने की प्रेरणा भी देती थी। जातीयता के ये दोनो रूप बंगाल तक ही सीमित नहीं थे, वे अन्य प्रदेशों मे भी साफ दिखाई देते थे। विशेष रूप से 1947 के बाद जातीय अहंकार की भावना बहुत बढी है।[13]

चूँकि भक्ति आंदोलन एक जातीय और जनवादी आदोलन था अत हिन्दी कविता की जातीय चेतना अनिवार्यत· भक्तिकाव्य की सामतविरोधी, जनवादी और मानवतावादी चेतना से जुड़ जाती है। इस तरह हिन्दी कविता की जातीय परपरा कबीर, तुलसी, जायसी आदि से शुरू होती है। त्रिलोचन भक्तिकालीन हिन्दी कविता की, हिन्दी जाति की सघर्षशील चेतना से जुड़ते हैं; कबीर और तुलसी की संघर्षशील जातीय परपरा से जुडते है। इसलिए त्रिलोचन की कविता हिन्दी की उस जातीय परपरा का सहज विकास है। वे स्वय हिन्दी कविता की संघर्षशील जातीय परपरा का उल्लेख करते हुए कहते है-

> हिंदी की कविता, उनकी कविता है जिनकी
> सॉसों को आराम नहीं था, और जिन्होने
> सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने
> मे समाज के,... ... ...
> भाव उन्हीं का सब का है जो थे अभावमय,
> पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय।[14]

हिन्दी की गैरदरबारी कवियो की परंपरा हिन्दी जाति के सांस्कृतिक विकास में सहायक होती है, हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना को पुष्ट करती है। अतः उनकी कविता में हिन्दी जाति की जातीय परंपरा को अभिव्यक्ति मिलती है। वास्तव मे, दरबारो से बाहर रहने वाले भक्त कवियों और उनसे अलग रहीम जैसे कवियों की धारा— दोनो को मिलाकर हम उसे 'लोकजागरण की धारा' कह सकते हैं। 'भारतेन्दु युग में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण

भट्ट जैसे लोगों ने, आगे चलकर प्रेमचन्द और निराला जैसे लेखको ने साहित्य की सामंतविरोधी धारा को आगे बढाया। साहित्य की जातीय परपरा के निर्माता इन लेखकों का साहित्य ही नहीं, उनका जीवन-सघर्ष भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है, यह हम त्रिलोचन की कविता मे देखते है।'[15] त्रिलोचन ने सघर्ष को ही अपनी जीवन-यात्रा का अभिन्न अंग माना है और संघर्षशील चेतना ही उनकी सृजनात्मक ऊर्जा का अक्षय-स्रोत है। सघर्ष मे ही जीवन तपता है और सर्जना भी परिपक्व होती है। बिना संघर्ष के तो जीवन का कोई अर्थ ही नहीं है, न ही उस रचना का कोई महत्व है जिसमे जीवन-संघर्ष की झलक ही न हो। कबीर, तुलसी, निराला की तरह त्रिलोचन का अपना सघर्ष भी उनके काव्य मे प्रतिफलित हुआ है। कविता का संस्कार भी उन्हे कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि की कविताओं को सुनकर मिला, जैसा कि वे स्वीकार करते है-'दादी मीरा, सूर, तुलसी, कबीर आदि की कविताएँ गाती थीं। वहीं से मुझे स्वर मिले। ...मेरे पिता श्री जगरदेव सिंह को रामचरितमानस, विनयपत्रिका याद थे। वहीं से संस्कार पाया।'[16]

कबीर, तुलसी, जायसी, गालिब, निराला आदि की जातीय परपरा का ही विकास है त्रिलोचन की कविताएँ। इन कवियो पर कविताएँ लिखकर त्रिलोचन ने अपनी परपरा को रेखांकित किया है। परपरा की इस जातीय चेतना ने त्रिलोचन की सजग चेतना का संस्कार किया है। लेकिन परपरा से लगाव त्रिलोचन को परपरावादी नहीं बनाता अपितु समूचे व्यक्तित्व में उदात्त चेतना समाहित करने के साथ आत्मपरक पृथकत्व को बनाए रखता है। यह पृथकत्व ही कवि का अपना विकास है और इसी के सहारे त्रिलोचन युग-जीवन से अहर्निश जुड़े रहते हैं।

'भक्तिकाल की कविता मे सामाजिक चेतना और युगबोध का एक स्तर ऐसा है जहाँ संवेदनशील कवि की चेतना सामाजिक विषमता, पाखण्ड, धार्मिक रूढ़िवाद और जनता की पीडित चेतना के बोध से बेचैन दिखाई देती है। कबीर की सामाजिक चेतना में उस युग का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ है और उनकी विद्रोह भावना मे सामाजिक वेदना से मुक्ति की कामना प्रकट हुई है।'[17] वास्तव में कबीर ने अपने समय के सभी धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक अभिजात्यवादी ढोंग और शोषण, जो अंततः दीन जनो पर कड़े प्रहारक सिद्ध होते थे, के खिलाफ खुला विद्रोह किया। उनके समय में एक ओर सामंतगण, पंडे-मुल्ला अपने स्वार्थ के लिए लड़ रहे थे तो दूसरी ओर कबीर दीन जन के लिए संघर्षरत थे। उनके शूर का आदर्श था-

सूरा सो पहिचानियै जो लरै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहुँ न छाँड़े खेत।।

दीन जनो के पक्षधर कबीर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व ने त्रिलोचन को बहुत प्रभावित किया। उन्होने 'काशी का जुलहा' कविता मे कबीर का समग्र मूल्याकन करते हुए लिखा-

ब्राह्मण को तुकारने वाला वह काशी का
जुलहा जो अपने घर नित्य सूत तनता था,
लोगो की नगई ढॉकता था, आशी का
उन्मूलन करता था जिस का विष बनता था
जाति वर्ण का अहकार. क़ब्रें खनता था
मुल्लो मौलवियो की झूठी शान के लिए,
रूढि और भेडियाधसान को वह हनता था
शब्द-बाण से, जीता था बस ज्ञान के लिए,
गिरे हुओ को खडा कर गया मान के लिए.

(दिगंत, पृ0 56)

कबीर वर्ण-विशेष के नही, वर्ग-विशेष के विरोधी थे और यह वर्ग सामतो, पुराहितो, मुल्ला-मौलवियो का था, जिनसे आम जनता त्रस्त थी। कबीर, रैदास आदि का संत साहित्य अनेक जनपदो की जनता का साहित्य बना और उसमे सामंत-विरोधी जातीय चेतना प्रकट हुई है।

कबीर के समान ही तुलसीदास अत्यत सजग और मानवीय कवि हैं। वे हिन्दी जाति के जातीय कवि है। कबीर के समान तुलसी ने भी युग-जीवन की 'ऑखिन देखी' और स्वयं भोगी हुई सच्चाई का बयान करते हुए समाज में फैले वैषम्य, दैन्य, अभाव आदि का कारूणिक दृश्य उपस्थित किया। 'नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं' और 'आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की' लिखने के पीछे उनका भोगा हुआ यथार्थ था- 'बारे ते ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन, जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।' (कवितावली) उनकी जाति-पाँति की चर्चा छेड़कर अपमानित करने वाले जातिवादियों से चुनौती के स्वर में उन्होंने कहा-

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ,
काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।[18]

तुलसी ने अकाल- वर्णन और कलियुग-वर्णन मे लोक जीवन की त्रासद स्थितियो का मार्मिक बयान किया है। सहभोक्ता के स्तर पर लोक जीवन से जुडे होने के कारण समस्त 'लोक' की व्यथा-कथा उनकी अपनी हो जाती थी। उन्होंने दीनदयालु राम से प्रार्थना की थी कि दरिद्रता के रावण ने ससार को दबा रखा है, आकर रक्षा करो-'दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु, दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी।' (कवितावली) जिस राजा के राज्य की जनता दुःखी और त्रस्त हो, ऐसे अन्यायी राजा को शाप देते हुए तुलसी कहते है-

राजा करत बिनुकाज ही, करै कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकध ज्यों, जइहै सहित समाज।।[19]

दीन-दुःखी जनता से एकात्मभाव के कारण ही तुलसी का आदर्श था कि काव्य वही है जिसमें लोकोपकार का भाव हो-'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहॅ हित होई।।' (मानस), जनता की त्रासद स्थितियो से एकात्मभाव के कारण ही तुलसी अपने राम के मुख से धर्म-अधर्म की यह व्याख्या करते है-'परहित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।' तुलसी के राम को 'केवल प्रेम पियारा' है और वे कोल-किरात, केवट, निषाद जैसी नीची जातियो के लोगो से मित्रता करते और उन्हे भ्रातृवत स्नेह देते हैं। तुलसी के भक्तिमार्ग मे इसी प्रेम-भावना के बल पर वर्ण, जाति, धर्म आदि भेदोपभेद उपेक्षित हो जाते हैं।

लोकचित्त के कुशल पारखी और लोक कल्याण के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित होने के कारण तुलसीदास लोकचेतना के साथ पूर्णतया तदाकार हो गये थे। यही कारण है कि लोक-मन उन्हें अपने बहुत समीप पाता रहा है। लोक जीवन और लोकमानस से घनिष्ठ जुड़ाव, जनपदीय भाषा और लोकतत्त्व की जीवन्त उपस्थिति जैसे तुलसी के गुणों ने त्रिलोचन को शुरू से ही बहुत प्रभावित किया। बचपन मे ही पिता द्वारा रामचरितमानस और विनयपत्रिका सुन-सुनकर उन्हे काव्य का संस्कार मिला। धीरे-धीरे वे तुलसी से गहराई के साथ जुड़ते गये और आगे चलकर उन्होने तुलसी को अपना काव्य-गुरू माना। उनका कहना है कि- "तुलसी अपनी स्वाभाविकता के कारण मेरे काव्य-गुरू हैं। गुरू को मॉ के समान होना चाहिए; और तुलसी को जैसे-जैसे मैं पढ़ने लगा, उन्होंने मुझे ॲगुली पकड़कर चलना सिखाया। ...तुलसी से मैंने जीने की कला भी सीखी है।"[20] तुलसी के यहॉ लोक में प्रचलित शब्द, पद और मुहावरे, जनपदीय भाषा और लोकतत्त्व की जीवन्त

उपस्थिति के कारण त्रिलोचन बहुत प्रभावित हुए और उन्होने लिखा-'तुलसी बाबा, भाषा मैने तुम से सीखी,/ मेरी सजग चेतना मे तुम रमे हुए हो,' (दिगत, पृ० 60) त्रिलोचन सहज ही स्वीकार करते हैं कि- "मेरी काव्यभाषा और काव्य चेतना के प्रेरक तुलसीदास रहे; साथ ही काव्य सृजन-प्रक्रिया, वाक्य- निर्माण और सवाद-गहन मे भी उनका प्रभाव रहा है।" [21] त्रिलोचन के छन्द-गठन पर भी तुलसी का प्रभाव है। हिन्दी के अपने जातीय छन्द 'रोला' में निबद्ध त्रिलोचन के सॉनेटो के आन्तरिक और बाह्य अनुशासन पर भी तुलसी का प्रभाव है।

सच तो यह है कि 'त्रिलोचन की सजग चेतना में तुलसी बाबा की भाषा के साथ उनके भाव भी रमे हुए है- 'गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न' के न्याय से। जो भाव रमे हुए है, उनका उदात्त रूप यह है. 'भक्त हुए, उठ गए राम से भी, यो ऊपर।' (दिगत, पृ० 60) तुलसीदास के मानवतावाद का यही रूप है; जो मनुष्य दूसरों के लिए जीता है, वह राम से भी ऊपर उठ जाता है। 'राम ते अधिक राम कर दासा' - वह स्वयं लिख गये थे।'[22] एक 'अवधी सॉनेट' मे तुलसी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए त्रिलोचन ने लिखा है-

कहेन किहेन जेस तुलसी तेस केसे अब होये।
× × ×
तुलसी अपुनॉ उबरेन औ आन कॅ उबारेन।
जने-जने कइ नारी अपने हाथे टोयेन,
सबकई एक दवाई रामनाम मॅ राखेन,
काम क्रोध पन कई तमाम खटराग नेवारेन;
जवन जहॉ कालिमा रही ओकॉ खुब धोयेन।
कुलि आगे उतिरान जहॉ तेतना ओइ भाखेन।[23]

त्रिलोचन, तुलसी का काव्य-गुरू के रूप में सम्मान करते हैं लेकिन वे तुलसीग्रस्त नहीं हैं। तुलसी में मौजूद भारतीय संस्कृति की रचनाशीलता, समन्वयशीलता और उनकी लोकचेतना व जातीय विरासत को स्वीकार करते हैं। लेकिन युगीन-चेतना व युग-संदर्भो के बदल जाने के कारण ऑख-मूँदकर तुलसी को नहीं अपनाते। इस सदर्भ में उनका कहना है कि- "तुलसी के अपने समय के विश्वास उनकी रचनाओं मे हैं ही। अब आज पुस्तक के उन विश्वासों को छोड़ दें जो उस समय की हैं, अभी के अनुकूल पडने वाली

बातों को ले लें। आज के लिए जो प्रतिकूल है, उन विचारो को मानने की कोई जरूरत नहीं।"[24] अपने एक सॉनेट में भी त्रिलोचन का कहना है कि-

तुलसी और त्रिलोचन मे अतर जो झलके
वे कालातर के कारण है. देश वही है,
लेकिन तुलसी ने जब जब जो बात कही है,
उसे समझना होगा सदर्भो मे कल के.
वह कल, कब का बीत चुका है- ऑखें मल के[25]

त्रिलोचन जनपद के कवि है और वे यह जानते है कि जाति का निर्माण जनपदीय तत्त्वों से होता है। तुलसीदास के समान त्रिलोचन के कवि-व्यक्तित्व मे अवध जनपद-भाषा, संस्कार, जनता के दु ख-दैन्य, हर्ष-उल्लास, आकांक्षाओ-आदि के साथ समग्रता से उपस्थित होता है। त्रिलोचन का कहना है कि-

उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नही जानता
... .अब समाज मे
वे विचार रह गए नहीं हैं जिन को ढोता
चला जा रहा है वह, अपने ऑसू बोता
विफल मनोरथ होने पर अथवा अकाज मे.
धरम कमाता है वह तुलसीकृत रामायण
सुन पढ कर, जपता है नारायण नारायण.[26]

यह अवध जनपद का ही नहीं बल्कि समूचे हिन्दी प्रदेश की जनता का जीवन-यथार्थ और मानसिक बनावट है। तुलसी का 'मानस' जन-जन का कंठहार बना क्योंकि उन्होंने जन भावनाओ को अत्यत करीब से देखा और अभिव्यक्त किया, अपने राम को जन-जीवन के विविध सुख-दुखात्मक पक्षों से सम्पृक्त किया तथा उन्हें साधारण आदमी की तरह ही सुख-दुःख का जीवन जीते हुए दिखाया। एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श भाई, एक आदर्श पति, एक आदर्श मित्र, एक आदर्श शिष्य और एक आदर्श राजा के रूप में कार्य करते हुए राम को उन्होंने समूचे समाज का नेतृत्व करने वाले लोकनायक के रूप में पेश किया तथा लोकहित, लोकमंगल हेतु सतत प्रयत्नशील दिखाया। इसीलिए त्रिलोचन देखते हैं कि

राज्यसत्ता द्वारा उपेक्षित, दीन-दुखी जनता तुलसीकृत रामायण पढ़कर, सुनकर धीरज धरती एव धरम कमाती है। यह कोरा 'धरम कमाना' नहीं होता बल्कि जनता, राम को नारायण मानकर उनसे अपने कष्टो से त्राण की आशा भी रखती है। धर्म उनके लिए जीवनगत वेदना और निराशा से कुछ देर के लिए मुक्ति दिलाने वाला 'सेफ्टी वाल्व' जैसा होता है। जैसा कि मार्क्स व एगेल्स ने कहा है-"धर्मिक वेदना एक साथ ही वास्तविक वेदना की अभिव्यक्ति और वास्तविक वेदना के विरूद्ध विद्रोह भी है। धर्म पीडित प्राणियो की आह है; वह एक हृदयहीन दुनिया का हृदय है और आत्माहीन परिस्थितियो की अतरात्मा है।" [27]

कबीर और तुलसीदास की तरह त्रिलोचन अपने समय के लोककंठ से फूटी ध्वनियो के कवि हैं। ध्वनिग्राहक है त्रिलोचन का कवि; 'ध्वनि-ग्राहकता' उसके स्थापत्य का एक खास सूत्र है। इसी 'ध्वनि-ग्राहकता' के स्थापत्य से बुनी हुई है- 'नगई महरा', 'चम्पा काले काले अच्दर नहीं चीन्हती' और 'जीवन का एक लघु प्रसग' जैसी कविताऍ। 'नगई महरा' कविता मे त्रिलोचन के स्थापत्य की एक स्पष्ट झलक मिलती है। इस कविता मे लोक-जीवन की भाषा एव शब्द-संसार, लोक-जन के राग, उनका पूरा परिवेश, सस्कार, परंपराएँ, उल्लास, जीवनोल्लास और जीवन-सघर्ष अत्यंत जीवन्तता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। यहॉ एक तरफ 'गतिमय जीवन का आख्यान' है तो दूसरी तरफ 'गतिमय इन्द्रियबोध का सौन्दर्य' भी मौजूद है। गतिमय, कर्ममय जीवन से जुड़ने, क्रिया से जुडने के कारण त्रिलोचन की 'भाषा की लहरो मे जीवन की हलचल है,/ गति में क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगंत, पृ0 67) 'नगई महरा' कविता मे अनेक जगह शब्दो, पदों, वाक्यो मे देशज प्रयोग हुआ है, जो जीवन से लगे, जुडे प्रयोग है; यथा-'बच्ची गोहनलगुई थी', 'धरौवा कर लिया था', 'पैरों पैरों है', 'टुन्न पुन्न', 'नई बातो से अनकुस होता ही है मन हाल रहा था', 'मैने हाथ मुँह फरचाए' आदि। लोक जीवन के इन टटके, प्राणवान शब्द-प्रयोगो से जुड़कर अभिव्यक्ति बेजोड हो गई है। लोक जीवन की अभिव्यक्तियो के सहारे जीवन्त अभिव्यक्ति करने की शिक्षा त्रिलोचन ने तुलसी से पाई है।

नगई महरा रामभक्त है। बालभट्ट कवि की सेवा में कुछ दिन रहने के कारण उसे कई पुराने कवियों की रचनाएँ याद थीं। नगई की तुलना निराला के 'चतुरी चमार' से की जा सकती है। चतुरी कबीरपंथी है, उसे कबीर, सूर, तुलसी, पलटूदास आदि अनेक संतों के पद याद थे, वह काकी (निराला की पत्नी) से रामायण भी सुनता था। नगई

ने त्रिलोचन से पूछा-

'रमायन बॉच लेते हो
हॉ, अटक अटक कर
सुन कर हॅसा नगई, खुल कर बोला
बॉचना अटक अटक कर
और इसे बूझना बूझने की बात है'

(ताप के ताए. ., पृ0 70)

नगई ने भक्तिभाव से पोथी माथे से लगाया, उसे खाट के सिरहाने रखा, त्रिलोचन के पॉव पखारे, सुदरकाण्ड का कुछ अश सुना और पाठ के समाप्त होने पर 'सियाबर रामचंद्र की जय' कह कर उसने कुशाखण्ड से पोथी मे चिन्ह लगाने को कहा।

'अमोला' संग्रह मे त्रिलोचन ने हिन्दी के अपने जातीय छन्द 'बरवै' मे अवध की जनपदीय बोली मे युग की पीडा को अनूभूत निजता के साथ अभिव्यक्त किया है। इस संग्रह के बरवै 'दाउद महमद तुलसी' की लोक-परंपरा में आते है। संग्रह के आवरण-पृष्ठ पर डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी का अभिमत है: "इसमें मुक्तको में सकलित अंतरंग जीवन-कथा का रस है।...मुक्तको मे विविध जीवन-अनुभूतियों के सघन समावेश का प्रतिमान 'विनयपत्रिका' है। 'अमोला' पढते हुए बाबा की उस कृति की याद आती है।" अमोला के बरवै छन्दों मे विविध जीवनानुभूतियॉ सूक्तियो के रूप मे ढलकर आती हैं। निजी अनुभूतियों के साथ-साथ इनमे लोककठ का व्यापक जीवनानुभव, सामान्य लोक-सत्य और लोक-जीवन का व्यापक संसार रचा-बसा है-

मन मन मिलवइ अलगावइ दुइ बोल
जउ सवाचि बेओहरइ होइ अनमोल।[28]
× × ×
मिलइ कॅकरही पइॅडीं जइसे ठेस
ओइसे चीन्हा जानी करइ कलेस।

(पृ0 12)

जिउका जाइ न बलुक जिउ चला जाइ
खाली पेटे चिंता धइ धइ खाइ।

(पृ0 18)

के एस बाटइ नाई न जेकरे खोट
पुजवइ बदे सजेन सब लइ लइ ओट।

(पृ0 43)

दुनिया धंधा कइ ई बाढि बिआसि
हमइँ न संताएसि ना दिहेसि पिआसि।

(पृ0 11)

त्रिलोचन के यहाॅ आत्मपरक कविताओं की सख्या बहुत है, लेकिन वे आत्मग्रस्त कविताएँ नहीं हैं। आत्मपरक कविताओ मे 'त्रिलोचन' शब्द का अन्यपुरूष में प्रयोग करते हुए, आत्म से कलात्मक दूरी प्राप्त करके सूर, तुलसी के समान, आत्म के प्रति गहरी निर्मम दृष्टि रखकर आत्मदैन्य, आत्मभर्त्सना के अंकुठ चित्र अंकित करते है। त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओ में त्रिलोचन खुद है, लेकिन वहाॅ 'सामान्यीकृत अन्य' या सामान्य सत्य का निजीकरण भी हुआ है। त्रिलोचन कहते है कि- 'खुद के जीवन को ही कविताओ में उतारने की शिक्षा मुझे तुलसीदास से मिली।'[29] तुलसी या सूर के यहाॅ 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' जैसे आत्म-भर्त्सना के अंकुठ चित्रो में सामान्य सत्य का निजीकरण है, वैसे ही त्रिलोचन के यहाॅ है-'भीख माॅगते उसी त्रिलोचन को देखा कल।' इस सबंध में त्रिलोचन का कहना है कि, "साहित्य मे बहुत से ऐसे अकिंचन थे जिनके अन्दर माॅगने का संकोच था ही नहीं। वहाॅ अगर ऐसों का नाम देकर कविता लिखता तो असम्मानजनक होता। तो वहाॅ मैने 'त्रिलोचन' नाम दे दिया।"[30]

त्रिलोचन की कविता कबीर, तुलसी, सूर आदि के समान गहन आत्मविश्लेषण की कविता भी है। वे कबीर, तुलसी, सूर के समान बार-बार अपनी कमियो की तरफ नजर करते हैं। अपने समृद्ध अनुभवो व समर्थ प्रतिभा के बावजूद उन्हें अनुभव होता है कि जीवन का बहुत-सा उन्होंने व्यर्थ गवाॅ दिया। 'शायद कहीं कुछ चूक हो गई'-

कुछ भी किया नहीं, जब अपना लेखा जोखा
किया, बात उतराई, खुल कर आगे आई,
इधर उधर में रहा, गाँठ का भी सब खोया।
जो कुछ जोड़ा था वह सब धोखा ही धोखा
सिद्ध हुआ है, ...[31]

कुछ इसी तरह मुक्तिबोध भी आत्मविश्लेषण करते है-

अब तक क्या किया,/जीवन क्या जीया!!/बताओ तो
किस-किसके लिए तुम दौड गए/करूणा के दृश्यों से हाय!
मुँह मोड गए,/बन गए पत्थर, [32]

स्वदोष-दर्शन बिरले ही करते है और अपनी निंदा तो कोई सुनना ही नहीं चाहता। कबीर की तरह, 'त्रिलोचन' जैसे बिरले मिलेगे जो 'निदक नियरे राखिए' के मूल्य को समझते हो और कहते हो-

कड़वी से कड़वी भाषा मे दोष बताओ
मुझ को मेरे; सदा रहूँगा मै आभारी।

(फूल नाम है एक, पृ0 69)

काव्यशास्त्र और लोकजीवन का व्यापक ज्ञान होने के बावजूद तुलसी विनम्रता के साथ कहते है- 'कवित्त विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहऊँ लिखि कागद कोरे।।' (मानस) इसी तरह त्रिलोचन भी अपने ज्ञान पर विश्वास होने तथा लोक जीवन को आत्मसात करके लोक जीवन के सुख-दुख, उल्लास, आकांक्षा के विविध जीवत चित्रों को देने के बावजूद अपने आलोचकों की बातो को स्वर देते हुए कहते है-

कवि है नहीं त्रिलोचन अपना सुख दुख गाता
रोता है वह; केवल अपना सुख दुख गाना
और इसी से इस दुनिया मे कवि कहलाना
देखा नहीं गया. उस को क्या आता जाता
है, आए दिन लिखता है वह पिटी पिटाई
बातों पर, प्रचार कविता द्वारा करता है,

(उस जनपद..., पृ0108)

इस संबंध मे त्रिलोचन का कहना है कि, "ऐसा मैंने इसलिए लिखा कि कुछ लोग मेरी कविताएँ ठीक से पढ़ नहीं पाते और कविता ही नहीं मानते। उन्हीं की बातें मैंने उनकी ओर से अपनी कविता में लिखी। अपने आलोचकों की बातें भी मैंने कविताओ में रखी है।" [33]

त्रिलोचन के काव्य-सस्कार ही नहीं, जीवन-सस्कार पर भी तुलसी का काफी असर है। उन्होने मूल्यनिष्ठा और मूल्यदृढ़ता, विनम्रता के साथ तेजस्विता, निरहंकार के साथ दृढ़ आत्मविश्वास आदि गुण तुलसी से सीखा है। 'अपने एक सॉनेट मे वे अपने समय के उन आधुनिकतावादी, प्रयोगवादी और नयी कविता के व्यक्तिवादी कवियो से अपने को अलग दिखाते हैं, जो अपने उडनघोडे पर बैठकर उड रहे थे, जिनके सबध हिन्दी जाति की सामान्य क्रियाशील-जनता से न होकर, उस अभिजात एव उच्च वर्ग से थे, जो सामान्य जन की निकटता को असभ्यता, अपमान व लज्जाजनक मानता रहा है।'[34] उन्होंने अपना 'स्पष्टीकरण' देते हुए अपना विश्वास तुलसी के 'रामचरितमानस' के लकाकांड की एक अर्द्धाली-'सौरज धीरज तेहि रथ चाका'-के माध्यम से व्यक्त किया है। पूरी चौपाई है-'सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका॥/ बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।'[35] तुलसी की इन पक्तियो मे त्रिलोचन अपना विश्वास व्यक्त करते है तथा अपने पैदल चलने की सार्थकता को न केवल अपनी मूल्य परंपरा से जोड़ते है, बल्कि भारतीय, खासकर हिन्दी जाति के किसान मजदूर के अभावमय जीवन-यथार्थ को समझकर उसकी आवश्यकता का प्रतिपादन भी करते है। वाल्मीकि की तरह सवाद-शैली में मित्रो को 'स्पष्टीकरण' देते हुए कहते है-

मित्रो, मे ने साथ तुम्हारा जब छोडा था
तब मैं हारा थका नहीं था, लेकिन मेरा
तन भूखा था मन भूखा था. तुम ने टेरा,
उत्तर मैं ने दिया नहीं तुम को : घोड़ा था

तेज़ तुम्हारा, तुम्हें ले उड़ा. मैं पैदल था,
विश्वासी था 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका'
जिस से विजयश्री मिलती है और पताका
ऊँचे फहराती है।... ... ...

(दिगत, पृ0 20)

यहाँ त्रिलोचन अपने जीवन-संघर्ष और आत्मविश्वास का संबंध तुलसी और उनके राम से जोड़ते हैं; उस राम से, जो युद्धस्थल में किसी दिव्य रथ पर नहीं चढ़े थे, बल्कि युद्ध में उनके रथ का रूपक उनका अपराजेय व्यक्तित्व ही था।

'महाकुंभ : 1953' की मानव त्रासदी पर लिखे गए त्रिलोचन के 25 सॉनेट मिलकर महाकाव्य का-सा स्थापत्य उपस्थित करते हैं। तुलसीदास के बाद यहॉ पूरे युग की झलक भारत को मिलती है। मरणशील परंपरा बदलते हुए भारत से टकराती है यहॉ। यहॉ भी एक रामायण कथा है जिसके एक पक्ष में पीडित, असहाय जनता की लाशो पटी दुर्घटना है। रावण कुल के राक्षस-अमानवीय नागाओ, पण्डो और अत्याचारी पुलिस, संवेदनहीन राज्यपाल के रूप मे उपस्थित हैं। मध्ययुग के धार्मिक पाखण्ड की तरह नागा, महन्त, पण्डा और सत्ता-व्यवस्था का उच्चवर्ग अपनी अमानवीयता के कारण जनता की नफरत का वर्ग-दुश्मन है। महाकुभ के इन 25 सॉनेटो की रचना के मूल में कवि का सजग दायित्वबोध रहा है- धर्माधिकारियों के पाशविक आचरण और पुलिस अधिकारियों के जनपीड़क रूप को उभार कर निरीह जनता की पीडा की अभिव्यक्ति। 1953 का यह कुंभकाण्ड वाल्मीकि रामायण के 'युद्धकाण्ड' या तुलसी रामायण के 'लकाकाण्ड' के समान लगने लगता है, जब कवि–रिर्पोटर कहता है- 'लाशो की प्रदर्शनी देखी कुभ नगर में।' तामसी स्वभाव वाले नागा साधु और सवेदनहीन पुलिस राक्षसो के समान व्यवहार करने लगते हैं निरीह जनता के साथ। और तब उपस्थित होती है यह विडम्बना-

शंकर, शकर, शंकर, यह तो नहीं बोलता
यह क्या, किस के ऊपर मेरा पॉव पड़ गया.
बडा पसीना छूट रहा है, बटन खोलता,
यदि थोडा फोफर पा जाता. व्यर्थ लड गया
पास खडे मुर्दों से. वह आवेश झड गया.
धक्के आ कर इधर उधर कुछ ठेल रहे हैं.
मेरे पॉवो को यह किस का पेट गड गया.
भीड नहीं है, दल राक्षस के खेल रहे है.
चरणों के आघात अभागे झेल रहे है.
आह, फेफड़े फडक रहे हैं, हवा कहॉ है.
छुटी भूमि, भयानक धक्के रेल रहे हैं,
अब कंधों पर हूॅ, व्याकुलता यहॉ वहॉ है.[36]

इस भीषण मानव त्रासदी ने कवि को काफी मर्माहत किया और उसने जाकर देखा–'मुर्दे पड़े हुए थे, मुँह नाक से बहा था/ काला और पनीला रूधिर. गंध का लहरा/

हलका हलका उठता था.' (अरघान, पृ0 60) 'लाशो की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था/राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही'- स्थिति की पूरी विभत्सता को सामने ला देता है। 'त्रेता मे खर दूषण भी दावत करते थे, मुनियो की हड्डी का एक पहाड़ बन गया', तो राम ने दक्षिण हाथ उठाकर प्रण किया राक्षस-बध का। लेकिन 'महाकुंभ मे हत निरीह प्राणो की पीडा' के लिए कौन प्रण करेगा? जनता, स्वय महान जनता। महाकुभ सॉनेटों की मुख्य चिता है- 'कब स्वतत्र होगी यह जनता टूटी हारी'।

भारतेन्दु हरिश्चन्द के साहित्य की भी प्रमुख चिता है- सामंतवादी, साम्राज्यवादी शोषण के चक्र में पिसती 'टूटी हारी जनता की स्वतंत्रता की आकांक्षा'। भारतेन्दु हिन्दी प्रदेश के सामाजिक-सास्कृतिक नवोत्थान या नवजागरण के अग्रदूत थे और हिन्दी प्रदेश की जातीय चेतना के सवाहक थे। वे बॉग्ला नवजागरण से सीधे जुडे हुए थे और हिन्दी कविता मे आधुनिक चेतना के सवाहक थे। उद्‌देश्यपरक, यथार्थपरक साहित्यसृजन, बोलचाल की भाषा में लोकचेतना व लोकजीवन का साहित्य मे प्रादुर्भाव, स्वदेशी-स्वत्व और स्वाभिमान के प्रति सजगता और व्यंग्य से ओतप्रोत अभिव्यक्ति-शैली भारतेन्दु और उनके सहयोगियों की ही देन है। भारतेन्दु ने अपनी गद्य-पद्य रचनाओं के माध्यम से भूखमरी, गरीबी, अत्याचार, सामंती-साम्राज्यवादी शोषण, अन्याय, अस्पृश्यता, बालविवाह, बहुविवाह और दहेज-प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाया। अंग्रेजी शासन में कमरतोड़ महॅगाई, टैक्स वृद्धि, धन के विदेश भेजने के कारण भारतीय जनता में फैले दैन्य, अभाव को देखकर भारतेन्दु ने अत्यंत व्यथित हृदय से कहा-

> ॲगरेजराज सुख साज सजे सब भारी।
> पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥
> ताहू पै महॅगी काल रोग बिस्तारी।
> दिन-दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री॥
> सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
> हा ! हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥[37]

भारतेन्दु ने वस्तुतः ब्रिटिश शासन के हर पक्ष के क्रूर-कठोर चेहरे पर से मुखौटे उतार कर नंगे बदसूरत रूप को भारतीय जनता के सामने प्रत्यक्ष किया है। उनकी 'होरी' शीर्षक कविता में तो उस क्रान्तिकारी चेतना के भी दर्शन होते हैं, जो पराधीनता की

शृंखला मे जकड़ी हुई जनता को ललकारते हुए आजादी को प्राप्त करने के लिए सघर्ष का संदेश देती है-

धिक् वह मात पिता जिन तुम सो कायर पुत्र जन्यो री।
धिक् वह घरी जनम भयो जामैं यह कलंक प्रकट्यो री।
जनमत ही क्यो न मरो री।
उठो उठो सब कमरन बाधो शस्त्रन सान धरो री।
विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पाव धरो री।[38]

वस्तुतः स्वाधीन जीवन की चिन्ता हिन्दी कविता की मुख्य जातीय विशेषता रही है। कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', निराला, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध आदि के काव्य मे इसे स्पष्टत· देखा जा सकता है।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कविता की जातीय चेतना सामंतवादी, साम्राज्यवादी और पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने तथा सम्प्रदाय, धर्म व जाति-बिरादरी के नाम पर विघटनकारी शक्तियो का विरोध करने मे प्रकट होती है। भारतेन्दु स्पष्टत· कहते हैं कि- 'बैर फूट ही सो भयो सब भारत को नास'। इसलिए 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' शीर्षक अपने बलिया-व्याख्यान में उन्होने कहा- 'बगाली, मराठा, पजाबी, मद्रासी , वैदिक, जैन, ब्रह्मे, मुसलमान–सब एक का हाथ एक पकडो।' (भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग 3, पृ0 902) भारतेन्दु अपनी भाषा, अपने देश और अपने प्रदेश के बारे में हरदम सोचते थे। उन्होने लिखा- 'स्वत्व निज भारत गहै।' स्वत्व यानी अपनी पहचान प्राप्त करे सम्पूर्ण भारत, न कि कोई अंचल। औपनिवेशिक समय में स्वत्व और सर्वतोभावेन उन्नति के लिए उन्होंने अपनी भाषा को सर्वोपरि महत्व दिया– 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।' वे चाहते थे कि ज्ञान के चौमुखी प्रसार और देश के उद्योगीकरण के माध्यम से देशवासियों में आत्मनिर्भरता, स्वत्व और स्वाभियान की भावना जागे-

जानि सकै सब कुछ सबहि विविध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद।

(भा0ग्र0, भाग- 2, पृ0 736)

भारतेन्दु युग के कुछ कवियों में उस जनपदीयता के भी दर्शन होते हैं जो आगे

चलकर निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन आदि के काव्य का आधार तत्त्व बना। भारतेन्दु ने 'प्रेमयोगिनी' (1894 ई) नाटिका की एक कविता मे अपने समय की अनेकविध मैली काशी को रेखांकित करते हुए कहा था

मैली गली भरी कतवारन, खडी चमारिन पासी।
नीचै नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी।।

(भा0ग्र0, भाग-3, पृ0 210)

सन् 1951 ई. मे त्रिलोचन ने भी काशी का एक ऐसा ही चित्र खींचा है-

काशीपुरी पवित्र है इसी लिए यहॉ पर
दुनिया की गंदगी इकट्ठा मिल जाती है,
ओर छोर से लोग छोडने पाप जहॉ पर
पहुचे, काशी दशा वहॉ की दिखलाती है।[39]

आज तो पवित्र नगरी काशी की हालत और भी बदतर हो गई है।

भारतेन्दु युग के बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपनी जन्मभूमि की दुर्दशा पर एक खण्डकाव्य लिखा-'जीर्ण जनपद' या दुर्दशा दत्तापुर। इसमें उन्होंने पुराने समय के गॉव को, उसके समाज को, उसके पर्व-त्यौहार को तथा उसके आधुनिक दुर्दशा को जिस रूप में अनुभूत किया था, उसका यथार्थ चित्र उभारा है। धान के खेतो मे निराई करने वाली स्त्रियों का एक सुन्दर चित्र दृष्टव्य है-

खेतन मे जल भरयो शस्य उठि ऊपर लहरत।
चारहुँ ओरन हरियारी ही की छबि छहरत।।
भोरी भोरी ग्राम बधू इक संग मिलि गावति।
इक सुर मे रसभरी गीत झनकार मचावति।।[40]

लोक जीवन, लोक परंपरा से जुडकर भारतेन्दु युग के कवि जनता के दुःख-दर्द से सच्ची सहानुभूति रखते थे। भारतेन्दु युगीन काव्य में जन पक्षधरता के साथ जिस आलोचनात्मक यथार्थवादी काव्यधारा की नींव पड़ चुकी थी, वह कालान्तर में विकास के विभिन्न सोपानो को पार करती हुई प्रगतिवाद काल में समाजवादी यथार्थवाद के रूप मे परिणत हुई।

द्विवेदी युग के कवियों में पराधीनता की पीडा, स्वातंत्र्य प्रेम, स्वाधीनता की आकांक्षा और राष्ट्रीय एकता की भावना कुछ और व्यापक हुई। इस काल मे भारतेन्दु काल जैसा देश-भक्ति और राजभक्ति का अन्तर्विरोधी स्वर नहीं सुनाई पडता बल्कि देश प्रेम, देश भक्ति, राष्ट्रीय चेतना और स्वत्व-स्वाभिमान-स्वदेशी के प्रति जागृति ही तीव्र स्वर मे मुखरित होता है। 'भारत भारती' में गुप्त जी ने राष्ट्रीय एकता के निमित्त मुसलमानो को चैतन्य करते हुए कहा-

हिंदू तथा तुम सब चढे हो एक नौका पर यहॉ
जो एक का होगा अहित तो दूसरे का हित कहॉ?
सप्रेम हिलमिल कर चलो यात्रा सुखद होगी तभी
पीछे हुआ सो हो गया अब सामने देखो सभी।[41]

हिंदू-मुसलमान दोनों के हित समान हैं, उनके सामान्य शत्रु अंग्रेज है। इसलिए विभिन्न धर्मानुयायियों व विभिन्न भाषाई जातियों को मिलजुल कर अंग्रेजों का विरोध करना चाहिए। सारे देशवासियों की एकता का यह बोध भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग मे गहरा हुआ। आधुनिक हिन्दी कविता की जातीय परंपरा मे हिंदू-मुस्लिम भेदभाव के सस्कार गौण है, पूरी भारतीय जनता की एकता का विचार प्रमुख है।

वास्तव में द्विवेदी युग की कविता में देशभक्ति का केवल उद्घोष ही नहीं हुआ है बल्कि, देश जिनसे बनता है उन साधारण जनों के स्वेदकण और ऑसू भी दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त का 'किसान', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का 'कृषक क्रंदन' और सियारामशरण गुप्त का 'अनाथ' महत्वपूर्ण हैं। इनमे गुप्त-बंधु तो पक्के गॉधी -वादी है पर 'सनेही' जी क्रान्तिकारी आन्दोलनों पर भी नजर रखते हैं और लेनिन पर भी कविता लिखते हैं।[42] सन् 1920-21 ई0 में ही गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने सामंती व्यवस्था के शोषण व अन्तर्विरोध को रेखांकित करते हुए लिखा-'जोते खेत किसान, अन्न हो जमींदार का,/काम करें श्रमशील, माल हो साहुकार का।'[43] इस सामंती शोषण को देखकर सन् 1921 ई0 में ही सनेही जी 'साम्यवाद' की कल्पना कर चुके थे-

समदर्शी फिर "साम्य" रूप धर जग में आया,
समता का सन्देश गया घर-घर पहुँचाया।
धनद-रंक का, ऊँच-नीच का, भेद मिटाया,

विचलित हो वैषम्य बहुत रोया चिल्लाया।
कॉटे बोये राह मे फूल वही बनते गये।
साम्यवाद के स्नेह मे सुजन-सुधि सनते गये।[44]

द्विवेदी युग मे श्रीधर पाठक ने सुधारवादी भावना, देश के उत्थान की कामना, एकीकरण का चिन्तन और पुनर्जागरण का भावबोध लेकर अनेक कविताएँ लिखीं। उन्होंने 1918 ई0 मे लिखी 'मनूजी' शीर्षक कविता मे मनु कृत ऊँच-नीच जाति-विभेदित भारतीय समाज पर तीखा व्यंग्य और आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखा

'मनूजी' तुमने यह क्या किया?
किसी को पौन, किसी को पूरा, किसी को आधा दिया।
सरस प्रीति के थल में बोया
बिष अनीति का बिया
लुब्ध पाप का, क्षुब्ध शाप का
साया सिर पर लिया
मनूजी तुमने यह क्या किया?
और अधिक क्या कहें बाप जी
कहते दुखता हिया
जटिल जाति का, अटल पांत का
जाल है किसका सिया?
मनूजी तुमने यह क्या किया?[45]

डॉ0 रामविलास शर्मा का कहना है कि, "जिन अनेक विषयों पर द्विवेदीयुगीन कवियों ने रचनाएँ की हैं, उन्हीं पर छायावादियों ने और आगे चलकर प्रगतिवादियों ने भी कविताएँ लिखी हैं। द्विवेदी युग के कवियों की शैली ने बहुधा छायावादी कवियों को प्रभावित किया है। सनेही और मैथिलीशरण गुप्त की झलक जगह-जगह निराला की रचनाओं में मिलती है। यह शैली अतिशय लाक्षणिकता से पीड़ित नहीं है, उसमें तत्सम शब्दावली की अधि--कता नहीं है, वह कवित्वपूर्ण शब्दों की आवृत्ति नहीं करती, उसका लक्ष्य पढ़े- लिखे लोगों को ही नहीं, अपढ़ जनों को भी प्रभावित करना है।"[46] महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रतिनिधि--त्व में कवियों ने हिन्दी भाषा और साहित्य को बहुत कुछ सामंती प्रभावों, यथा-रीतिवादी काव्य परंपरा में नायिका भेद, नखशिख वर्णन, ऊहात्मक श्रृंगार वर्णन आदि, से मुक्त किया।

यह भावी विकास के लिए और स्वयं निराला के साहित्यिक विकास के लिए उनका बड़ा योगदान था।

भारतेन्दु युग से छायावाद तक नव मानवतावाद के साथ-साथ उत्कट सघर्ष चेतना का विकास हुआ। द्विवेदी युग व छायावाद युग के कवियो ने अतीत के पुनरूत्थान के माध्यम से सम्पूर्ण देश मे जाग रही जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना को प्रतिध्वनित किया। त्रिलोचन ने भारतेन्दु युग और निराला की संघर्षशील परंपरा से जुडकर, उसकी संघर्षशील जीवन-आस्था से अनुप्राणित होकर अपनी कविता मे अपने ढंग से अपने समय की चुनौतियों को स्वीकार किया। 'निराला ने इतिहास और दायित्व के गभीर बोध से संपन्न होकर जिस नये यथार्थवाद का विकास किया, वह भक्ति आन्दोलन और भारतेन्दु युग की संघर्षशील परपरा की ही अगली कड़ी है।'[47] वे हिन्दी जाति की जातीय चेतना–सामंत विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी चेतना–से जुड़कर हिन्दी जाति की जातीय चेतना का प्रतिनिधित्व करते है। सामंत-विरोधी चेतना अैर साम्राज्यवाद विरोधी चेतना–दोनों मिलकर निराला की स्वा--धीन चेतना का एक सम्यक् बिम्ब निर्मित करती हैं। निराला ने सामंती रीतिवाद, सामती संस्कार, सामंती समाज व्यवस्था, जाति प्रथा, सम्प्रदायवाद आदि गर्हित प्रवृत्तियों पर तीव्र प्रहार किया। इस तरह उन्होने सामाजिक दृष्टि से नये मानवतावाद और साहित्यिक दृष्टि से मानवतावादी साहित्य का प्रणयन किया।

बंगाल में पले-बढ़े निराला को बंगालियों की जातीय चेतना के सम्पर्क से और उनसे अपने विलगाव के अनुभव से उनमें हिन्दी जाति की चेतना उदित हुई। विवेकानन्द और टैगोर की विश्व मानवतावाद और राष्ट्रीयता से प्रेरणा ग्रहण करके निराला ने हिन्दी जाति का जातीय स्वर और प्रखर किया। जैसा कि डॉ0 रामविलास शर्मा का मत है . "जातीयता का समर्थन और जातीय संकीर्णता का विरोध, राष्ट्रीयता का समर्थन और उससे ऊपर उठकर विश्वमानवता का समर्थन, ये दोनों बातें रवीन्द्रनाथ ठाकुर में हैं और निराला में भी हैं। कहना न होगा, जिस तरह जातीय जागरण का नेतृत्व रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया था, वह आदर्श निराला के सामने भी था, और यह आदर्श उनके साहित्यिक जीवन के प्रारंभिक दौर मे सुनिश्चित हो गया था।"[48]

निराला ने हिंदी प्रदेश की जातीय अस्मिता से तुलसी का तादात्म्य स्थापित किया और तुलसी को सूर, कबीर, रैदास आदि संतों-भक्तों की विराट परंपरा के अंग के रूप में देखा। तुलसी और उनकी अवधी में निबद्ध रामकथा हिन्दी प्रदेश की जातीय संस्कृति

से, अवध की जनपदीय संस्कृति से जुडे है। हिन्दी जाति, खासकर अवध के जनपदीय जीवन, जनपदीय संस्कृति को आत्मसात करके विविध जीवनानुभवो को बोलचाल की भाषा अवधी मे मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले तुलसीदास निराला के कविगुरू रूप है, बतौर प्रेरणा के; पर उन्हें वे अपने समय-सन्दर्भ मे देखते हैं। अपनी लबी कविता 'तुलसीदास' मे निराला लिखते हैं-

> देश-काल के शर से बिंधकर
> यह जागा कवि अशेष छबिधर
> इसका स्वर भर भारती मुखर होऍंगी।[49]

कहना न होगा कि देश-काल के शर से बिंधकर समूची जातीय-सांस्कृतिक चेतना को झंकृत कर देने वाले कवित्व का यह जागरण तुलसीदास का ही नहीं, दूसरे स्तर पर, एक दूसरी परिस्थिति मे सांस्कृतिक लयभग की वेदना से विकल कवि निराला का भी जागरण है। लगता है, तुलसीदास ही निराला के आदर्श रहे- साधना में, कष्ट-सहन में, पाखंडियों से लड़ने में, काव्य-कर्म में, निर्लिप्तता में, सामाजिकता में। 'ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत' की स्थिति निराला की ही नहीं, तुलसी की भी जीवन-स्थिति थी। 'दुख ही जीवन की कथा रही'– निराला के समान तुलसी का भी जीवन-यथार्थ था। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लक्षित किया है कि, "निराला की रचना-प्रक्रिया और काव्य-कौशल पर जिस कवि का सबसे अधिक प्रभाव है, वह हैं तुलसीदास।"[50] तुलसी के यहॉ भक्ति के क्षेत्र में जाति, वर्ण, धर्म जैसे भेद थोथे हैं और राम के प्रति अनन्य प्रेम ही मुख्य है। निराला की 'प्रेयसी' भी कहती है-

> 'दोनों हम भिन्न- वर्ण,
> भिन्न- जाति, भिन्न- रूप,
> भिन्न- धर्मभाव, पर
> केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।'[51]

जाति, वर्ण, धर्म ने मनुष्य को मनुष्य से अलग कर रखा है; प्रेम इन संकीर्ण सीमाओं के परे उन्हें एक करता है।

निराला की काव्य-चेतना में साम्राज्यवाद-विरोध, पराधीनता की पीड़ा और राष्ट्रीय स्वाधीनता की आकांक्षा, जातीय नवजागरण का प्रखर स्वर, दलित-पीड़ित निम्न वर्ग के

प्रति सच्ची सहानुभूति और दबे-कुचले लोगो मे जाग रही क्रान्ति चेतना की अभिव्यक्ति बोलचाल की भाषा में (अधिकाशत· परवर्ती रचनाओं मे) हुई। 'जागो फिर एक बार', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'बादल-राग', 'कुकुरमुत्ता', 'झींगुर डटकर बोला', 'डिप्टी साहब आए', 'महंगू महॅगा रहा' आदि कविताओ मे निराला की काव्य चेतना के उपरोक्त आयामो की सशक्त अभिव्यक्ति देखा जा सकता है। बैसवाडा की दयनीय स्थितियॉ निराला को जीवन-यथार्थ की ऐसी व्यापक दृष्टि देती है कि उनके रचना-संसार मे वृहत्तर जीवन-संघर्ष प्रवेश पाता है, और साधारण, सामान्य वर्ग के लोग उनकी रचनाओ के पात्र बनते हैं। 'अणिमा', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' संग्रहों की कविताओं मे ग्राम-दृश्य अपनी विपन्नता मे उभरते हैं- पीला चेहरा, झुकी रीढ़, गन्दे गलियारे, बेकारो की आखिरी सॉसें, जमींदार-साहूकार से डरे, ठिठुरे साधारण जन, आदि। दबे-कुचले लोगो मे जाग रही क्रान्तिकारिता के प्रति वे पूरी तरह सचेत थे। 'नये पत्ते' संग्रह की 'झींगुर डटकर बोला', 'छलांग मारता चला गया', डिप्टी साहब आए', 'महंगू महॅगा रहा' जैसी कविताओ में अपने अधिकारों के लिए संघबद्ध होते किसानों के संघर्ष और उस संघर्ष की कठिनाइयों का चित्रण किया गया है। निराला उत्तरोत्तर अपने जनपद से गहराई से जुड़ते गये और तद्नुरूप उनकी जातीय चेतना शक्तिशाली और परिष्कृत होती गयी।

निराला की जातीय चेतना का एक भव्य और विराट चित्र 'नये पत्ते' सग्रह की रचना 'देवी सरस्वती' में है। निराला ने 'देवी सरस्वती' कविता में हिन्दी प्रदेश के प्राकृतिक परिवेश, किसानो के जीवन और लोकगीतों का; साथ ही ऋग्वेद से चली आती सस्कृत की विशाल काव्यधारा, उसके बाद अवधी और ब्रजभाषा (सूर, तुलसी, कबीर, मीरा) की काव्यधारा-इन सबसे सरस्वती का संबंध जोड़ दिया है। इस कविता में निराला हिन्दी प्रदेश की कृषिजीविता और ज़िन्दादिली, लोक जीवन और लोक संस्कृति को सरस्वती से जोड़ते हैं और आगे चलकर हरे-भरे खेतों को ही सरस्वती कह देते हैं :

हरी-भरी खेतों की सरस्वती लहराई,
मग्न किसानों के घर उन्मद बजी बधाई।[52]

निराला ने छायावाद की भूमि पर काव्य-रचना प्रारम्भ करके उसे उत्कर्ष प्रदान करते हुए, उसकी रूमानी परिधि लांघकर नये यथार्थवाद को प्रस्तुत किया। निराला की संघर्षशीलता, उनका जीवन-संघर्ष, उनके काव्य का कर्मठ स्वर बाद के कवि-साहित्यकारों के लिए प्रेरणाप्रद रहा। प्रगतिवादी काव्य ने अपने रचनात्मक संघर्ष के सूत्र को निराला से पकड़ा, जो वह

छायावाद से अन्दर-अन्दर लड़ते हुए कर रहे थे। नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन, शील, शमशेर, रामविलास शर्मा आदि प्रगतिवादी कवियों ने निराला की जनपदीयता, जातीय चेतना, व्यापक दृष्टि से अपना नाता जोड़ा। त्रिलोचन अपने मानस को निराला से एकाकार करके उन्हे अपने कवि और 'कविता का मानदड' बनाते है ·

... ... मुझ में जितना बल था
अपनी राह चला. ऑखों में रहे निराला,
मानदंड मानव के तन के मन के, तो भी
पीस परिस्थितियो ने डाला.सोचा, जो भी
हो, ऑखो की करूणा का यह शीतल पाला
मन को हरा नहीं करता है. पहले खाना
मिला करे तो कठिन नहीं है बात बनाना.

(दिगत, पृ0 20)

यहॉ अभावग्रस्त त्रिलोचन, अपनी जातीय परंपरा के कवि के सघर्षमय जीवन से अपना तादात्म्य स्थापित करता है और विषम परिस्थिति में उसकी स्मृति से साहस जुटाता है। केदारनाथ अग्रवाल ने भी निराला से ऐसा ही तादात्म्य स्थापित करके कहा :

यह हमारी शान और जिंदगी की शान है
तुम हमारे साथ और हम तुम्हारे साथ है
यह हमारा मान और जिदगी का मान है
तुम हमारे हाथ और हम तुम्हारे हाथ हैं।[53]

कवि केदारनाथ सिंह से बातचीत में त्रिलोचन ने स्वीकार किया कि, "असल में जिस कवि का मेरे मन पर सचमुच प्रभाव पड़ा, वे निराला थे। ...निराला के पास एक तेज ऑख थी और उस ऑख को दिशा देने वाली एक विलक्षण भावदृष्टि भी, जो और कहीं नहीं मिलती। मुझे हर बार उसी ने कायल किया।"[54] त्रिलोचन के अनुसार-'निराला, तुलसीदास के बाद हिन्दी के सबसे बड़े कवि हैं।'[55]

निराला ने नवम्बर 1929 में 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' ('प्रबंध पद्म', 1934, में संकलित) निबंध में तुलसी, कबीर के साथ ग़ालिब को भी वेदांत से प्रभावित दिखाया। निराला के समान त्रिलोचन को भी कबीर, तुलसी, ग़ालिब–एक ही

जातीय परंपरा के कवि लगते हैं। 'दिगत' (1957) मे त्रिलोचन ने लिखा :

गालिब गैर नहीं है, अपनो से अपने हैं,
ग़ालिब की बोली ही आज हमारी बोली
है. नवीन ऑखों मे जो नवीन सपने है
वे ग़ालिब के सपने हैं. ग़ालिब ने खोली
गॉठ जटिल जीवन की, बात और वह बोली
नपी तुली थी, हलकेपन का नाम नहीं था.

(दिगत, पृ0 62)

कवि आम जनता की बोली सुनता है और उसे महसूस होता है कि ग़ालिब की बोली और आम बोलचाल की भाषा के रचाव में गहरी समानता है। भारतेन्दु और निराला के समान त्रिलोचन भी हिन्दी और उर्दू में वास्तविक फ़र्क नहींमानते, कारण कि आमफ़्हम उर्दू और हिन्दी में कोई फ़र्क नहीं दीखता।

तुलसीदास, निराला के समान त्रिलोचन के भी कविगुरू रूप हैं, बतौर प्रेरणा के, पर वे दोनों उन्हें अपने समय-संदर्भ में देखते है। जनजीवन से अगाध आत्मीयता, गहरी जीवनानुभूति, जनमानस में गहरी पैठ और अवध के जनपदीय जीवन के सघर्ष व सौन्दर्य के विविध जीवनानुभवों को आत्मसात करके, उसे अवधी की पूरी मधुरता के साथ जीवन्त और मार्मिक अभिव्यक्ति देने वाले तुलसी से-निराला और त्रिलोचन दोनो काव्य प्रेरणा पाते हैं, उन्हे काव्यगुरू स्वीकार करते है और उनसे जनभाषा और जनजीवन से जुड़ने की कला सीखते हैं। वास्तव में निराला का तुलसी से जो रिश्ता है, त्रिलोचन का वही रिश्ता तुलसी और निराला दोनों से एक साथ है। त्रिलोचन ने तुलसी और निराला से जो सबंध बनाया और उसे अनुभवों की वैयक्तिकता में ढालकर जो रूप और आकार दिया, वह हिन्दी कविता के पाठकों के लिए अपने में एक विलक्षण अनुभव है। त्रिलोचन ही नहीं, नागार्जुन, केदार ने भी तुलसी और निराला से निकट का नाता जोड़ा। वैसे भी, हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना का विकास करने वाले कवि नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन का तुलसी और निराला की-भक्ति आन्दोलन और छायावाद की-सामंतविरोधी परंपरा से जुड़ना स्वाभाविक ही है।

हिन्दी कविता की जातीय चेतना 'ऑखों देखी' यानी प्रत्यक्ष 'निजी अनुभूति' को

ही प्रामाणिक मानती आयी है, किताबी बातो को नहीं। कबीर ने कहा- 'तू कहता है कागद लेखी/ मै कहता हूॅ आंखिन देखी।' निराला ने लिखा-'देखा उसे मैने इलाहाबाद के पथ पर/ वह तोड़ती पत्थर।' नागार्जुन ने एक रिक्शाचालक को रिक्शे के रबडविहीन ठूॅठ पैडलो को 'गुट्ठल घट्ठो वाले कुलिश-कठोर पैर' से चलाते देखा और फिर :

'देर तक टकराए/उस दिन इन ऑखो से वे पैर/
भूल नही पॉऊगा फटी बिवाइयॉ/खुब गई
दुधिया निगाहो में/धॅस गईं कुसुम-कोमल मन मे' [56]

केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा-'मैंने उसको जब-जब देखा, लोहा देखा,/लोहा जैसा-तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा,/ मैंने उसको गोली जैसा चलते देखा!' [57] त्रिलोचन भी अपनी ऑखों देखते है कि जनपद मे निर्धनता और वर्ण व्यवस्था दोनो ने मिलकर शूद्रो को पशुवत जीवन जीने पर मज़बूर कर दिया है और मरने पर भी बदकिस्मती उनका पीछा नहीं छोड़ती। सिला बीनकर, पिसौनी करके पेट भरने वाली बुढ़िया अशक्त हो जाने पर भूखों मरने के लिए विवश होती है, और फिर-

'बुढ़िया जब मर गई उसे ले जा कर फेंका
अंधे कुएॅ में चमारों ने, थोडी लकड़ी
नहीं किसी ने दी उस को. ... ...
... ... हो गए महीनो,
सुना कि बुढिया है अब तक जैसी की तैसी
पड़ी कुएॅ में. जा कर ऑखों देखा. हीनों
की दुर्दशा दिखाई दी. कल्पना न वैसी
मुझ को थी कि गीध, कौवे भी पास न आए,
सड़ी गली भी नहीं, पड़ी थी लाश भी खुली
उसी खाट पर जिस पर दम तोड़ा था.' [58]

वर्ण आधारित समाज का यह क्रूर यथार्थ निराला कृत 'तुलसीदास' के 'चलते-फिरते, पर निस्सहाय/वे दीन-क्षीण कंकालकाय' शूद्रजन के जीवन की कड़वी सच्चाई है। शूद्रों के शोषण-उत्पीड़न का एक ऐसा ही क्रूर यथार्थ नागार्जुन की कविता 'हरिजन गाथा' में अभिव्यक्त हुआ है, जबकि जमींदारो ने चौदह चमारों को ज़िन्दा आग में झोंक दिया था।

जैसा तुलसी ने देखा कि अकाल में अभावग्रस्त लोग 'ऊँचे नीचे करम धरम-अधरम करि पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।' (कवितावली), वैसा ही केदारनाथ अग्रवाल ने देखा-'बाप बेटा बेचता है/भूख से बेहाल हो कर,/ धर्म, धीरज, प्राण खो कर,/ हो रही अनरीति बर्बर राष्ट्र सारा देखता है।'[59] त्रिलोचन का कहना है कि, "जब हम दु:ख देख सकते हैं और केवल देख सकते है तब हृदय की पीड़ा और बढ जाती है। यही पीडा हमें मनुष्य बनाती है और हमारी मनुष्यता को तपाकर जगाती है।"[60]

निराला की रचनाओ में अवध व बैसवाड़े का जीवन-यथार्थ अपने दैन्य, अभाव, सघर्षशीलता, अपराजेयता और ज़िंदादिली के साथ उभर कर सामने आता है। निराला की यथार्थदृष्टि और जनपदीयता से नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन ने निकट का नाता जोड़ा। 'प्रगतिशील कवियो में भी भूख, बेरोजगारी की जैसी मार्मिक अभिव्यक्ति त्रिलोचन के यहॉ हुई है, अन्यत्र नहीं मिलती। त्रिलोचन ने भूख और बेरोजगारी के जो चित्र खींचे हैं वे आत्मचित्र हैं। आत्मचित्र (सेल्फ पोर्ट्रेट) बनाने मे तुलसी, ग़ालिब (पद्य से ज्यादा गद्य में), निराला बेजोड़ हैं। इनके आत्मचित्र ज्यादातर बेबसी के ही हैं। त्रिलोचन के आत्मचित्र उसी परंपरा में है।'[61] तुलसी ने 'कवितावली' में बाल्यावस्था की विपन्नता का आत्मचित्र खींचते हुए लिखा-

> जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
> भयो परिताप पाप जननी जनक को।
> बारें तें ललात बिल्लात द्वार-द्वार दीन,
> जानत हौं चारि फ्ल चारि ही चनक को॥

तुलसी के समान त्रिलोचन ने भी अपनी और दूसरों की गरीबी देखी है और उसके बारे में लिखा है। 'आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की' (कवितावली)-कहने के पीछे तुलसी का भोगा हुआ यथार्थ था। त्रिलोचन भी जानते हैं कि भीख मॉगना अच्छा नहीं, लेकिन-'दुनिया में जिस को/अच्छा नहीं समझते हैं करते है, छूछा/पेट काम तो नहीं करेगा।' (उस जनपद का कवि हूॅ, पृ0 13) सन् 1925 ई0 की एक रचना में निराला ने लिखा-

> हमारा डूब रहा दिनमान!
> मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
> उगल रहे हो गरल-अनल,
> जलता यह जीवन असफल;[62]

लंबी कविता 'सरोज स्मृति' व कुछ अन्य कविताओं मे निराला ने अपने जीवन संघर्ष, हताशा और बेबसी के 'आत्मचित्र' अकित किया। गालिब ने 'आत्मचित्र' कुछ इस तरह बनाया-

ज मन जूए दर बद नकू जीस्तन
जिगर ख़ूर्दन व ताजा रू जीस्तन।। [63]

अर्थात् 'बुरी हालत मे ज़िन्दा रहने की कला मुझसे सीख; अपने जिगर का खून पीकर तर-ओ-ताज़ा चेहरे के साथ गुजार रहा हूॅ।'

त्रिलोचन के 'आत्मचित्र' तुलसी, ग़ालिब, निराला की परपरा में हैं। 'उस जनपद का कवि हूॅ' संग्रह के पहले चार सॉनेटों और 'ताप के ताए हुए दिन' के पहले तीन सॉनेटों में वे 'आत्मचित्र' (सेल्फ पोर्ट्रेट या 'लाइव स्केच') बनाते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है

वही त्रिलोचन है, वह-जिस के तन पर गदे
कपड़े हैं. कपडे भी कैसे–फटे लटे है,
× × ×
कौन कह सकेगा इस का यह जीवन चदे
पर अवलंबित है. चलना तो देखो इस का-
उठा हुआ सिर, चौड़ी छाती, लंबी बाहे,
सधे कदम, तेज़ी, वे टेढ़ीमेढ़ी राहें
मानों डर से सिकुड़ रही हैं, किस का किस का
ध्यान इस समय खींच रहा है. कौन बताए,
क्या हलचल है इस के रूँधे रूँधाए जी में

(उस जनपद का कवि हूॅ, पृ0 11)

चीर भरा पाजामा, लट लट कर गलने से
छेदों वाला कुर्ता, रूखे बाल, उपेक्षित
दाढ़ी-मूँछ, सफाई कुछ भी नहीं, अपेक्षित
× × ×
.... सभा हो या सूनापन
अथवा भरी सड़क हो जन-जीवन-प्रवाह से,

झिझक कहीं भी नहीं, कहीं भी समुत्साह से
जाता है. दीनता देह से लिपटी है, मन
तो अदीन है. ... ...

(वही, पृ0 12)

इन आत्मपरक सॉनेटों के बारे मे गोबिन्द प्रसाद का कहना है; "बड़बोलेपन, दया तथा अहंकार से कोसो दूर अपने आत्म को इतना पहचानना और इस निजता को शब्द-बद्ध करना, निश्चित शिल्प में, कम आसान नहीं। आईने में अपने को आईने की तरह देखना — कितना मुश्किल और जोखिम भरा है यह! प्राय इन सॉनेटो मे वे अन्य पुरूष के माध्यम से संवाद स्थापित करते हुए अपने आत्म का कलात्मक रूपान्तरण कर लेते हैं। एक सार्वजनिक सत्य पाने अथवा दूसरे तक पहुँचने के लिए 'सेल्फ़' को ही 'पर्सोनाफाइड' कर अपने आत्म से अनात्म की हद तक दूरी बना लेते है।"[64]

त्रिलोचन ने अपने कवि को अपने जनपद से जोड़ कर देखा। वे जनपद से आत्मीयता का अनुभव करते हैं, किन्तु जनपद का मामूली आदमी भूखा-दूखा है, कविता उसे क्या दे सकती है। 'वह उदासीन बिलकुल अपने से, अपने समाज से है। धरम कमाता है वह तुलसीकृत रामायण सुन पढ कर, जपता है नारायण नारायण।' ('उस जनपद का कवि हूॅ' शीर्षक सॉनेट)। त्रिलोचन ने भोरई केवट, टेल्हू मुसहर, फेरू कहार, नगई महरा, सुकनी बुढिया, भिखरिया, अतवरिया आदि के माध्यम से अपने जनपदीय जीवन की पीडा, दैन्य-अभाव और रूढ़िग्रस्त संस्कारों में जकड़े सामंती समाज के अन्तर्विरोधों को दर्शाया है।

खुद के जीवन में अभाव, गरीबी की मार झेलने वाले निराला, नागार्जुन और त्रिलोचन में परदुःखकातरता, दुःखी जन के प्रति सहानुभूति व समवेदना की सक्रियता बार-बार दिखाई पड़ती है। अपनी ज़िन्दगी में दुखी और अभावग्रस्त रहे निराला, हर दुखी जन को अपना भाई मानने लगते हैं और किसी दुखी जन को देखकर उनकी समवेदना तुरंत सक्रिय हो उठती है:

देखा दुखी एक निज भाई/ दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे,/
कर उमड़ वेदना आयी।/ उसके निकट गया मैं धाय,[65]

निराला के समान त्रिलोचन और नागार्जुन ने भी जीवन की विषम परिस्थितियों से पिसने के बावजूद 'लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर' अभावग्रस्त रहना ही बेहतर समझा,

क्षीण का अन्न नहीं छीना। त्रिलोचन के जीवन मे अर्थाभाव मारक रहा है– 'खाली पेट भरू, कुछ करूॅ कि चुप मरूॅ।' (उस जनपद..,पृ0 13) लेकिन उनका स्वाभिमान विषम परिस्थितियो मे निराला की तरह, और भी सतेज होकर उनके ज्योतिष्क लोचनो मे उभर आया, स्वाभिमान युक्त ऑखो की चमक को पेट की भूख मार नहीं सकी। (वही, पृ0 13) प्रसंगवश याद आते है निराला-

जीवन-प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा
ज्योतिष्क का उजाला, ज्योतिष्क से उतारा।
बॉधी थी मूठ मैने सचय की चिन्तना से,
मुद्रा दरिद्र की है, तुमने किया इशारा।

(नि0र0 -2, पृ0 118)

निराला के समान ही जीवन मे अभावो एव गरीबी को अक्षत स्वाभिमान और चट्टानी दृढ़ता के साथ झेलने वाले त्रिलोचन के अन्दर है-निराला जैसा ही 'नरम कलेजा'। वे खुद से प्रश्न करते हैं :

'क्यों मै ने पाया है इतना नरम कलेजा
जो दुख कभी किसी का नहीं देख सकता है,
ऑखें भर भर आती हैं, यह मन थकता है
नहीं उठा रखने में कुछ भी। ... ...
तेरे दुख ने तुझ को ठीक पते पर भेजा।'

(दिगंत, पृ0 38)

नागार्जुन भी 'एक मित्र को पत्र' मे बताते हैं कि 'तुच्छ से अतितुच्छ जन की जीवनी पर' कहानी, काव्य, रूपक, गीत लिखने की वज़ह यह है कि :

'हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालुम
कि हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार
सुविधा-प्राप्त लोगों ने सदा समझा हमें भू-भार'

(युगधारा, पृ0 55-56)

खुद गरीबी की मार झेलने वाले कवि नागार्जुन के हृदय में अभाव, दैन्य और भूख से पीड़ित, शोषित आम जनता के प्रति असीम सहानुभूति है। वे अपने जनपद को

करीब से जुड़कर देखते और उससे पूरी आत्मीयता रखते है। वे अत्यत व्यथित होते है, जब अपने जनपद मे भूखमरी की स्थिति देखते है :

> आमो की गुठलियॉ चूरकर/भट्ठी की सोधी मिट्टी मे
> उस चूरन को सान-सूनकर/खा लेते हैं लोग,
> पेड़ों की छालों का तीमन बनता है/ डोका-सितुआ
> घोघा-घुँघची कडहर-सारूख/ खास-पात डंठल-कोढी
> फल-फूल/हमारी जनता की भूखी ऑतो को कब तक थामे?[66]

केदारनाथ अग्रवाल ने भी अपने जनपद के अभावग्रस्त जीवन से सीधा साक्षात्कार किया और अत्यंत व्यथा का अनुभव किया। उन्होने अपने जनपद के अभावग्रस्त किसान के जीवन-यथार्थ को कुछ इस तरह दिखाया ·

> 'जब बाप मरा तब यह पाया,/भूखे किसान के बेटे ने :/
> घर का मलवा, टूटी खटिया,/कुछ हाथ भूमि-वह भी परती।
> चमरौधे जूते का तल्ला,/ छोटी, टूटी बुढ़िया औगी,/
> दरकी गोरसी बहता हुक्का,/ लोहे की पत्ती का चिमटा।
> × × ×
> बस यही नहीं, जो भूख मिली/ सौगुनी बाप से अधिक मिली।'[67]

नागार्जुन, त्रिलोचन, केदार के जनपद में भूख, अभाव, अशिक्षा और महाजनी शोषण पहले भी था और अब भी बना हुआ है। ये तीनों ही कवि भूख, अभाव, अशिक्षा, धर्मभीरूता और महाजनी शोषण के चक्र में पिस रही जनता को जागृत करते है तथा शोषक वर्ग की पहचान कराते हैं।

त्रिलोचन ने अपने समानधर्मा कवि नागार्जुन पर पॉच कविताएँ लिखा। इन कविताओं में उन्होंने नागार्जुन के अभावमय जीवन-संघर्ष और जन प्रतिबद्धता को उद्घाटित करते हुए लिखा-

> नागार्जुन क्या है। अभाव है। जम कर लड़ना
> विषम परिस्थितियों से उस ने सीख लिया है,

(फूल नाम है एक, पृ0 67)

अत्याचार अनय पर नागार्जुन का कोडा
चूका कभी नहीं। ... ..

(वही, पृ0 65)

नागार्जुन का स्वर प्रबुद्ध जनता का स्वर है।
नये पुराने कवियों की प्रतिभा कल्याणी
कवि के मुख से बोली है। ... ...

(वही, पृ0 68)

नागार्जुन के समानधर्मा कवि त्रिलोचन पर भी ये शब्द लागू होते है। हिन्दी जाति की संघर्षशीलता का उद्घाटन त्रिलोचन ने कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, निराला की जन शोषण विरोधी, सामंत विरोधी परंपरा मे किया है और नागार्जुन, केदार भी इस जातीय परंपरा मे उनके साथ हैं। अपने जनपद की संघर्षशील, अपराजेय जनता के प्रति पक्षधरता के स्वर में त्रिलोचन लिखते हैं ·

मैं ने उन के लिए लिखा है जिन्हें जानता
हूँ जीवन के लिए लगा कर अपनी बाज़ी
जूझ रहे है, जो फेंके टुकड़ो पर राज़ी
कभी नहीं हो सकते हैं. ... ...
वे हैं जो हैं निपट निरक्षर लेकिन जिन की
प्राणों की ललकार जानती कभी न रूकना.
जिन का आहत मान जानता नेक न झुकना.
स्पष्ट रूपरेखा है उन को अपने दिन की.
क्रांति उन्हीं लोगों के पास पला करती है,
दुख के तम में जीवन-ज्योति जला करती है.

(दिगंत, पृ0 26)

दलित-पीड़ित श्रमजीवी जनता में जाग रही स्वाधिकार चेतना और क्रान्तिकारी उभार को रेखांकित करते हुए नागार्जुन ने लिखा-

'गोबर महंगू बलचनमा और चतुरी चमार
सब छीन ले रहे स्वाधिकार

आगे बढकर सब जूझ रहे
रहनुमा बन गये लाखो के
अपना त्रिशकुपन छोड इन्हीं का साथ दे रहा मध्यवर्ग' [68]

केदार भी देखते है कि दिन भर मेहनत करने वाले श्रमजीवी, शोषक पूँजीपति के विरूद्ध संघबद्ध हो गए है और–

'उनमें बल लडने का आया/वह/शोषण से
युद्ध ठानते/ थैलीशाहो को पछाड़ते/मॉगों को
स्वीकार कराते/चेत गये हैं कमकर सारे' [69]

'जनता के हृदय जिया, जीवन विष विषम पिया'–निराला की यह पक्ति जितनी निराला पर लागू होती है, उतनी ही नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल पर। ये तीनो ही कवि जनता के साथ अपना अटूट संबध बनाए रखते हैं। त्रिलोचन का कहना है कि,'अपनी मुक्ति कामना ले कर लडने वाली/जनता के पैरो की आवाजों में मेरा/हृदय धड़कता है,' (दिगंत, पृ0 65) और 'जो थके हैं, गिरे हैं, हारे हैं/ उनका आत्मीय हूँ सगा हूँ मैं'। [70]

प्रेमचन्द व निराला की पंरपरा में नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन–उन छोटी जोत वाले किसानों, बेज़मीन किसानों और खेत मजदूरों से गहरी सहानुभूति रखते हैं, जो परिवार को जीवित रखने के लिए हाडतोड़ मेहनत करते हैं। निराला को हल जोतते किसान का बैलों को ललकारने की 'बाह बाह' की आवाज़ मे वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ती है .

'सिमटा पानी खेतों का;/ओठ पर चले हल;/
पॉसे खेत, किये जो गये/ जोतकर मखमल।
× × ×
ऐसे बाह-बाह की वीणा/बजी सुहाई,' [71]

केदारनाथ अग्रवाल मानते हैं कि धरती तो सिर्फ किसान की है (न राम या कृष्ण की, न राव या रंक की)–

'जो बैलों के कंधों पर/बरसात घाम में,/जुआ भाग्य का
रख देता है,/खून चाटती हुई वायु में,/ पैनी कुसी खेत के भीतर,/
दूर कलेजे तक ले जाकर,/ जोत डालता है मिट्टी को,' [72]

नागार्जुन का भी स्पष्ट शब्दो मे कहना है कि–

'सर्वसहनशीला अन्नपूर्णा वसुधरा/स्तुति नही,
श्रम कठोर माँगती/चाहती आई है सदा से धरती/
कर्षण-विकर्षण सिंचन परिसिचन/बपन तपन सेवा-सुश्रुषा' [73]

त्रिलोचन ने अवध के कर्मठ किसानी जीवन का चित्रण अनेक कविताओ मे किया है। 'श्रम का सूरज' केदार की कविताओ मे ही नहीं, त्रिलोचन की कविताओ मे भी मौजूद है। वर्षा न होने और नित भयकर घाम होने से जब फसल सूखने लगती है तो किसान-दम्पति अपने बाहुबल का सहारा लेते है और कठिन श्रमपूर्वक बेडी उबाहकर सिचाई करते है–

है धूप कठिन सिर-ऊपर
थम गयी हवा है जैसे
दोनो दूबो के ऊपर
रख पैर खींचते पानी

उस मलिन हरी धरती पर
मिल कर वे दोनो प्रानी
दे रहे खेत में पानी

है अचल पवन, साँसे चल
चल रहा पसीना अविरल
चलती है बेड़ी प्रतिपल
विश्राम नहीं है उनको

है आज नहीं उनको कल [74]

श्रमशील जनता के साथ सीधे जुड़कर ही उनके साथ कवि की समवेदना उपजी है। मुक्तिबोध का भी अनुभव है कि-'विचार आते हैं/लिखते समय नहीं,/... पत्थर ढोते वक़्त/पीठ पर उठाते वक़्त बोझ।' [75]

त्रिलोचन क्रियाशील जीवन से, कर्मठ जीवन से जुड़े हैं, और उनके लिए भाषा भी क्रियाशील जीवन से जुडी है–'भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है,/गति मे क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगंत, पृ0 67) इस क्रियाशील जीवन-भाषा को वे अपने

जनपद के 'लडता हुआ समाज' से जुडकर पाते है और उस मुक्तिकामी समाज की नयी आशा-अभिलाषाओ को नये भाषाई तेवर के साथ पेश करते है

लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा,
नए चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।

(दिगत, पृ0 25)

यहाँ त्रिलोचन की कविता के स्थापत्य का एक महत्वपूर्ण सूत्र उपस्थित हुआ है। कबीर, तुलसी की तरह त्रिलोचन का भी 'अवध' और 'बनारस' रचना-क्षेत्र रहा है। 'लडता हुआ' अवध और बनारस का समाज, उस समाज की नयी आशा और अभिलाषा–यही उनके रचना-क्षेत्र का नया सत्य है।

भारतीय जनता देशी सामती-उत्पीडन और विदेशी शासन के शोषण-उत्पीडन की कठिन परिस्थितियो मे भी अपने साहस, धैर्य और जिन्दादिली का परिचय देती रही है। असगत जीवन-स्थितियो के कारक–देशी और विदेशी शासक-सामतों के ऊपर परिहास और व्यग्य की प्रवृत्ति जनता मे मौजूद रही। भारतेन्दु, बालमुकुद गुप्त और निराला की परपरा मे नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन ने साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के पोषक किंतु अपने को जनता के हित चिंतक प्रदर्शित करने वाले नेताओ, भ्रष्ट अधिकारियों, ढोगी धर्माधिकारियो आदि के ऊपर तीव्र व्यंग्य और परिहास किया। नागार्जुन ने दिल्ली से पार्टी का टिकट लेकर लौटे नेता पर व्यग्य और परिहास करते हुए लिखा .

'स्वेत-स्याम-रतनार' अँखियाँ निहार के
सिडकेटी प्रभुओ की पग-धूर झार के
लौटे है दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले है दाँत ज्यो दाने अनार के
आए दिन बहार के! [76]

इसी तरह त्रिलोचन ने 'चुनाव के दिन' गिरगिट की तरह रग बदलने वाले नेता का व्यंग्य चित्र खींचते हुए लिखा :

इलायची से बसा हुआ रूमाल लगाया
आँखों पर कि बह चले आँसू; और साथ ही
नाम किसान मजूर का लिया, और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया

(ताप के ताए.., पृ0 52)

नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन ने सामाजिक-आर्थिक विषमता का चित्रण किया, जिसके कारण रचनाओं मे स्वाभाविक रूप से व्यग्य का पुट आ गया। ऐसे स्थलो पर व्यग्य ऊपर-ऊपर हास्य लगता है कितु वह अन्तत करूणा उत्पन्न करता है। ऐसा सामाजिक व्यग्य अमानवीय शोषण-सत्ता का सदैव विरोध करता है। नागार्जुन ने एक देहाती मास्टर दुखरन, उसके शिष्यो और मदरसे की तस्वीर कुछ इस तरह खींचा–

घुन-खाए शहतीरो पर की बाराखडी विधाता बॉचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसा कर बेबस बच्चो पर मिनट-मिनट मे पॉच तमाचे
दुखरन मास्टर गढते रहते किसी तरह आदम के सॉचे [77]

ऊपर-ऊपर हास्य लगने वाला यह चित्र अन्तत करूणा जगाता है। इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल ने गॉव के एक सूदखोर महाजन का चित्र खींचा है, जिसमे उसकी 'क्रूरता' और 'हास्यास्पदता' एक साथ चली आई है

वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,
गौरव के गोबर गनेश-सा मारे आसन,
नारिकेल-से सिर पर बॉधे धर्म-मुरैठा,
ग्राम-बधूटी की गोरी-गोदी पर बैठा,
नागमुखी पैतृक सम्पत्ति की थैली खोले,
जीभ निकाले, बात बनाता करूणा घोले,
ब्याज-स्तुति से बॉट रहा है रूपया-पैसा,
सदियो पहले से होता आया है ऐसा!! [78]

1953 ई0 के प्रयाग-कुभ के एक खास स्नान-पर्व के दिन नागाओ के नगा नाच से मचे भगदड में सैकड़ो लोग दब-पिस गए थे। तब उ0प्र0 के तत्कालीन राज्यपाल और प्रसिद्ध साहित्यकार, उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी कुभ-मेले मे पधारे थे। त्रिलोचन भी उस समय कुंभ-मेले मे मौजूद थे और उन्होंने जन-समूह के बीच जाकर सुना–

लाशों की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था
राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही,
. . . .
... . 'वे साहित्यकार हैं',

कहा किसी ने औरत बोली झल्लाई सी-
'बादर होइँ, पहाड होइँ, आपन कपार है'
पति ने कहा,'होश मे बोलो.' 'धुँआधार है
उन के भाषण सस्कृति पर.' 'कोई तो स्याही
जा कर मुँह पर मल देता' 'ये भूमिभार है'

(अरघान, पृ0 73)

वेदना-भाव के बावजूद यहॉ हास्य उभरता है किन्तु अन्तत करूणा उत्पन्न करता है। निराला के यहॉ भी वेदना-भाव के प्रसग मे कही-कहीं हास्य उभरता है, जो अन्तत करूणा ही उपजाता है। यथा- 'सरोज स्मृति' के दु खद-प्रसंग मे कान्यकुब्ज ब्राह्मणो पर किया गया व्यग्य और उपहास, जो अन्तत· करूणा को उद्‌दीप्त करता है-

'वे जो यमुना के-से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यो, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध
उन चरणों को मै यथा अन्ध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नही शक्ति।
ऐसे शिव से गिरिजा विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।' [79]

भारतेन्दु व निराला की जातीय चेतना से जुडकर नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन, मुक्तिबोध आदि ने पूँजीवाद, सामंतवाद, साम्राज्यवाद का खुला विरोध किया। निराला सन् 1946 ई0 में ही कांग्रेस के सबसे प्रगतिशील नेता जवाहरलाल नेहरू के वर्ग-चरित्र और समझौतावादी रूख को पहचान चुके थे-

लेंड़ी जमींदारो को ऑखों तले रक्खे हुए;
मिलों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र,
देश के किसानो, मजदूरो के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।

(नि0र0-2, पृ0 197)

पूॅजीवाद, साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद का खुला विरोध करते हुए नागार्जुन सशक्त शब्दावली मे कहते है-

हॉ बाबू, निष्ठापूर्वक मै शपथ आज लेता हूॅ
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होगे-
हिदू-मुस्लिम-सिख फासिस्टो से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी-
सप्रदायवादी दैत्यो के विकट खोह
जब तक खडहर न बनेगे
तब तक मै इनके खिलाफ लिखता जाऊॅगा
लौह-लेखनी कभी विराम न लेगी।

(युगधारा, पृ0 49)

1943-44 ई. में ही त्रिलोचन भी यह स्पष्ट देख रहे थे कि- 'पूॅजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सब का/जीवन का, जन का, समाज का, कला का'। (धरती, पृ0 98) इसी समय वे साम्राज्यवाद, सामतवाद और व्यक्तिवाद के विरूद्ध सघर्ष के लिए जनता का आह्वान करते हुए कहते हैं-

तुम बढ़ो जिस तरह दीप्त ज्वाल
कर दग्ध रूढि का अन्तराल
साम्राज्यवाद
सामतवाद
औ' व्यक्तिवाद
जो बॉध रहे गति जीवन की कर उन्हे नष्ट
तुम सामाजिक स्वातन्त्र्य-साम्य को करो स्पष्ट
होवे स्वतन्त्र नारी-नर
हो सामजस्य अमलतर

(धरती, पृ0 16)

केदारनाथ अग्रवाल ने भी 1948 ई0 में ही ब्रिटिश उपनिवेशवाद से हाल में मुक्त हुई भारतीय जनता को अमेरिकी साम्राज्यवाद के नये खतरे के प्रति आगाह किया था-

यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आयेगा डालर ./ वह
अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे मे, /भारतीय पूँजीपतियो
से साँठगाँठ कर,/क्रय दिल्ली की राजनीति को कर लेगा,/
नेहरू और पटेल आदि की मति हर लेगा।

(कहे केदार खरी खरी, पृ0 50)

त्रिलोचन ने 'गुलाब और बुलबुल' (1956 ई) सग्रह मे जो गजले लिखी है, वे उर्दू की नहीं हिन्दी की गजले है। वे मीर, गालिब के रास्ते पर नहीं, प्रसाद, निराला, शमशेर की रौ की गजले है। दरअसल त्रिलोचन ने निराला और शमशेर की तरह ही हिन्दी गजल की परपरा को अपने ढग से विकसित करने का काम किया है। उन्होने अपनी गज़लों मे हिन्दी का संस्कार दिया है, लेकिन उनके वाक्य-गठन में वे कोई खामी नहीं छोडते, और इस तरह उनमे उर्दू की प्रमुख विशेषता बरकरार रखते है। निराला की तरह ही त्रिलोचन ने अपनी गजलो मे आम लोगों के अभाव, बेबसी के साथ ही, अपनी भौतिक बेबसी का बयान एक खास तरह के जनपदीय तेवर के साथ किया है- 'बिस्तरा है न चारपाई है/जिन्दगी खूब हमने पाई है/ ××× कच्चे ही हो अभी त्रिलोचन तुम/ धुन कहाँ वह सँभल के आई है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ0 41-42) त्रिलोचन के कुछ गीतो पर भी निराला का प्रभाव है। निराला के अनेक गीतो की तरह 'धरती' सग्रह के गीतो मे खेतिहर जीवनचर्या का उल्लास और संत्रास विश्वसनीयता के साथ वर्णित, व्यजित और चित्रित हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिलोचन, कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, निराला आदि की जातीय चेतना व जातीय परपरा से निकटता से जुड़े है, और उनके समान ही लोक जीवन से जुडकर लोकभाषा, लोकलय और लोककंठ मे बसे छंद के माध्यम से युग-जीवन का चित्रण करते हैं। लोक सम्पृक्ति के बल पर उन्होंने ठेठ अवधी बोली की सर्जनात्मक क्षमता से खड़ी बोली को और अधिक आत्मीय, और अधिक व्यंजना-क्षम बना दिया है। उनकी मुक्त छद की कविताओं में, गीतों मे लोक लयों का निर्वाह व लोकगीतों की सहजता, भाव-तरलता मिलती है। रोला, बरवै, कुंडलिया जैसे जातीय छंदों के अनुशासन में बँधी कविताएँ जनपदीय भाषा की जीवन्तता और लोक की व्यापक जीवनानुभूतियों से जुड़कर, सहज बोधगम्यता के साथ मार्मिक प्रभाव डालती है। अपने सॉनेटों को उन्होने हिन्दी के

जातीय छद रोला के मात्रिक सगीत मे ढालकर, उसे हिन्दी की आन्तरिक लय के बहुत नजदीक ला दिया है।

समग्रत हम कह सकते है कि त्रिलोचन अपने समानधर्मा कवियो-नागार्जुन, केदार-के समान ही कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, गालिब, निराला की जातीय परपरा से जुडकर, हिन्दी जाति की सघर्षशील चेतना से जुडे हुए जातीय कवि है।

संदर्भ :

1 रामविलास शर्मा 'भारतीय सस्कृति और हिन्दी प्रदेश' भाग-2, परिशिष्ट-दो, पृ0 719 (प्रथम सस्क0 - 1999 ई0)
2. वही, पृ0 719
3 वही, पृ0 720
4 वही, पृ0 335
5 वही, भूमिका, पृ0 7
6 वही, परिशिष्ट - दो, पृ0 726
7 रामविलास शर्मा · 'भारत मे अग्रजी राज और मार्क्सवाद' खण्ड-2, पृ0 234 (सस्क0- 1982)
8 रामविलास शर्मा : 'भारतीय सस्कृति और हिन्दी प्रदेश' भाग-2, परिशिष्ट-दो, ऐडरसन की मान्यता, पृ0 703
9. रामविलास शर्मा · भारत की भाषा समस्या, पृ0 292 (संस्क0- 1978)
10. वही, पृ0 87
11 रामविलास शर्मा 'भारतीय सस्कृति और हिन्दी प्रदेश'. भाग-2, पृ0 404
12. वही, भूमिका, पृ0 7
13. रामविलास शर्मा . निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ0 69
14 त्रिलोचन . दिगंत, पृ0 68 (द्वितीय संस्क0 1996)
15 रामविलास शर्मा . 'रूपतरग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि', पृ0 274 (प्रथम सस्क0 1990)
16. त्रिलोचन और शम्भू बादल की बातचीत, साक्षात्कार-जून-जुलाई '84, पृ0 123
17. मैनेजर पाण्डेय, उद्धृत–हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका सपा0 प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ0 76 (सस्क0 1995)
18 तुलसी ग्रन्थावली (ना0प्र0सभा): खण्ड-2, कवितावली, उत्तरकाण्ड, पृ0 106
19. तुलसी ग्रन्थावली (ना0प्र0सभा): खण्ड-1, मानस, पृ0 115
20. त्रिलोचन से कवि विजेन्द्र की बातचीत, सापेक्ष-38, 1996, पृ0 685
21. त्रिलोचन जी से अजीत प्रियदर्शी की बातचीत, सागर, 6-2-99
22. रामविलास शर्मा : 'रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि', पृ0 258 (प्रथम संस्क0 1990)
23. सापेक्ष-38, 1996, पृ0 332
24. त्रिलोचन और शम्भू बादल की बातचीत, साक्षात्कार. जून-जुलाई- '84, पृ0 126

25 त्रिलोचन ताप के ताए हुए दिन, पृ0 49 (द्वितीय सस्क0 1996)
26 त्रिलोचन उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 17 (प्रथम सस्क0 1981)
27. कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एगेल्स धर्म, एशिया पब्लिशर्स लखनऊ, 1965, पृ051
28 त्रिलोचन अमोला , पृ0 11 (प्रथम सस्क0 1990)
29 त्रिलोचन और शम्भू बादल की बातचीत, साक्षात्कार. जून-जुलाई- '84, पृ0 125
30 त्रिलोचन से मगलेश डबराल की बातचीत, सकलित-'त्रिलोचन के बारे मे' पृ0 244 (प्रथम सस्क0 1994)
31 फूल नाम है एक त्रिलोचन, पृ0 24 (प्रथम सस्क0 1985)
32. प्रतिनिधि कविताएँ मुक्तिबोध, पृ0 141 (राजकमल पेपरबैक्स, सस्क0 1991)
33 त्रिलोचन और शम्भू बादल की बातचीत, साक्षात्कार जून-जुलाई '84, पृ0 125
34. जीवन सिंह, सापेक्ष-38, 1996, पृ0 183
35. रामचरितमानस, लंकाकांड, पृ0 547 (गीताप्रेस, गोरखपुर)
36. अरघान त्रिलोचन, पृ0 65 (द्वितीय सस्क0 1998)
37. भारतेदु ग्रन्थावली . पहला खड (सपा शिव प्रसाद मिश्र 'रूद्र'), पृ0 134, (द्वितीय सस्क0 सवत् 2031)
38. हिंदी कविता की प्रगतिशील भूमिका सपा0 प्रभाकर श्रोत्रिय, सस्क0 1995 ई0, पृ0 97 पर उद्धृत
39. अनकहनी भी कुछ कहनी है त्रिलोचन, पृ0 73 (प्रथम सस्क0 1985)
40. प्रेमघन सर्वस्व, भाग-एक, पृ0 48 (प्रथमावृत्ति सवत् 1996 वि0)
41. भारत भारती : मैथिलीशरण गुप्त
42. नरेन्द्र सिंह : साठोत्तरी कविता मे जनवादी चेतना, पृ0 62
43. 'राष्ट्रीय मंत्र' कविता, सनेही रचनावली, पृ0 110 (प्रथम सस्क0 1984 ई0)
44. वही, पृ0 199
45. श्रीधर ग्रन्थावली, पृ0 445
46. डॉ0 रामविलास शर्मा: महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, पृ0 350
47. अजय तिवारी : नागार्जुन की कविता, पृ0 15
48. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग-2, पृ0 552
49. निराला रचनावली : भाग-1, पृ0 288 (प्रथम संस्क0 1983)
50. निराला की साहित्य साधना : भाग-2, पृ0 542
51. निराला रचनावली : भाग-1, पृ0 309
52. निराला रचनावली : भाग-2, पृ0 186

53 गुलमेहदी केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 164
54 आलोचना 86, जुलाई- सित0 1988, पृ0 9
55 त्रिलोचन से महावीर अग्रवाल की बातचीत, सापेक्ष - 38, 1996, पृ0 678
56 प्रतिनिधि कविताएँ नागार्जुन, पृ0 35 (तृतीय सस्क0 1988)
57. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अगवाल डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 206 (प्रथम सस्क0 1986)
58 'उस जनपद का कवि हूँ' त्रिलोचन, पृ0 96 (प्रथम सस्क0 81)
59. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 225
60 प्रेमलता वर्मा के नाम त्रिलोचन का पत्र, सापेक्ष · 38, 1996, पृ0 316
61. विश्वनाथ त्रिपाठी, जनसत्ता (रविवासरीय, नई दिल्ली) . 2 सित0 2001
62. राग-विराग . सपा0 रामविलास शर्मा, पृ0 69 (सस्क0 1997)
63 वागर्थ, मार्च 98, पृ0 10 पर उद्घृत
64. त्रिलोचन के बारे मे सम्पा0 गोबिन्द प्रसाद, पृ0 18 (प्रथम संस्क0 1994)
65. राग विराग संपा0 रामविलास शर्मा, पृ0 62
66 युगधारा नागार्जुन, पृ0 93
67. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल संपा0 रामविलास शर्मा, पृ0 202-03
68. पुरानी जूतियो का कोरस नागार्जुन, पृ0 9-10
69. प्रगतिशील काव्यधारा और कदारनाथ अग्रवाल, पृ0 186
70. गुलाब और बुलबुल · त्रिलोचन, पृ0 6 (प्रथम सस्क0 1956)
71. निराला रचनावली . भाग-2, पृ0 185-86
72. गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 56
73. आजकल, स्वर्ण जयंती अक, 1994, पृ0 101
74. धरती . त्रिलोचन, पृ0 18 (द्वितीय सस्क0 1977)
75. प्रतिनिधि कविताएँ . मुक्तिबोध, पृ0 186 (चौथा संस्क0 1991)
76. प्रतिनिधि कविताएँ: नागार्जुन, पृ0 104
77. वही, पृ0 98
78. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल : संपा0 रामविलास शर्मा, पृ0 205-6
79. राग-विराग, पृ0 88

त्रिलोचन का भाषा-संसार, भाषिक संरचना और छंद विधान

त्रिलोचन शास्त्री भाषा पर बहुत जोर देते है। 'सब कुछ सब कुछ सब कुछ सब कुछ सब कुछ भाषा' (दिगत, पृ0 67)–कहने वाले त्रिलोचन के लिए भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र न होकर, उस जीवन को समग्रता से जानने का साधन भी है, जिसकी अभिव्यक्ति भाषा के जरिए वे कविता मे करते है। उनके लिए 'भाषा की लहरो मे जीवन की हलचल है,/ गति मे क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगत, पृ0 67) यानी जिस भाषा मे जीवन होगा उसी मे गति यानी जीवंतता होगी और उसी मे भावाभिव्यक्ति की पूरी सामर्थ्य होगी। जिस भाषा मे जीवन की हलचल मौजूद नहीं है वह त्रिलोचन के काम की चीज नहीं। 'भाषाओ के अगम समुद्रो का अवगाहन' करते हुए वह उस जीवन मे ही गहरे पैठते है। जीवन से अलग न भाषा है, न शब्द। अपनी कविता मे वह जीवन की हलचल युक्त भाषा देना चाहते है। इसके लिए वह समाज के बीच गहरे पैठते है और 'ध्वनिग्राहक' की तरह 'समाज मे उठने वाली ध्वनियो को पकड लिया करते है।' समाज के बीच उठने वाली ये ध्वनियॉ या शब्द जीवन से युक्त होती हैं। इसी कारण त्रिलोचन कहते हैं-

> शब्दो मे भी हाड, मांस है, जीवन धर कर
> वे भी जीवधरियो के स्वरयंत्र सॅभाले
> स्फुट, अस्फुट दो धाराओं में प्रवहमान है।

'शब्द' वास्तव मे त्रिलोचन जी के लिए उस समाज की जीवित सत्ता है जिसमे वह प्रचलित है। शब्द उनके लिए जन है। जैसे कोई जन उनके लिए न तो हेय है, न तुच्छ या अपांक्तेय; वैसे ही उन्हें कोई शब्द न तो छोटा लगता है न ही निस्सार या मूल्यहीन। शब्दों के माध्यम से वे जीवित-स्पदित जन का, दुःख-संघर्ष और उल्लासमय मानव का साक्षात्कार कराते हैं। वस्तुतः वे जीवन में घुल-मिले शब्दों को टोहते हैं और उन शब्दों के सहारे जीवन की तलाश करते हैं– 'शब्द शब्द से व्यंजित जीवन की तलाश में कवि भटका करता है।' (शब्द, पृ0 35) इस प्रकार त्रिलोचन के लिए 'शब्द' का अर्थ–'जीवन से घनिष्ठ साक्षात्कार' है।

त्रिलोचन की भाषा 'सक्रिय शब्द का समाज' के रूप में सामने आती है। त्रिलोचन का मानना है कि 'भाषा का इस जीवन से चोली दामन का साथ है।' (अनकहनी भी

कुछ कहनी है, पृ0 78) इसलिए जीवन जगत से दूर, और कई बार केवल कोशो मे सुरक्षित भाषा त्रिलोचन के लिए ग्राह्य नहीं। क्योकि 'कोई समझ न पाए अगर तुम्हारी बोली/ तो उस बोली का मतलब क्या, मौन भला है।' (अनकहनी भी .,पृ0 78) इसीलिए उन्होने दूसरो की तरह बडे-बडे शब्दो मे बडी-बडी बातो को कहने की आदत नही डाली। उनकी भाषा का गहरा संबध जीवन की क्रियाशील एव जीवित भाषा से सतत रहता है, और वह भाषा जीवन के विपुल व विविध अनुभवो से निर्मित होती है।

वास्तव मे त्रिलोचन आधुनिक सभ्यता के बीच उपेक्षित और परित्यक्त जनो के जीवन से रस खींचते हैं, उनसे हृदय-संवाद स्थापित करते है और उनकी उपेक्षित जीवन-भाषा को आदर देते हुए उसमें कविता रचते है

.... .रस जीवन का जीवन से खीचा,
दिए हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा
उस को आदर दिया. मरूस्थल मन का सींचा[2]

त्रिलोचन ने उपेक्षित भाषा अर्थात् उपेक्षित जीवन को आदर दिया। इसलिए उनकी कविताओं मे उन आहत और युद्धरत शब्दों की जीवत उपस्थिति है, जो लोक जीवन में लगातार धड़क रहे हैं। उनकी कविता-भाषा में स्थानीय सदर्भ, जीवन से गहरे जुडे शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियॉ प्राय· आती है। वे जानते है कि सामान्य जनो की भाषा मे ताजगी और मौलिकता बनी रहती है। अत अशिक्षित और अपढ जनो के बीच रमकर उन्होने भाषा का मूल और सही रूप पाया। अवधी, भोजपुरी आदि के खाटी शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियो आदि का अपनी कविताओ मे अत्यत सार्थक प्रयोग कर उन्होने भाषा और अभिव्यक्ति को नयी क्षमता और नया तेवर प्रदान किया। वास्तव में त्रिलोचन अपनी कविता-भाषा में जनभाषा के शब्दो, पदो, मुहावरो आदि का प्रयोग विजातीय की तरह नहीं बल्कि, सजातीय की तरह बेहिचक करते हैं। इस प्रक्रिया में उनका आदर्श अदि कोई कवि हो सकता है तो वह तुलसीदास ही हो सकते है। शब्दो की पहचान और उनके प्रयोग की क्षमता त्रिलोचन ने तुलसी से सिखा है। इसे वह स्वीकार भी करते हैं :

तुलसी बाबा, भाषा मै ने तुम से सीखी,
मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो,[3]

तुलसी ने जनभाषा के सौन्दर्य को जिस तरह पहचाना था, वैसा उनके पहले या बाद मे किसी ने नहीं पहचाना। तुलसी से त्रिलोचन ने लोक जीवन, लोक-तत्त्व की पहचान करने का गुण सीखा, और सीखा- जनपदीय भाषा, लोक मे प्रचलित शब्द, पद और मुहावरो के प्रयोग की अनूठी क्षमता। इसके साथ ही त्रिलोचन ने अभिव्यक्ति-चुस्ती, सटीक और अनूठे शब्द प्रयोग, निर्दोष वाक्य-गठन, सवाद-गठन और व्यजक भाषा आदि के गुण तुलसी से सीखा। जैसे तुलसी ने लोक बोली अवधी का सस्कार किया–सस्कृत और अन्य बोलियो के जीवत मिश्रण से, वैसे ही त्रिलोचन ने खडी बोली हिन्दी की काव्य-भाषा को लोक बोली अवधी की जीवत अभिव्यक्तियो, शब्दो, पदो, मुहावरो के प्रयोग से अधिक आत्मीय, सरस और अधिक अभिव्यंजनाक्षम बना दिया। ठेठ अवधी-जीवन के कवि होने के कारण उन्हे अवधी बोली की सर्जनात्मक क्षमता की गहरी पहचान है। इस कथन के उत्कृष्ट उदाहरण 'अमोला' सग्रह के वे हजारो 'अवधी' बरवै है, जिनमे कवि ने अवधी जीवन के बहुविध चित्रो, मनोभावो और अनछुए सन्दर्भों को अवधी के ठेठ शब्दों, पदो, मुहावरो से युक्त मिठी खांड - सी भाषा मे बेजोड ढग से अभिव्यक्त किया है।

त्रिलोचन की 'यह तो सदा कामना थी, इस तरह से लिखूँ/ जिन पर लिखूँ, वही यो अपने स्वर में बोले', ('उस जनपद का कवि हूँ', पृ0115) इसलिए उनके पहले काव्य-संग्रह 'धरती' ('45) की 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' कविता मे चम्पा स्वयं बोलती है–अपनी बोली- ठोली, बातचीत के लहजे और मुहावरे के साथ। सन् 1940-41 के आसपास जब यह कविता लिखी गई, उस समय हिन्दी कविता में हर तरह की चालू काव्यभाषा से अलग, यह एकदम नयी काव्यभाषा थी। बातचीत के शब्द, लहजे, मुहावरे इस कविता-भाषा मे सहज ही आते है। यथा- 'अच्छर', 'चीन्हती', 'अचरज' 'कागद ही गोदा करते हो दिन भर', 'हारे गाढ़े काम सरेगा', 'कलकत्ते पर बजर गिरे' आदि। त्रिलोचन को इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तराशी गई भाषा में तराशा जीवन ही अभिव्यक्त हो सकेगा; चम्पा, भोरई, नगई महरा का जीवन नहीं। उन्होंने चित्र और चरित्र के अनुरूप भाषा का व्यवहार किया है।

'चम्पा...' कविता के तीस-बत्तीस वर्ष बाद लिखी गई कविता 'नगई महरा' की भाषा मे लोक-बोली 'अवधी' का पुट और भी गहरा है। बातचीत का स्वाभाविक लहजा विद्यमान है और लय भी सुरक्षित। जन रागों में गहरे धंसकर, शब्दों के मूल उत्स को पहचान कर त्रिलोचन ने वहॉ से उठाकर भाषा-प्रयोग द्वारा उनमें नया जीवन भर दिया

है। त्रिलोचन इस बात को गहराई से जानते है कि साधरण कद-काठी के और एक सामान्य अर्थवाले 'शब्द' को उसके मूल उत्स से जोडकर प्रयोग किया जाता है तो उसकी अर्थवन्ता असाधरण प्रभाव की हो जाती है।'[1] 'नगई महरा' कविता मे जगह-जगह इस प्रयोग-सामर्थ्य को देखा जा सकता है- 'बच्ची गोहनलगुई थी', 'घरनी सेदुर से मिली नहीं थी धरौवा कर लिया था', 'पानी थाम लिया था', 'पूरा परिवार मैने देखा पैरो पैरो है', 'दैव ने मुॅह चीर दिया है उस मे कुछ देने को हाथ तो चलाना है', 'मै ने इस घर मे टुन्न पुन्न नहीं देखी', 'उबेने पॉव चलना कठिन होता है', 'नई बात से अनकुस होता ही है मन हाल रहा था', 'मैने हाथ मुॅह फरचाए',' 'नगई खॉची फॉदे बैठा था' आदि। इस प्रकार के शब्द- प्रयोग इस लबी कविता मे प्राण की तरह प्रवाहित होते दिखते है। इस कवितामेत्रिलोचन ने 'नॅह जोडना' जैसे मुहावरे को लेकर अपने रागात्मक प्रयोग के जरिए नया अर्थ ला दिया है– 'इज्जत मै क्या दूॅगा/ फिर भी दसो नॅह जोडे/ खडा ही मिलूॅगा' (ताप के ताए हुए दिन , पृ0 74)।

भाषा की यह रागात्मक पहचान त्रिलोचन ने तुलसी से सीखा है। तुलसी की तरह त्रिलोचन भी जन के बीच रमकर, जन की अनुभवसिक्त भाषा के शब्दो, पदो, मुहावरो को मूल रूप में प्रयोग करते हैं- इस ढग से कि कविता-भाषा आश्चर्यजनक ढंग से प्रभावोत्पादक हो जाती है। इसीलिए उनकी कविता के शब्द प्राणवान होते है, लोक- अनुभूति की स्मृतियों के रिकार्ड होते हैं तथा ऐसे शब्द जीवन का मर्म समझा जाते हैं । त्रिलोचन शब्दों को मॉजने एवं उनके मॅजे हुए रूपो पर विश्वास नहीं करते जीवन से सद्य जुडे, ताजे-टटके भाषा रूपों को कविताओं में ऐसे प्रयोग-सामर्थ्य से जड़ देते है कि वह एक नयी चमक, नया अर्थ और नवीन प्रभाव को पैदा कर देता है। वह बखूबी जानते है कि कौन शब्द कैसे बजते हैं, उनसे कैसी ध्वनि निकलती है और कौन शब्द कितने प्रभाव वाला है। अपनी कविताओ मे त्रिलोचन जीवित ही नही बल्कि, स्वयं बोलने- बतियाने वाले शब्द प्रयुक्त करते हैं। ऐसा उनकी इस काव्य- प्रतिज्ञा के कारण भी होता है कि- 'मैं तुम से, तुम्हीं से, बात किया करता हूॅ/ और यह बात मेरी कविता है'। (ताप के ताए दिन.., पृ0 61) वास्तव में 'सब की बोली-ठोली/ लाग लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा/ भाव, आचरण, इंगित'- यह सब त्रिलोचन के भाषायी कसावट मे संश्लिष्ट- सहायक होकर ही आता है।

'भाषा का सबसे समृद्ध रूप जन-साधारण की अपनी बोलियो मे ही निहित रहता है'- गोर्की की इस मान्यता से त्रिलोचन पूर्णत सहमत नजर आते है और बोलियो से उपयुक्त , अनूठे शब्द ग्रहण कर काव्यभाषा को सम्पन्न बनाने के हिमायती है। लेकिन बोलियो के शब्दो, मुहावरो, कहावतो का प्रयोग वे 'स्थानीयता' के मोहवश नहीं करते वरन् अभिव्यक्ति की मॉग, परिवेशगत मॉग के सन्दर्भ मे और समर्थ अभिव्यक्ति की तलाश मे, करते है। उनकी काव्यभाषा हिन्दी जाति के जीवन व्यवहार की समीपी भाषा है और उनके शब्द-सयोजन मे बातचीत की लय और लहजे से पूरा दृश्य बनता है। लोक-सवेदना और जनजीवन से गहरे जुडकर ही त्रिलोचन की काव्यभाषा निरतर जीवत बनी रह सकी है, क्योकि उसका स्रोत कभी सूखता नहीं। उनकी काव्यभाषा का चरित्र लोकधर्मी है। लोकभाषा का जैसा ललकपूर्ण सटीक प्रयोग उनकी कविताओ मे मिलता है वैसा शायद ही किसी दूसरे आधुनिक कवि में मिले। अवधी-जीवन मे गहरे जुड़े अनेक शब्दो का प्रयोग त्रिलोचन ने हिन्दी कविता- ससार मे शायद पहली बार किया है। ठेठ अवधी में लिखे बरवै-सग्रह 'अमोला' तो ऐसे शब्दो का खजाना है। अन्य काव्य- सकलनो मे भी जहॉ- तहॉ ऐसे शब्दो का ललकपूर्ण प्रयोग देखने को मिलता है। यथा –

बेड़ी, पेड़की, किलहटा, महोख, लहटोरे, रान-परोसी, चीन्हती, बजर, लूकी, कपसीले ('धरती' संग्रह मे) सॉसत, अंटी, चग, सुच्चा, रेड, झापस, तडी-तापडी, खाम, कूचे, पटेले, पोने, तईं, ('गुलाब और बुलबुल' संग्रह में) चिल्ला जाडा, झेंपू, अलाय-बलाय, हडहड़-भड़भड, ठुनका-ठुनकी, र्रे, गहगहे, सीकर, फूलसुॅंघनी, कनई, धाया-धूपा, झॉसा,दमपट्टी, दन्दाया, चीन्हा, हिरा, फुराया, रमरमी, ढिकला, सिकला, अन्दोर ('दिगन' संग्रह में) गाजते, टिहटा, आरर-डाल, अरेरा, धरौवा, टुन्न-पुन्न, उबेने, उबहनी, बराई, पोढ, संभर, अब्दों, लोथ, खुचड़, अढ़ुकन, ईनार, छनिहर, अनकुस, बेठन, फॉदे, हसलोना, बकैयॉ ('ताप के ताए हुए दिन') ऑजे, टो कर, घमौनी, पाही, परिखाओं, खूॅंदा-खूॅंदी, फूँदा, ओप, गहागह, केकी, पाखी, छौना, हुन, पॅहटा,सलटा, गॉस, ढोके, पौली-पौली, उरेहता, ('शब्द' संग्रह में) चेते, ढनक, बल बावस, फुन्नइत, ग्वैड़े, चह, ढेसर, थेथर, हला, मुसे, रमक, गॉस-फॉस, भौर, फुलचुसकी, फरियाई, किचोई, राढ़े, टूसे, सालन, कोल्हाड़, झॉवर, काढ़ा, भाथी, पलिहर, समौरी, जिढ़ी, गुलौर, चोंका, हिलगी, चिचोड़ी, अहरी, अनखाय, पिन्हा, खूखी, ढकुलाही, खोंता, झॅसा, हियाव, दॉताकिलकिल ('उस जनपद का कवि हूँ')।

ढूसे, खहरा, करमकटा, मुखार, सुखवन, उकस-पुकस, फोंफर, मछेह, हुलुक्का, दरेरा,

टसाई, जीमे, असीसती, व्याई, दूनरी, टक्कबाई, सोसती सिरी, कोराती ('अरघान' सग्रह) मनचीते, ऊना, लोढ लाना, टोटा ही टोटा, जुडाती, पसु परानी, बिथा, उमगा ('तुम्हे सौपता हूँ') कल्ही, भुस, बधुर, चरबॅहियॉ, डाभी, पोई, दॉजारेसी, भरभड, लोझा, अक्की बक्की, कल्ले कल्ले, टेनी, बकार ('अनकहनी भी कुछ कहनी है') अकन, घोचूॅ, पैया, पुरेसा, ऊमी, ऑठी, परिको, डहडही, टीह-टाह, ऐचा ब्यौचा, ('फूल नाम है एक') उटक्कर, झीसी, झिर्री, चिर्री, उन्हार ('चैती' सग्रह)।

ऐसे खाटी लोक शब्दो का इस्तेमाल त्रिलोचन जैसा जनकवि ही कर सकता है। उनकी कविता मे अवधी की सज्ञाओ और क्रियापदो का प्रयोग उनके देशज और स्थानीय रूप मे हुआ है। त्रिलोचन की कविता-भाषा मे स्वाभाविक रूप से खाटी हिन्दी के मुहावरे आते हैं, जो उनकी भाषा को आत्मीयता की मिठास और अनूठापन प्रदान कर देते हैं। उदाहरणार्थ- 'देखते हुए मक्खी लीलते नहीं बनता', 'हारे गाढे काम सरेगा' ('धरती') 'तुम झॉसा किसी और को देना', 'तेली के बैल सरीखा फेरा'('दिगत') 'जग मे किस का घर और घराई हुई', 'जिस ने जिस का खाया उसने उस का गाया', 'उबेने पॉव चलना', 'धरौवा कर लिया', 'दसो नॅह जोडे', 'भात देना होगा' ('ताप के ताए हुए दिन'), 'झख मार रहा था', 'जैसे उन्हें टक्कबाई है', 'केवल तेल लगाना अगर जरा आ जाय' ('अरघान'), 'पुआल से डाभी कहॉ हुई है', 'गारे कौन पसीना', 'सारी अक्की बक्की भूल गई', 'यदि पन में पानी हो', 'फूलो को उतारना कितना शात काम है', 'जो मीनमेख कर ठहर गये वे मरे', 'प्राप्त सुखों पर कोई डीठ गडा दे', 'अपनी गोटी देख रहे हो', 'क्यो हिलाइये हाथ, पॉव भी क्यों पिराइये' ('शब्द'), 'मिठाई मन मे पाग उठी थी', 'नित्य कुऑ खोदना तब कहीं पानी पीना', 'करता है दॉताकिलकिल' ('उस जनपद का कवि हूँ'), 'उटक्कर ही मारती है तू' ('चैती'), 'ऊॅटों के ब्याह मे गधों की रीति निबाहे चले चलो', 'आज डीठ डहडही हो गई' ('फूल नाम है एक')...आदि। कभी-कभी त्रिलोचन की कोई कविता-पंक्ति लोकोक्ति का स्वाद देने लगती है यथा- 'आरर डाल नौकरी है यह बिल्कुल खोटी' ('ताप के ताए हुए दिन)।

समग्र जीवन को उदार भाव से अपनी संवेदना में समेटने वाले कवि त्रिलोचन की भाषा भी सक्रिय जीवन से जुड़ी है। उनकी प्रवहमान, गतिमय जीवन-भाषा मे तत्सम-तद्भव ही नहीं, देशज शब्द तक–एक दूसरे को अपांक्तेय नहीं मानते बल्कि– एक-दूसरे से घुले-मिले रहते हैं। उनकी कविता में अवधी बोली और संस्कृत के ऐसे अनेक शब्द भी आते हैं,

जो व्यवहार मे नहीं है। किन्तु कविता मे आकर ऐसे शब्दो को नया जीवन मिलता है तो कविता को नयी चमक और अर्थ गाभीर्य। लोकजीवन या कविता मे चला हुआ पुराना से पुराना शब्द जिसे पूर्ववर्ती कवियो ने अनचला या खोटा करार दे दिया हो, वह त्रिलोचन की कविताओ मे भाषा-प्रयोग के जरिए नई जिन्दगी और नवीन अर्थ-सामर्थ्य पा लेता है। उनके इसी गुण के कारण फणीश्वरनाथ रेणु ने उन्हे 'सबदयोगी' कहा। कवि केदारनाथ सिह ने कहा है- "त्रिलोचन की कविता मे बोली के अपरिचित शब्द जितनी सहजता से आते है, कई बार सस्कृत के कठिन और लगभग प्रवाहच्युत शब्द भी उतनी ही सहजता से कविता मे प्रवेश करते है और चुपचाप अपनी जगह बना लेते है। वस्तुत त्रिलोचन, 'हिन्दी' शब्द सेजिस विपुल-भाषिक सम्पदा का बोध होता है, उसकी सम्पूर्णता को अपनी रचनाशीलता के विविध स्तरो पर पकडने और उद्घाटित करने वाले कवि है- एक ऐसे कवि जिनके यहॉ भाषा की श्रेणियॉ नहीं बनायी जा सकती।" [5]

त्रिलोचन अपनी कविता मे शब्द-प्रयोग के मामले मे कभी झोल नहीं खाते। कोई शब्द यदि उनकी कविता मे कहीं है तो वह इसलिए वहॉ है क्योकि उसके अतिरिक्त कोई और शब्द वहॉ हो ही नहीं सकता।[6] चाहे वह शब्द मानक हिन्दी का हो, चाहे हिन्दी की किसी बोली का, या फिर सस्कृत का। शब्दों के चयन की सतर्क दृष्टि निराला के बाद त्रिलोचन के यहॉ ही अपने उत्कृष्ट रूप मे मौजूद है। उदाहरण के लिए, त्रिलोचन अपनी कविता में एक जगह लिखते हैं- 'भरी रात भादों की'। इस 'भरी' की जगह अगर हम 'बादल छाई हुई रात' करें तो इस 'भरी' का जो व्यजनार्थ है, वह जाना रहेगा। 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'भोरई केवट के घर', 'नगई महरा' आदि कविताओ के अतिरिक्त 'उस जनपद का कवि हूॅ' और 'शब्द' सग्रह के अनेक सॉनेटो मे शब्दो के इस 'अद्वितीय' चयन को देखा जा सकता है। अनेक कविताओं में हिन्दी के सरल, सहज शब्दो के बीच प्रयुक्त संस्कृत के शब्द पूरे वाक्य को झंकृत कर देते है और आगे-पीछे, दोनो ओर प्रकाश फेंक कर उसे जगमगा भी देते हैं। यथा- 'शब्द' संग्रह के एक सॉनेट में- 'जुड़ा करेगी/जनतरंगिणी अपने नूतन रंग दिखाती'। यहॉ 'जनतरंगिणी' शब्द नादपूर्ण होने के साथ-साथ अपना प्रकाश दोनों ओर फेंक कर पूरे वाक्य को जगमगा देता है। 'शब्द' संग्रह से ही एक और उदाहरण लेते हैं : 'लगता है जैसे बादल के/ छोटे छोटे टुकडे खगाकार ये चल के/अपनी चाल दिखाते हैं।' (सानेट सं0 17) यहॉ संस्कृत के शब्द 'खगाकार' के प्रयोग से जो स्पृहणीय संक्षिप्तता लायी गयी है, वह हिन्दी के

किसी शब्द से सभव नहीं थी। त्रिलोचन अपनी कविताओ मे कई जगह सस्कृत के शब्दो के साथ अवधी के शब्दो का प्रयोग कर उन्हे गतिशील कर देते है, जिससे भाषा जड नहीं हो पाती। यथा-'शब्द' सग्रह के एक सॉनेट मे- 'सुन्दर ऑखे, विलुलित वेणी और चलावा'। इसमे 'विलुलित वेणी' को अवधी के 'चलावा' शब्द ने गतिशील बनाया है।

जनपदीय शब्दावली ने यदि त्रिलोचन की भाषा को अतिरिक्त सवेदनीयता, आत्मीयता प्रदान की है तो जहॉ तक वर्तमान जीवन का प्रसार है, उन सभी क्षेत्रो से शब्दो को ग्रहण कर उन्होने अपने शब्द-भडार को व्यापक तथा भाषा को आधुनिक रूप दिया है। यथा-

सैनिक बूट विशाल एक हम भी बनवा ले,
जितना यह आकाश बडा है, फिर हो जाऍ
खड़े देख कर छॉह, अनिच्छा हो-सो जाऍ,
किसी तरह भी वास करे। मन को मनवा ले,
खाई से ही त्रास मिटेगा, हम खनवा ले,
मर जाऍ तो खैर-नहीं तो फिर बो जाऍ
हम रक्षा के रामबाण, चाहे खो जाऍ
सुरुचि, शील, सौजन्य–वितान नए तनवा ले
जिस से अपने प्राण न धरती से उड़ जाऍ।
अमेरिका, इंग्लैड, रूस जो आज बड़े है।
हेतु यही है, आज विशाल बूट की छाया
के नीचे संसार समेटे हैं..[7]

यहॉ दूसरे महायुद्ध का परिवेश विशाल चित्रमयता और विराट सत्ता के आतंक के रूप में मौजूद है। परिवेश के अनुकूल युद्ध व राजनीति के अनेक शब्द कविता में आए है- दंड, सैनिक बूट, खाई, त्रास, रक्षा, रामबाण आदि। अपनी कविताओं मे शब्द चयन के मामले में अत्यन्त सतर्क होने के कारण ही आश्वस्त भाव से त्रिलोचन ने कहा है-

कुछ होगे आगे भी
जिन का नाता होगा शब्दों से
वे ही उन शब्दों को देखेगे
जिन्हें मैं ने
बॉधा है [8]

त्रिलोचन की काव्यभाषा मे एक ओर बोलचाल की सामान्य, सार्वजनिक भाषा का सौन्दर्य दिखाई देता है तो दूसरी ओर उसमे कहीं-कहीं अवधी और सस्कृत के शब्द-प्रयोगो मे निजी सृजन का पुट भी है। "कहीं-कहीं 'यह सियनि सुहावनि टाट-पटोरे' का अनूठा सौन्दर्य स्पष्ट झलकता है। कहीं 'अमृतस्यदी बोल' है तो कहीं 'जीवन-सचित मैल साज ये सुर बहार के'। 'ऑखो देखी है दौर्वीण झलक जीवन की' पक्ति लिख कर झलक के साथ 'दौर्वीण' के प्रयोग का साहस शब्दकार त्रिलोचन ही कर सकते है। 'कपोताभ बादल', 'प्रतीकाश है यह परिचय का', 'गति आकाशस्नुत' और 'सायकालिक सगायन' जैसे पदों की शब्द-सर्जना पर त्रिलोचन की छाप स्पष्ट है। यदि 'एनस्वित् है विश्व, अपापविद्धता जी की मनोराज्य है' जैसे प्रयोग मे शास्त्री जी की सस्कृत चेनना मुखर हुई तो 'मृत्स्ना के अनुबध तन्त हैं' और 'जिसमे नूतन मेघ रिरिक्षिषु घहराते हैं' जैसे प्रयोगो मे अपने कोश- ज्ञान का कहीं प्रदर्शन भी निहित है। इन विलक्षण सस्कृत प्रयोगों के साथ 'हरियरंध की गध निराली' और 'कहने दो कहनाव कभी क्या कहीं रूका है'– जैसे ठेठ देशी शब्द भी त्रिलोचन के यहॉ ही मिल सकते है। ये सारे प्रयोग सिर्फ एक काव्य-सकलन 'शब्द' से अनायास चुने गए है। इन शब्दो से कवि के भाषा-ससार के विस्तार-प्रसार का पता चलता है। इस दृष्टि से त्रिलोचन का 'शब्द' काव्य-भाषा की 'विनयपत्रिका' है जिसके अन्दर आज की हिन्दी, देसी बोली से लेकर वैदिक भाषा तक यात्रा करती है और इस साहसिक अभियान मे क्लासिकी सस्कृत से भी शब्द लेना नहीं भूलती। 'प्रभामण्डलित तुम्हे रोदसी मे स्थित लखकर' लिखने की धडक सस्कृत-काव्य सृजन समर्थ नागार्जुन मे भी कम ही मिलेगी।"[9]

कविता के शब्द और भाषा का 'लोक' और परंपरा से घनिष्ठ रिश्ता होता है। क्योंकि कविता के शब्द परंपरा से प्राप्त होते हैं। कवि अपने युग के 'लोक' और काव्य-परपरा से प्राप्त शब्दों को अपने युग के जीवंत भाषिक संदर्भ से जोड़ देता है और इस तरह उसे नया संस्कार देता है। कवि के अनुभव और परिवेश के बदल जाने के साथ-साथ भाषा में भी नवीनता और जीवंतता का समावेश हो जाता है। और यही उसका (कवि का) निजपन होता है। त्रिलोचन की कविता मे लोक जीवन के प्राणवान शब्दों के साथ-साथ पुराने क्लासिक व लोक जीवन से जुड़े कवियों के शब्दों तथा काव्य-प्रसंगो की गूजों का भरपूर इस्तेमाल हुआ है। लेकिन ये गूंजें अनुकरण रूप मे नहीं बल्कि, 'अन्यथाकरण' रूप में आती हैं। अर्थात् एक नये भाव-प्रसंग से जुडकर एक नयी अर्थक्षमता और अर्थत्याप्ति

से भर उठती है। त्रिलोचन की कविता-भाषा मे प्रयुक्त शब्दो की यात्रा–वैदिक साहित्य, कालिदास साहित्य से शुरू होकर कबीर, तुलसी, जायसी, सूर जैसे मध्यकालीन लोकाश्रयी और लोकभाषा के कवियो से होती हुई अपने समकालीन अग्रज कवि निराला के काव्य तक–सतत गतिमान दिखाई देती है। डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने बिल्कुल ठीक कहा है कि, "त्रिलोचन की भाषा मे पूर्वपाठ की स्मृतियॉ एक नयी कौध के साथ आती है। क्लासिक कवियो की यादे यहॉ शब्द-प्रयोगो मे खूब रची-बसी है पर त्रिलोचन के प्रयोग का ढग ही उनसे एक तरह की दूरी भी बनाता है। फिर भी त्रिलोचन को पढते हुए यह अनुभव तो हम करेगे ही कि त्रिलोचन ने तुलसी, गालिब और निराला के अतिरिक्त जिनसे ग्रहण किया है, उनकी सूची काफी बड़ी है। पर यह ग्रहण त्रिलोचन के मौलिक सृजन का ही अन्तर्मार्ग है– कई बार भाषा के लिए मुक्ति-मार्ग भी।" [10]

त्रिलोचन की कविता मे कहीं-कहीं वैदिक भाषा की गूज विद्यमान है। यथा–

> द्यौ पिता है और माता भूमि है,
> पुत्र का यह मूलगत संश्रय हुआ।
> जायमाना पुनः कल्याणी उषा,
> फिर ऋचा से आधुनिक आश्रय हुआ। [11]
> × × ×
> .....हो अष्टधातु की, ऋतंभरा है
> सखी, तुम्हारी धृति को देखा कहीं न हारी। [12]

उपरोक्त काव्य-पंक्तियों में आए हुए- द्यौ, मूलगत संश्रय, जायमाना, कल्याणी उषा, ऋचा, ऋतभरा, धृति– जैसे शब्द वैदिक साहित्य से लिए गए हैं। त्रिलोचन प्रायः कालिदास के यहॉ से काव्य उक्तियॉ और शब्द लेकर उपयुक्त प्रसंग में अनूठा प्रयोग कर देते हैं। उदारण के लिए, 'ताप के ताए हुए दिन' संग्रह में 'आलोचक' शीर्षक सॉनेट की आखिरी पक्तियॉ–

> आलोचक है नया पुरोहित उसे खिलाओ
> सकल कवि यशःप्रार्थी, दे कर मिलो मिलाओ।

(पृ0 48)

यहॉ 'कवि यशःप्रार्थी' का मुहावरा कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य के इस श्लोक

से लिया गया है-

मन्द कवियश प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्राशुलभ्ये फले लोभादुदबाहुरिव वामन ।

(रघु 1 3)

इसी श्लोक की कथन-भगिमा को घोषित रूप से- 'साभार' लेते हुए त्रिलोचन ने 'ललक' शीर्षक कविता लिखी, जो 'तुम्हे सौपता हूँ' सग्रह मे सकलित है। 'पुरानी उक्ति वे उठाते है, पर कवि के संस्कार मे वह नया रूप भी लेती है, उसमें और बहुत कुछ आ जुडता है। फिर एक उदाहरण ले–

....मृग अर्धावलीढ कुश भय से
गिरा गिरा कर भाग रहे है। तबियत खट्टी
आज अहिंसा की है और शान्ति की सट्टी
मद पडी है, लक्ष्य बेध कर, बढ चल नय से।

(फूल नाम है एक, पृ0 52)

अर्धावलीढ (अर्ध चबाये) कुशो को भय से गिरा-गिरा कर भागते मृग का बिब 'शाकुंतल' से आया है–'दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविकृतमुखभ्रंशिभि कीर्णवर्त्मा।' वहॉ राजा के द्वारा पीछा किये जाते हिरन का प्रसग है, जिसे अहिसा की तबियत खट्टी होने आदि के साथ जोड़ा गया है। यों त्रिलोचन के काव्य मे ऐसे कई स्थल छॉटे जा सकते हैं, पर एक विशिष्ट उदाहरण देना पर्याप्त होगा–

अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रिय हित का भूखा
सब का मन है। सबको अपनी हाय हाय है।
विघ्नों के सिंह की पछाडी हुई गाय है
प्रायः जनता। ... ...

(वही, पृ0 75)

पहली पंक्ति मे 'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्' को जम का तम दोहराया गया है, पर फिर उसके लिए सबके मन के भूखा होने की बात अतिरिक्त जोडी गई है। सन्दर्भ पूरी उक्ति को नया तब मिलता है जब कवि सबकी अपनी हाय और विघ्नों

के सिह से पछाडी गाय की बात उठाता है। यह आलेख्यप्रख्यता (जिसमे पुरानी उक्ति कवि के अपने सस्कार के कारण नया रूप लेकर आये) है, पुरानी तस्वीर के खाके मे नये रग भर कर उसे विशिष्ट रूप दिया गया है। जनता को गाय और विघ्नो को सिह क्यो कहा गया? शायद कहीं कवि के मन मे यहॉ चेतन, अचेतन रूप से रघुवश के द्वितीय सर्ग का वह दृश्य रहा हो, जिसमे नदिनी गाय को पछाड कर एक सिह उसके ऊपर चढा हुआ है। तब गाय रूपी जनता और सिह रूपी विघ्न के सागरूपक अलकार का कुछ और ही अर्थ खुलता है। रघुवंश का कथित सिह नदिनी गाय की ही इच्छाशक्ति का रूप है, उसी ने उस सिह को रचा है और वही उसे समाप्त भी कर देती है।'[13]

त्रिलोचन ने 'पर्वत की दुहिता' पद कालिदास से लिया और 'महाकुभ' (1953) के वर्णन में 'जनता' के लिए इसका प्रयोग किया– 'आने दो, आने दो, जनता को मत रोको,/ पर्वत की दुहिता है, कब रूकने वाली है,' (अरघान, पृ0 55)। वस्तुत त्रिलोचन, कालिदास के काव्य के प्रसगो या शब्दावलियों का उपयोग अपने काव्य मे करके उनका 'अन्यथाकरण' कर देते है, जिससे वह नये प्रसग या सदर्भ को पाकर नयी शक्ति के साथ चमक उठता है। जैसे निम्न पक्तियो मे–

> ... ... किंतु धरा पर
> वही पड़ा है जो था कर्णार्पित बंधन वर,
> चूक विधाता की है यह अथवा भूलो की
> मौन व्यंजना है. तुम को मैं शीश चढाता
> हूँ, हे सुमन-शिरोमणि, गीत तुम्हारे गाता.[14]

कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का एक चित्र बनाया, किन्तु कलाकार दुष्यन्त को लगता है कि वे शकुन्तला के सौन्दर्य को परिपूर्णता नही प्रदान कर पाए हैं । उनका मन रह- रहकर व्यग्र हो उठता है परन्तु उनकी समझ मे नही आता कि उनके चित्र में क्या कमी है? सहसा उन्हें बोध होता है कि वे शकुन्तला के कानों मे शिरीष-पुष्प का कुण्डल पहनाना भूल गए हैं। कालिदास की दृष्टि में जिस सुमन-शिरोमणि के वरदायी बन्धन के अभाव में अपूर्व सुन्दरी शकुन्तला का सौन्दर्य भी अधूरा है, वही धरा पर पड़ा है। 'कर्णार्पित बंधन वर' में त्रिलोचन ने एक पूरे प्रसंग को समेट लिया है, जिसकी व्याख्या के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को पूरा पृष्ठ

समर्पित करना पडा है।'[15]

त्रिलोचन की काव्यभाषा मे अवधी, भोजपुरी जनपदो के जनपदीय बोलियो के शब्दो, मुहावरो, कहावतो, परपराओ की गहरी छाप मौजूद है। साथ ही इन जनपदीय बोलियो के कवि कबीर,तुलसी, जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्दो की गूजे विद्यमान है। अत त्रिलोचन की कविताओ के पूरे रस-ग्रहण के लिए मध्यकालीन हिन्दी काव्य परपरा, खासकर कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, से परिचित होना जरूरी है। साथ ही अवधी, भोजपुरी जनपदो के बोलियो के शब्दो, मुहावरो, कहावतों की जानकारी भी जरूरी है। ऐसा न होने पर 'गोहनलगुई' अबूझ पहेली बन जाएगी, जिसका प्रयोग 'नगई महरा' कविता मे हुआ है–

'नगई का परिवार
छोटा था
घरनी और एक बच्ची
बच्ची गोहनलगुई थी'

'गोहन' शब्द का प्रयोग कबीर ने किया है– 'पूत पियारो पिता कौ, गोहनि लागा धाइ।/लोभ मिठाई हाथि दै, आपुन गया भूलाइ।।'[16] पुरूष या स्त्री की पिंडलियो से सटे धोती या साडी के हिस्से को 'गोहन' कहते है, और 'गोहनलगुई'- गोहन से लगी रहने वाली अर्थात् छोटी बच्ची। ऐसा ही एक उदाहरण 'ताप के ताए हुए दिन' से–

'समझ सुगबुगाई/नही तो कहीं से/धुन आई
क्या आई/ जो धुन है पहले से/मन की पहचानी/
वही चले, चला करे/तो वही कहानी/ चादर
फिर फैलाई/ फिर फिर तहिआई'

(पृ0 39)

जैसा कि केदारनाथ सिह ने कहा है- "हिन्दी की क्लासिकी कविता के सुपरिचित पाठक को यह पहचानते देर नहीं लगेंगी कि त्रिलोचन की इस 'चादर' के ताने-बाने कितनी दूर तक फैले हुए हैं। एक ओर यदि उसके सूत कबीर की 'झीनी चदरिया' से मिले हुए हैं तो दूसरी ओर चादर को फिर फैलाने और फिर-फिर तहिआने की यह क्रिया अपनी तहों में तुलसी की उस वेदना को भी लपेट हुए है·

डासत ही गयी बीति निशा सब
कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।

शब्द की ऐसी गूजे कवि के सघर्ष और उसकी पीडा को पूरे इतिहास से जोड देती है। त्रिलोचन की कविता मे ऐसी क्लासिकी गूजे भरी पडी है और मै नही जानता कि आज हिन्दी के किस दूसरे कवि मे उन्हे ढूँढा जा सकता है।"[17] 'विनयपत्रिका' मे तुलसीदास की एक पक्ति है– 'त्राहि तुलसीदास, त्राहि, तिहूँ ताप तयो हो'। 'ताप तयो' मे लोक जीवन से प्राप्त गहन जीवनाभुव की अभिव्यक्ति हुई है। तुरन्त याद हो आता है त्रिलोचन की कविता 'ताप के ताए हुए दिन'। गहन जीवनानुभव से बुनी हुई तुलसी की भाषा से त्रिलोचन गहरे स्तर पर प्रभावित होते है, और उनसे सजग चेतना के साथ रमकर भाषा सीखते है तथा अपनी काव्यभाषा को नयी शक्ति, नया तेवर प्रदान करते हैं।

तुलसी के काव्य से जुडकर त्रिलोचन ने केवल भाषा ही नहीं सीखा बल्कि, उनके यहॉ मौजूद मूल्यनिष्ठा, मूल्यदृढता और दृढ आत्मविश्वास को भी अपनाया। त्रिलोचन ने आत्मपरक कविताओ में कई बार'राम चरितमानस' के किसी चौपाई की अर्द्धाली को ज्यो-का-त्यो उद्धृत कर दिया है। यथा–'दिगत' के एक सॉनेट में– मित्रो को 'स्पष्टीकरण' देते हुए अनाहार त्रिलोचन अपने जीवन-संघर्ष और आत्मविश्वास का सबंध तुलसी और उनके राम से जोड़ते हैं

... . घोडा था
तेज तुम्हारा, तुम्हें ले उडा. मै पैदल धा,
विश्वासी था 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका'
जिस से विजयश्री मिलती है और पताका
ऊँचे फहराती है. ... ...

(दिगंत, पृ0 20)

तुलसी ने 'लंकाकाण्ड' में रावण से पैदल ही युद्ध के लिए तैयार राम के दृढ़ आत्मविश्वास को दिव्य 'धर्मरथ' के सांगरूपक द्वारा व्यक्त किया था। त्रिलोचन ने इस सांगरूपक के शुरू की अर्द्धाली– 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका'– के माध्यम से इस मूल्यनिष्ठ प्रसंग को लेते हुए 'अन्यथाकरण' के सहारे नये घटना- प्रसंग से जोड़ दिया

है। इससे पूरे घटना- प्रसग और कथन- भगी मे नयी चमक आ गई है। 'उस जनपद का कवि हूँ' सग्रह के एक सॉनेट मे अलोचना- कर्म पर टिप्पणी करते समय त्रिलोचन को- 'याद अचानक तुलसीदास आ गए/ बहुरि बदि खल गन सतिभाएँ मौन गा गए।' (पृ0 110) यहॉ भी 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड की एक अर्द्धाली उद्धृत की गई है। अपने व्यक्तिगत सबंधो के कारण एक रचानाकार को उठाने और दूसरे को गिराने वाले खल- आलोचक और उनके खल आलोचना-कर्म पर सोचते हुए कवि को यहॉ तुलसीदास की खल-वंदना याद आती है। खल लोगो की वदना करते हुए तुलसी ने 'मानस' के 'बालकाण्ड' मे लिखा– 'बहुरि बदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।।' इस प्रकार हम देखते है कि तुलसी के काव्य– प्रसग, काव्य-पक्तियॉ और शब्दावलियॉ त्रिलोचन के काव्य मे अनूठी कथन-भगिमा के साथ मौजूद है।

ठेठ अवधी के शब्द 'अरघान' का प्रयोग तुलसी के यहॉ नहीं मिलता। जायसी ने इसका प्रयोग किया है- 'बिसहर लुरे लेहि अरघानी'। आगे चलकर निराला ने एक कविता मे प्रयोग किया– 'अरघान की फैल'। त्रिलोचन ने 'दिगंत' संग्रह की एक कविता मे लिखा– 'मेहदी की अरघान उडी।' आगे चलकर त्रिलोचन ने एक काव्य- सकलन का नाम ही रखा– 'अरघान'। 'अरघान' कहते है 'गध' को। 'घ्राण' से 'आघ्राण' बना और 'आघ्राण' से बिगडकर 'अरघान' हो गया तथा अवधी मे चलता है।

निराला द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्द त्रिलोचन के काव्य मे आते हैं, किन्तु कभी- कभी बिल्कुल अलग संदर्भ मे। 'भासमान' शब्द निराला के यहॉ सहज जीवन की उन्मुक्तता के चित्रण में आता है- 'खेलने लगे लडके छेड़छाड, लडकियॉ घरो को कर भासमान'। त्रिलोचन के यहॉ 'भासमान' शब्द मृत्यु के तनाव में, लाश की विरूपता के तनाव मे है, और जो चीज भासमान है वह है- 'कीड़ो की गति की रेखा'।

.... झोंके सड़ॉद के गड़ते
थे घ्राणेंद्रिय में. कीड़ो की गति की रेखा
सूर्य प्रभा से भासमान थी. मैंने पेखा

(दिगंत, पृ0 48)

त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओं की कथनभंगी कहीं-कहीं निराला के नजदीक है। निराला ने एक आत्मपरक कविता में लिखा–

जीवन-प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा
ज्योतिष्क का उजाला, ज्योतिष्क से उतारा।
बॉधी थी मूठ मैंने सचय की चिन्तना से,
मुद्रा दरिद्र की है, तुमने किया इशारा।[19]

पेट की भूख और अर्थाभाव निराला की ही तरह त्रिलोचन के स्वाभिमान-दिप्त ऑखो की चमक को मार नहीं सकी

खाली पेट भरूँ, कुछ काम करूँ कि चुप मरूँ,
क्या अच्छा है' जीवन जीवन है प्रताप से,
स्वाभिमान ज्योतिष्क लोचनो में उतरा था,
यह मनुष्य था, इतने पर भी नहीं मरा था [20]

'ज्योतिष्क' इसलिए कि त्रिलोचन की ऑखों मे वही रोशनी मिलेगी जो ग्रह-नक्षत्र-तारागणो में मिलती है। यह निसर्गजात है अत. पेट की भूख इस चमक को मार नहीं सकी।

जाडे की धूप के बहाने एक समस्त जीवन-व्यापार की व्यंजना निराला भी करते है और त्रिलोचन भी। दोनो ही बोलचाल की शब्दावली ग्रहण करते है, मगर दोनों के व्यक्तित्व की छाप भाषा पर मौजूद है। निराला ने लिखा–

बहुत दिनो बाद खुला आसमान!
निकली है धूप, हुआ खुश जहान।
× × ×
पनघट में बड़ी भीड़ हो रही,
नहीं ख्याल आज कि भीगेगी चूनरी,
बातें करती हैं वे सब खड़ी,[21]

त्रिलोचन की कविता पर उनका रग भाषा में निहित पूरे जीवन-व्यापार पर छाया है;

जाडे का दिन. धूप खिली है आसमान की
× × ×
प्रिय लगती है बहुत, घमौनी; घाम देख कर

लोग कहीं जमते है, गाएँ और बकरियाँ
खडी धूप मे मौज लिया करती है, सर्दी
इसी तरह जाती है. घर से मीन-मेख कर
आती है महिलाएँ, आती है सुदरियाँ,
कुत्ते करते रहते है आवारागर्दी.

(शब्द, पृ0 22)

त्रिलोचन की आरम्भिक कविताओ मे छायावादी भाषा का असर दिखाई पडता है, खासकर प्रकृति के चित्र उपस्थित करते समय। अनेक कविताओ का शब्द-चयन, पदावली और भाषा-शैली छायावादी कवियो का स्मरण दिलाता है।उनकी कई कविताओ मे छायावादी कवियो जैसी सस्कृतनिष्ठ शब्दावली और सश्लिष्ट भाषा दृष्टिगत होती है। यथा–

1– लो, आज सजा है आसमान
धरती पर जीवन भासमान
लघु लघु धाराएँ धावमान
ऊर्मिल, द्रुततर, मनहर, सुन्दर[22]

2– दक्षिण पवन धीर पद अविरल
चल किसलय तारक दल निश्चल
गगन चन्द्र चल परिचय बाँधे
चल, स्थिर लगती धारा

(धरती, पृ0 67)

3– मधुर मंजरियाँ तरंगित
कर रहीं मधु मौन इंगित
भर रहा ऋतुराज में प्रति श्वास में विश्वास
सुरभिमय वातास!

(धरती, पृ0 114)

'तुम्हें सौपता हूँ' (1985) संग्रह की प्रथम दो कविताएँ– 'अकुर का वृत्त' और 'सुख की बरसात', जो सन् 1938 की लिखी हैं, छायावादी भाषा-शैली की याद दिलाती है। 'सुख

की बरसात' शीर्षक कविता की 'तमसावृत मेदिनी-विच्छेदिनी' या 'नखत चले, जगत मुदित उठा अलस आज/नियति हिली तेज-पुज-अकम-भर लाज' अथवा 'हृदयोदधि-अवगाहन-वाहन अवधार्य'- जैसी पक्तियो से सहज ही निराला के गीतो और 'राम की शक्तिपूजा' की भाषा-शैली की याद आ जाती है। इसी कविता की 'अरूण- तरूण- वरूण स्वर नाचे दे ताल' पर भी निराला का प्रभाव दिखाई देता है। इसी तरह सग्रह की पहली ही कविता 'अकुर का वृत्त' की 'दूर, अति दूर क्षितिज के पार/ कनक का रच सुन्दर ससार/ हरित अकुर ले उठा उभार'- जैसी पक्तियो पर प्रसाद और पत का तथा 'निर्झर' शीर्षक कविता की 'अविरल झर रहा निर्झर/...तरू-दल बोलता मर् मर्'-जैसी पक्तियो पर पन्त का असर देखा जा सकता है।'[23] इन कविताओ की छायावादी असरवाली सश्लिष्ट भाषा मे 'क्रिया' का लोप भी देखा जा सकता है, जिस पर आगे चलकर त्रिलोचन ने अपने भाषिक सरचना मे सर्वाधिक महत्व दिया। 'क्रिया के लोप' वाले अधूरे वाक्यो पर छायावादी कवियो का असर है।

आवश्कतानुसार कई प्रकार का शब्द-सयोजन करके त्रिलोचन ने भाषा के कई स्तर कायम किये हैं। 'प्रचलित हिन्दी का स्तर ऐसी भाषा मे देखा जा सकता है 'प्रिय लगती है बहुत, घमौनी; घाम देख कर/ लोग कहीं जमते है, गाएँ और बकरियॉ/ खड़ी धूप मे मौज लिया करती है, सर्दी/ इसी तरह जाती है. घर से मीन-मेख कर/ आती है महिलाएँ, आती हैं सुंदरियॉ;/ कुत्ते करते रहते है आवारागर्दी।' (शब्द, पृ0 22) संस्कृत शब्दों के सुघड प्रयोग से निर्मित प्रचलित हिन्दी से उच्चतर स्तर की भाषा का उदारण यह है. 'अस्ताचलगामी किरणें, केन की लहरियॉ,/ मिलजुल कर नव गान गा रही थीं कल स्वन से/ भावो मे तल्लीन, उसे सुनने को जैसे/ शात समीर हो गया था, अदृश्य अप्सरियॉ/ नृत्यशील थीं नीलांबर मे अपने मन से,/ नीलांचल ही दिखता था हम भूले ऐसे।' (शब्द, पृ0 25) दोनो उद्धरणो की वर्ण्य वस्तु की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो में दो प्रकार के भाषा-स्तरों का निर्माण क्यो किया गया है। पहले उद्धरण मे एक साधारण दृश्य का अंकन- मात्र है, जबकि दूसरे उद्धरण मे एक किंचित् असाधारण दृश्य का अंकन है और वह भी मात्र यथार्थ का नहीं, बल्कि उसमें कल्पना का मिश्रण करके। इस कवित्वपूर्ण दृश्य के अंकन के लिए 'अस्ताचलगामी', 'कल स्वन', 'भावो में तल्लीन', 'शांत समीर', 'अप्सरियॉ', 'नृत्यशील', 'नीलांबर' और 'नीलांचल'- जैसे संस्कृत के शब्दों का प्रयोग एक रचनात्मक आवश्यकता थी।'[24]

डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने लिखा है कि, 'त्रिलोचन के यहॉ एकदम अपरिचित-अप्रचलित सस्कृत के तत्सम शब्द, ठेठ देशज-तद्भव शब्दो के साथ जितनी सहजता से, अनायास आते है और भाषा की अर्थशक्ति (जहॉ-तहॉ, अर्थव्याप्ति) के कारण बनते है, वह अन्यत्र विरल है।'[25] तत्सम-तद्भव शब्दावली के सम्मिश्रित प्रभाव मे घुली- मिली भाषा निराला की परवर्ती रचनाओ मे मिलती है। त्रिलोचन की काव्यभाषा भी प्राय ऐसी ही है। उनकी कविताओ मे तत्सम शब्दो के साथ तद्भव एव देशज शब्दो के सटीक प्रयोग से भाषा मे सप्राणता बनी रहती है, साथ ही नये अर्थ- सौन्दर्य की सृष्टि भी होती है। यथा–

भूमडल भर के भविष्यव्यवसायी दल ने
जल-स्थल-नभ से महाप्रलय होगा- भाखा है।
प्राणी अर्धप्राण हो गए हैं, बस कल की
चिता उन को अकर्मण्यता से कर मलने
पर ही विवश कर रही है, जिस ने राखा है
वह क्या कल न रखेगा, ऐसी चिता छलकी।

(शब्द, पृ0 27)

यहॉ सस्कृत के अभिजात शब्दो के बीच जनपदीय भाषा के 'भाखा' और 'राखा' जैसे ठेठ शब्दो को रखकर कवि ने गहरा व्यग्य उत्पन्न किया है। जैसा कि डॉ0 नन्दकिशोर नवल ने लिखा है . "इसमें 'भाखा' शब्द में व्यग्य है। व्यग्य का कारण स्पष्ट है। वह यह कि भविष्य-कथन का व्यवसाय करने वाले ज्योतिषियो के एक समूह ने एक निहायत झूठी बात इस भाव से कहो है, जैसे वह सवा सोलह आने सही हो। यह कहना सामान्य कहना न होकर 'भाखना' ही हो सकता है। इस 'भाखा' मे जो व्यंग्य है, वह आगे 'राखा' शब्द में अपना अर्थ-विस्तार करता है। लेकिन इस बार व्यग्य उस जनता पर है, जो इस अंधविश्वास की शिकार है कि 'जाको राखे साइयॉ, मारि न सकिहैं कोय।"[26] अनेक कविताओं में त्रिलोचन ने संस्कृत शब्दावली के बीच हिन्दी शब्दों का प्रयोग करके भाषा को सप्राण बनाये रखने पर पूरा ध्यान दिया है। जैसे-

मैं ने समझा था, यह पीपल जटाजूट में
आज व्योम-ज्योतिर्गंगा को शिरसा ले कर
खड़ा रहेगा ... (शब्द, पृ0 39)

यहाॅ कवि ने 'मै ने समझा था' और 'खडा रहेगा' जैसे हिन्दी शब्दो से बने वाक्यो का प्रयोग करके भाषा को सप्राण और गतिमय बना दिया है। त्रिलोचन ने एक-दो जगह तत्सम-बहुल अत्यत प्राजल भाषा का भी प्रयोग किया है। यथा-

1- सुविकसितॉतर्भाव-निपीतवारि-वनराजी
सुदलच्छाय-प्रफुल्ल-लता-विरूध्-तरू-ललिता
श्रावण-धारासार-पोषिता ईरण-चालिता
बस्वी वर्णाकार-प्रसून-शोभिता भ्राजी

(शब्द, पृ0 69)

2- विषमशिलासकुला पर्वतोद्भूता गगा
शशितारकहारा अभिद्रुता अतिशय पूता

(शब्द, पृ0 34)

यह तत्समबहुल, सश्लिष्ट भाषा तुलसी और निराला की अनेक संस्कृतनिष्ठ पदावलियो के करीब है। ऐसी भाषा का प्रयोग त्रिलोचन ने बहुत कम किया है, और जहॉ प्रयोग किया है, वहॉ वस्तु-वर्णन के आवश्यकतावश अभिजात वातारण प्रस्तुत करने के लिए ही किया है।

त्रिलोचन जी के लिए भाषा की कसौटी है बोलचाल। उन्होंने बोलचाल की भाषा से रागात्मक संबध कायम करते हुए उसे सर्जनात्मक बनाया है। जीवन की क्रियाशील, ताजी-टटकी भाषा से गहरा संबंध रखते हुए उन्होंने अधिकाशत· बोलचाल के स्थानीय शब्दों, मुहावरो से युक्त सहज, टटकी भाषा का ही प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत है- 'नगई महरा' कविता का एक अंश :

'नगई खॉची फॉदे बैठा था/हाथों में वही काम/ऑखे
उन हाथो को/हथवट चिताती हुई/ खॉची में लगी एक ऑख
मुझे भी देखा/और कहा बैठो उस पीढे पर/साफ है
मै ने कुछ ही पहले धोया है/बैठने पर मुझ से कहा/
अच्छा बॉच लेते हो रमायन/तुम्हारे बाबू कहते थे जैसे/अब
कोई क्या कहेगा/उन की भीतर की ऑख खुली थी/
सुर भी क्या कंठ से निकलता था/जैसे असाढ़ के मेघ की गरज'[27]

गौर किया जाय तो त्रिलोचन की यह भाषा, निराला की परवर्ती रचनाओ–'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते'–की बोलचाल की सहज लय से युक्त, प्रसाद-गुण सम्पन्न लोकोन्मुख भाषा का ही विकास है। 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' सग्रह की रचनाओ मे सरलता और बोलचाल के शब्दो का ग्रहण स्पष्ट दिखाई देता है। 'नये पत्ते' सग्रह की पहली ही कविता 'रानी और कानी' का एक अश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है·

'रानी अब हो गई सयानी
बीनती है, काढती है, कूटती है, पीसती है
डलियो के सीले अपने रूखे हाथो मीसती है
घर बुहारती है, करकट फेकती है
और घडो भरती है पानी।'

निराला के समान त्रिलोचन की कविता मे जनभाषा की मार्मिकता और उसकी अनेक अर्थ-भगिमाएँ सघन रूप मे विद्यमान है। जनभाषा की तरह त्रिलोचन की काव्यभाषा व्यजना और लक्षणा से अधिक अभिधा की सादगी की भाषा है। अभिधा को कविता बनाना और कविता की उच्चभूमि तक ले जाना त्रिलोचन के ही बूते की बात है। उनकी इस सफलता के मूल मे है– लोक जीवन के गहरे आत्मीय सदर्भों को गहरे लगाव के साथ वर्णन करने का अपना आत्मीय ढंग। लोक जीवन अथवा गॅवई प्रकृति से सम्बन्धित कविताओ मे जनपदीय शब्दावली का माधुर्य दीख पडता है :

तोड़ तोड कर बाल खेत से खग उड उड कर
चल देते हैं नीड-दिशा में. ये मंगल के
दिन हैं. अपने काम से लगे सब,.......
...........अभी हुक्के पुड़ पुड़ कर
बजे, उठा कुछ धूम, रग आँखों में, आया
हॅसिए में उत्साह, नया पहॅटा वह सलटा,
कुछ मालुम हुआ न, उधर से गीत कढ़ाए
मजूरिनों ने, आम और मद से बौराया,
कटहल की अरघान उड़ी, फागों का पलटा
उमड़ा बन कर ज्वार, सभी ने वेग बढाए.

(शब्द, पृ० 60)

ग्रामीण और साधारण बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से कविता मे सरलता, सहजता और सुबोधता तो आती ही है, साथ ही आचलिकता अथवा वातावरण भी सजीव रूप से प्रतिबिबित हो उठता है। उपरोक्त उदाहरण की भॉति त्रिलोचन के काव्य मे ऐसे उदाहरण भरे पडे है, जिनके आधार पर हम कह सकते है त्रिलोचन केवल शाब्दिक दावा नहीं करते बल्कि, प्रत्यक्ष दिखाते हैं कि, 'भाषा की लहरों मे जीवन की हलचल है,/ गति मे क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगत, पृ0 67)।

निराला की गजलो की भॉति त्रिलोचन ने अपनी गजलो मे हिन्दी का सस्कार दिया है और इसीलिए उनमें हिन्दी के सरल शब्द आए है। 'गुलाब और बुलबुल' (1956) की ग़ज़लो व रूबाइयो मे आमफहम उर्दू और हिन्दी का मेल प्रभावकारी है। बीच-बीच मे पनपियाव, पू-पू, हू-हू, हियाव, लीलने, लट, लहने-जैसे आचलिक शब्दो के प्रयोग से भाषा की आत्मीयता और बढ गई है। त्रिलोचन के सहधर्मी, कवि केदारनाथ अग्रवाल ने लक्ष्य किया है कि, "हिन्दी और उर्दू को बहुत नजदीक लाने के ध्येय से, उन्होने रूबाइयॉ और गजले लिखी है। इसकी भी जरूरत थी। यहॉ दोनो जबाने एक दूसरे के साथ काफी अच्छे ढग से चली है। उर्दू की ग़ज़ल हिन्दी मे आयी, मगर, हिन्दी के उस रग मे रॅग कर आयी, जो रंग हिन्दी को जनजीवन मे पैठ कर मिला।"[28] 'गुलाब और बुलबुल' की गजलो में हिन्दी का तेवर होने के साथ-साथ जबान की सादगी और सफाई भी मौजूद है। यथा-

आप कहते है तो अपनी भी सुना देता हूॅ मैं।
दिल के अन्दर जो छिपा है वह दिखा देता हूॅ मैं।
हूक उठती है हृदय में और गा देता हूॅ मै।
आप उत्सुक है कहॉ से भाव ला देता हूॅ मैं।[29]

त्रिलोचन अपनी ग़ज़लो के वाक्य-गठन में कोई खामी नही छोडते, और इस तरह वे उर्दू ग़ज़ल की खासियत को बरकरार रखते है।

त्रिलोचन भाषा में 'क्रिया' को सर्वाधिक महत्व देते हैं, क्योंकि 'जीवन की हलचल' की अभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण और सशक्त रूप 'क्रिया' ही है। यह भी कहा जा सकता है कि भाषा में 'क्रिया' के प्रति लगाव के कारण ही वे क्रिया पूरी करने के लिए कविता में हमेशा एक 'पूर्ण-वाक्य' लिखना पसंद करते हैं। उनकी कविता में भाषा-

बोध कि इकाई वाक्य है, शब्द नहीं। कविता मे एक पूरा वाक्य लिखने पर बल देने के पीछे त्रिलोचन के गहरे विवेक की तलाश करते हुए डॉ0परमानन्द श्रीवास्तव ने कहा है कि, "शब्द वाक्य मे है और काव्य की पूर्णता अपने मे एक प्रकार की जीवनपूर्णता का पर्याय हो सकती है, यह विवेक ही त्रिलोचन के शब्दानुशासन को एक सम्यक् काव्यानुशासन मे बदल सका है।"[30]

त्रिलोचन हिन्दी मे अकेले ऐसे कवि है, जो गद्य की तरह कविता की भाषा मे भी अटूट वाक्य-विन्यास को एक बुनियादी शर्त की तरह सामने रखते है "कविता मे अधूरे वाक्यो का प्रयोग एक बडा दोष है। छायावादी कवियो ने अधूरे वाक्य लिखे, सहायक क्रियाओ का प्रयोग नहीं किया। जिसके कारण उनकी भाषा कमजोर और ढ़ीली-पोली हो गयी।.. निराला ने भी आरम्भ मे अधूरे वाक्य लिखे, किन्तु अन्तिम दौर मे आकर निराला पूरे वाक्य लिखने लगे थे।...मेरे साथ तो सस्कृत काव्य की पृष्ठभूमि निरतर बनी रही, और मैने देखा कि संस्कृत कविता में अधूरे वाक्य नहीं लिखे जाते। अत मैने भी वाक्य पूरे दिए है, तो भी कभी-कभार अनजाने ही वाक्य अधूरे रह गये है।"[31] कुछेक अपवादो को छोड़कर, त्रिलोचन ने कविता मे हमेशा एक पूरा वाक्य लिखा, चाहे वह कविता छन्द मे हो या छन्द के बाहर। सॉनेट जैसे कठिन अनुशासन मे भी अर्ध-विराम, पूर्ण-विराम, सहायक क्रिया आदि के साथ पूरे-पूरे वाक्य आते हैं ·

> मेहदी की अरघान उडी. देखा, फिर ठहरा,
> कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे है
> अपने सौरभ के स्वर मिल कर मिला रहे है.
> हवा चली, मानो वे बोले, निशिदिन पहरा
> यहॉ हमारा रहता है. ... ...

(दिगत, पृ0 50)

त्रिलोचन की काव्यभाषा मे सर्वत्र हिन्दी भाषा का यह प्रकृत स्वरूप सुरक्षित है। उनकी कविता मे कसे हुए वाक्य की पूर्णता दिखाई देती है। वस्तुतः जीवन की ओर देखने वाले रचनाकार में वाक्य ज्यादा प्रमुख होता है। क्योंकि सामान्य जीवन में अभिव्यक्तियॉ प्रायः वाक्यों में ढली होती हैं। आचार्य विश्वनाथ ने रसयुक्त वाक्य को काव्य कहा– 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्'। 'वाक्यपदीय' मे तो भर्तृहरि ने पूरे 'काव्य' को एक महा-वाक्य कहा

है। वाक्य ही आगे चलकर मुहावरे का रूप लेता है। जीवन की ओर देखने वाली रचना मे मुहावरे अधिक होते है, बल्कि उससे नये मुहावरो का जन्म होता है।

'जीवन की हलचल' को उसकी ध्वनियो के साथ पकडने का सकल्प लेने के कारण त्रिलोचन ने बोलचाल मे प्रचलित गद्यात्मक वाक्य-विन्यास युक्त ऐसी भाषा अपनाया, जिसमे लक्षणा और व्यजना की बजाय अभिधा शब्द-शक्ति पर तथा 'विम्व' और 'प्रतीक' की जटिल सरचना के बजाय 'सपाटबयानी' पर आग्रह था। नामवर सिह ने बीसवीं सदी के सातवे दशक मे बहुप्रयुक्त काव्यभाषा शैली 'सपाटबयानी' को त्रिलोचन के यहॉ इस रूप मे देखा "कविता मे सपाटबयानी का यह आग्रह वस्तुत गद्य-सुलभ जीवत वाक्य-विन्यास को पुन प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग मे बिबवादी रूझान निश्चित रूप से बाधक रहा है। नई कविता के उत्कर्ष-काल मे भी प्रवाह-पतित होने का खतरा उठाकर एक कवि धारा के विरूद्ध वाक्य-विन्यास की रक्षा के लिए आवाज बुलद करता रहा, लेकिन उसकी आवाज न तब सुनी गई और न अब– वह कवि है 'धरती' और 'दिगत' का रचनाकार त्रिलोचन।" [32]

त्रिलोचन काव्यभाषा की कसौटी बोलचाल के गद्य को मानते है। इसीलिए अनेक बार उनके सॉनेटो मे प्रयुक्त गद्यात्मक वाक्य-विन्यास साधारण बोलचाल की भाषा के बिल्कुल करीब आ जाता है। उदाहरण के लिए, 'उस जनपद का कवि हूँ' सग्रह के इस सॉनेट में–

दुपहर थी जेठ की. हवा भी चल कर ठहरी
थी नीम की छॉह चलता कूऑ. मुडे. चले
हम तुम. प्यास कडी थी और थकन भी गहरी
घनी छॉह देखी जा बैठे पेड के तले
घमा गए थे हम. फिर नगे पॉव भी जले
थे. मर गया पसीना, जी भर बैठ जुडाए.
लोटा-डोर फॉस कर जल काढा. पिया. भले
चंगे हुए. हवा ने जब तब वस्त्र उडाए.

(पृ0, 67)

गद्यात्मक वाक्य-विन्यास वाली बोलचाल की यह भाषा अत्यंत मुहावरेदार है। इस उद्धरण मे 'चलता कूऑ', 'प्यास कडी थी', 'थकन भी गहरी', 'मर गया पसीना' आदि

मुहावरेदार प्रयोग है। इन मुहावरेदार प्रयोगो से कवि ने अभिव्यक्ति मे बेहद चुस्ती और सक्षिप्तता ला दी है। अटूट वाक्यविन्यास रखने के कारण ही– विचारबोध, सवेदनाबोध और इन्द्रियबोध– कहीं से कविता के अर्थ मे उलझाव नहीं आता। वाक्य- विन्यास की पूर्णता के कारण ही भाषा मे सप्रेपषणीयता, जीवतता और सादगी बनी रहती है। यह भी कहा जा सकता है कि काव्यभाषा को जनभाषा के निकट लाने के महत्वपूर्ण प्रयास के रूप मे त्रिलोचन ने कविता में पूरा वाक्य लिखने पर जोर दिया। वर्णनात्मकता और वाक्य-विन्यास की पूर्णता पर जोर देने के कारण त्रिलोचन की काव्यभाषा मे वस्तुन्मुखता और विश्वसनीयता के साथ-साथ स्वाभाविकता भी विद्यमान है। साथ ही अपनी कविताओ मे अटूट वाक्य-गठन के द्वारा त्रिलोचन अपने पाठको से सवाद भी करते रहते है

तुम ने जो कुछ कहा, हृदय को छेद रहा है,
घूमघाम कर मन फिर उसी बात पर आता
है, यह वह घुन है प्राणो का गेहूँ खाता
है जो. इसी बात का मुझ को खेद रहा है
जिस की आशा न थी वही तो तुम ने आखिर
कह डाला, मालुम नहीं था कुछ भी जैसे
तुम्हें. हटाओ, इन बातो मे क्या है.[33]

ऐसी भाषा मे अधिकतर कविता की लय और गद्य की लय परस्पर घुलमिल जाती है। कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य की संश्लिष्टता और लाक्षणिकता वाली भाषा के असर से युक्त होने और अपनी नयी भाषा निर्मित करने के क्रम में त्रिलोचन ने बातचीत के अन्दाज़, संवाद, लहजे, गद्य का वाक्य- विन्यास और वर्णनात्मक तकनीक को अपनाया। त्रिलोचन की कविताएँ वहाँ उत्कृष्ट है, जहाँ तद्भव शब्दावली से कसा हुआ वाक्य वार्तालाप की लय में गतिशील होता है। यह विशेषता उनकी बहुतेरी कविताओ, सॉनेटों में मिलती है।

त्रिलोचन ने अपनी काव्य-भाषा के लिए निर्दोष वाक्य-गठन, चुस्त संवाद-गठन और वर्णनात्मक तकनीक जैसे गुण तुलसी से अर्जित किया है। वैसे तो त्रिलोचन की अधिकांश कविताओं में ये गुण मौजूद हैं। किन्तु 'महाकुंभ' (1953) पर लिखे गए ('अरघान' संग्रह मे संकलित) 25 सानेट निर्दोष वाक्य-सगठन, बोलचाल के बीच से उठाए गए संवादो के

चुस्त गठन और वर्णनात्मक तकनीक की दृष्टि से बेजोड है। प्रस्तुत है एक उदाहरण –

आदमियो की वह मछेह, वह भीड ठसाठस,
उठती हुई गनगनाहट, आगे का रेला,
पीछे का दबाव , चारो ओर की कसाकस
आदमियों के सिर ही सिर, ऐसा था मेला.
सरसो छींटो भूमि तक न जाए वह ठेला-
ठेली थी, ऑखे कुछ देख नही पाती थीं,
कान सुन नही पाते थे, मिट्टी का ढेला
ही मनुष्य था. यदि सॉसे बाहर जाती थी
तो फिर अदर फिर कर कभी नहीं आती थीं,
'हाय', 'मरा', 'देखकर', 'बचाओ', 'पैर तो गया',
'कहीं खड़ा हो पाता तो', 'चक्कर खाती थी
रमिया बुधिया उधर', 'महेसर कहॉ खो गया.' [34]

नागा साधुओ का आतक और फिर भगदड मचने से दब पिच कर दम तोड़ रही जनता की लोमहर्षक त्रासदी का चित्रण करने वाले बीस सॉनेटों को पढकर सहज ही 'कवितावली' के लंकादहन संबंधी कवित्तों का स्मरण हो आता है। इन सॉनेटों के वाक्यो मे चुस्त गद्य का वेग और लाघवता देखते ही बनता है।

'त्रिलोचन की भाषिक-संरचना की एक बड़ी खासियत है– 'चित्रात्मकता'। स्वयं त्रिलोचन का कहना है · 'मैं जीवन का चित्रकार हूँ चित्र बनाता घूम रहा हूँ,'। (दिगंत, पृ0 57) त्रिलोचन ने रूप-रस-गंध-स्पर्श और ध्वनि के अपने तीव्र बोध के साथ जीवन और जगत के नैसर्गिक सौन्दर्य के अनूठे चित्र अपनी कवताओ मे अंकित किये हैं। उदाहरण के लिए, एक गतिमय और एक स्थिर जीवन चित्र क्रमशः प्रस्तुत हैः

1– मेमने कुदकते हैं
जाड़े की धूप को जीवन के खेल से
आँक आँक देते हैं

(अरघान, पृ0 30)

2– ऑख मूँदे, पेट पर सिर टेक

गाय करती है घमौनी बॅधी जड से
पेड की छाया खडी दीवार पर है

(वही, पृ0 31)

त्रिलोचन की कविताओ मे अनेक चरित्र आते है और त्रिलोचन इन चरित्रो का रूपाकन एक सधे हुए पेटर की भॉति करते है। डॉ0 गोबिन्द प्रसाद ने बिल्कुल सही कहा है कि, ''ये चित्र या चरित्र ऐसे है जैसे सामने बैठाकर चित्रकार ने सधे हाथो से चद लकीरो के बल पर चरित्र की आत्मा को साक्षात् उपस्थित कर दिया हो-लाइव स्कैच। छोटे-छोटे सारगर्भित खण्ड वाले वाक्य चरित्र (रेखाकन) का बाहर-भीतर उकेर जाते है। एक-एक शब्द को इस ढब से जड़ते है जैसे गहरी रगो की सूझ रखने वाला कोई पेटर चुनकर किसी खास रग के इस्तेमाल से पोर्ट्रेट में जीवन्तता ला देता है।" [35] उदारण के लिए, कविता की ढाई पंक्ति में बाबा नागार्जुन का पूरा चित्र उपस्थित कर दिया गया है ·

नागार्जुन- काया दुबली, आकार मझोला,
ऑखे धॅसी हुई घन भौहे, चौडा माथा,
तीखी दृष्टि, बड़ा सिर।

(फूल नाम है एक, पृ0 66)

चरित्र के इस बहिरंग रेखाकन के साथ-साथ वे उसका अंतरग भी बडी कुशलता के साथ चित्रित कर देते है ·

अत्याचार अनय पर नागार्जुन का कोडा
चूका कभी नहीं। ... .

(वही, पृ0 65)

नागार्जुन क्या है। अभाव है। जम कर लडना
विषम परिस्थितियों से उस ने सीख लिया है
लिया जगत से कुछ तो उस से अधिक दिया है।
पथ कंटकाकीर्ण था पर कॉटो का गड़ना
उस को रोक न सका।

(वही, पृ0 67)

दूसरो के चरित्रो का रूपाकन करने के साथ-साथ त्रिलोचन कविताओ मे स्वयं का चित्र ('सेल्फ पोर्ट्रेट') भी खींचते है– 'लाइव स्केच' की तरह। इस सदर्भ मे 'उस जनपद का कवि हूॅ' सग्रह के पहले चार सॉनेट और 'ताप के ताए हुए दिन' के पहले तीन सॉनेट खास तौर पर देखे जा सकते है। उदारण के लिए, इन सॉनेटो मे से एक सॉनेट का कुछ अश प्रस्तुत है

वही त्रिलोचन है, वह– जिसके तन पर गदे
कपडे हैं. कपडे भी कैसे– फटे लटे है,
यह भी फैशन है, फैशन से कटे कटे हैं
कौन कह सकेगा इस का यह जीवन चदे
पर अवलबित है. चलना तो देखो इस का–
उठा हुआ सिर, चौडी छाती, लबी बाहे,
सधे क़दम, तेजी, वे टेढ़ीमेढी राहें
मानो डर से सिकुड़ रही है, ..

(उस जनपद का कवि हूॅ, पृ0 11)

अपने अह को गलाकर कवि ने खुद को आइने की देखा है, और अतर्बाह्य रूपाकन करते हुए दिखा दिया है कि 'दीनता देह से लिपटी है, मन तो अदीन है।'

त्रिलोचन ने प्रकृति की विभिन्न रूप- छवियों और कार्य- व्यापारों का गतिशील चित्र खींचा है। 'भादो की रात' में बिजली के तडक कर गिरने का ध्वनि-चित्र प्रस्तुत है·

भरी रात भादों की... पथ... लपका वह कौंधा
दीप्ति भर उठी ऑखो में इतनी, फिर हम तुम
कुछ भी पकड सके न डीठ से, छाया चौंधा.
तड़ तड़ तड़त्तड़ाड़्. धाड़् धा धाड़् धुड़् धू हुम
× × ×
... ... फिर चमक, कड़ कड़ कड़क कड़घग्घम्
× × ×
रिम झिम रिम झिम, छक् छक् छक् छक्, सर् सर् सर् सर्,
चम चम चमक धमाके घन के, उत्सव निशि भर.

(दिगंत, पृ0 31)

जैसा कि डॉ० भगवान सिह ने कहा है 'इस सॉनेट मे विजली कौधने, ऑखो के चौंधियाने, बिजली के गिरने, तडकने, बादलो के गरजने, चमकने और वर्षा के झमाके के साथ हवा के बहने का जो अत्यन्त सश्लिष्ट चित्राकन हुआ है वह पूरी हिन्दी कविता मे अनन्य है।' [36] और अब इस चित्र से एकदम भिन्न वर्षा के सगीत और चित्र 'झापस' कविता में–

आठ पहर की टिपू टिपू/ सडक भीग गई
है/ पेडो के पत्तो से बूँदे/ गिरती है टपू/टपू/
हवा सरसराती है/चिडियॉ समेटे पख यहॉ वहॉ बैठी है

(ताप के ताए हुए दिन, पृ0 37)

उपरोक्त दोनो कविताओ में अकित, 'वर्षा के ये दोनो चित्र एक- दूसरे से भिन्न है। दोनो मे गति और ध्वनि को मूर्त करने वाली शब्द-योजना और भाषित सरचना भी अलग- अलग है। इन चित्रो से साबित होता है कि त्रिलोचन रूप के ही नहीं, गति और ध्वनि के भी चित्रकार है। यह उनकी यर्थाथवादी कला का एक और नमूना है।'[37] बनारस के गगा– घाटो का गत्यात्मक मानव-चित्र भी त्रिलोचन की कई कविताओ मे अकित हुआ है। त्रिलोचन ने अपनी कविताओ मे भाषा की ऐन्द्रिय क्षमता का भरपूर इस्तेमाल किया है। यथा-'दिगत' के एक सॉनेट में भाषा की ऐन्द्रिय क्षमता दृष्टव्य है

मेंहदी की अरघान उड़ी. देखा, फिर ठहरा,
कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे हैं
... ... पिला रहे हैं
अमृत घ्राण को. . ...
वर्षा-सीकर-भरी हवा, मेंहदी की महॅ महॅ
जी करता है, मैं अंजलि भर भर पी जाऊॅ.
जैसे फुलसुँघनी गाती है वैसे गाऊॅ.
वृक्ष, लताऍ, पौधे, तृण धरती पर डह डह
करप रहे हैं. मेघ नगर में ज्योत्स्ना टह टह
उग आई अब. ऑखें सहस कहॉ से लाऊॅ।

(दिगत, पृ0 50)

इसी तरह निम्न काव्य-पक्तियो मे रूप, गध, शब्द– तीनो का इन्द्रिय-बोध एक ही साथ हो जाता है

नीम के फूलो की
हरी हरी सुगध पिए
रात
मौन रहती है
बॉसुरी की तान सुना करती है

(ताप के ताए हुए दिन, पृ0 16)

हालांकि त्रिलोचन कविता मे बिबवादी रूझान से अलग हटकर मानव जीवन और प्रकृति के यथार्थ-चित्र खींचने पर ज्यादा ध्यान देते है। फिर भी उनकी कविता मे अनायास आने वाले– रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द– के इन्द्रिय बिब बडे ही आकर्षक है। उदाहरण के लिए, सूर्योदय के समय का एक अत्यंत मोहक इन्द्रिय बिंब

बढ रही क्षण क्षण शिखाऍ
दमकते अब पेड-पल्लव
उठ पड़ा देखो विहग-रव
गये सोते जाग
बादलो मे लग गई है आग दिन की

(धरती, पृ0 65)

इसी तरह 'पूर्व क्षितिज में तारे' के लिए लाया गया यह इन्द्रिय बिंब

पेड़ो के पल्लव से ऊपर
उठता धीरे-धीरे ऊपर
अन्धकार-चन्द्रिका-स्नात
तरूओं पर जैसे पारा

(वहीं, पृ0 67)

गतिमयता मे बॅधे होने के कारण उपरोक्त दोनों बिबो की खूबसूरती बहुत बढ़ गयी है। त्रिलोचन ने अधिकतर गतिमयता के इन्द्रिय बिंब ही अंकित किया है। ग्रामीण प्रकृति का रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द से युक्त-एक सजीव इन्द्रिय बिंब दृष्टव्य है·

गेहूँ जौ के ऊपर सरसो की रगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरे कुछ भीनी भीनी
नाक मे समा जाती है, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक झुक कर समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूलभरा ऑचल है,
लगी किचोई है, अब भी छीमी की पेटी
नहीं भरी है, बात हवा से करती, .

(उस जनपद.., पृ0 62)

ग्रामीण प्रकृति और लोक जीवन के यथार्थ चित्रो के अकन की वजह से त्रिलोचन की कविता मे वस्तु-बिबो की सख्या अधिक है। निम्न पंक्तियो मे त्रिलोचन ने ध्वनि और दृश्य-बिबो के सहारे गॉव मे तडके महुआ बीनने के समय का सारा वातावरण उपस्थित कर दिया है ·

'दखिनहिया जगी/और तारे ढले/नीद से
जाग कर/बटोही चले/चिडिया बोली-/(सुनो! सुनो !!)/
ठाकुर जीऽ/उठो, जल्दी उठो,/ महुए बीन लो'

(अरघान, पृ0 29)

डॉ0 गोबिन्द प्रसाद ने त्रिलोचन की भाषिक-संरचना का तलस्पर्शी विवेचन करते हुए बिल्कुल सही कहा है कि, 'त्रिलोचन की कविताओ में भाषा की प्रकृति एक साथ दो विरोधी ध्रुवो (या परस्पर-पूरक!) को छूती है। एक ओर वह भाषा के इस विन्यास पर बल देती है जिसमें भाषा का अरूद्ध चरणान्त प्रवाह है, वाक्य लम्बे हैं और भाषा का चरित्र मूलत· विश्लेषणपरक है। इसमें वर्णन की क्षमता है। दूसरा; वह जो भाषा में शब्द की मितव्ययिता पर आग्रह करता है। चित्र की तरह रूपों का अंकन इसका आकर्षण है– त्रिलोचन की शब्द-साधना का यह दूसरा छोर है। त्रिलोचन के सॉनेटो में जिस तरह के वर्ण्य-विषय हैं वे एक साथ वर्णन, विश्लेषण और यहाँ तक कि चित्रण और रेखांकन की मॉग एक साथ करते हैं। अतः अपने सॉनेटों में वे एक साथ भाषा की वर्णन-शक्ति, विश्लेषण-क्षमता और पेंटरों जैसी रेखाकन-पद्धति अथवा चित्रात्मक शैली में बातचीत करते

नज़र आते हैं। त्रिलोचन के ज्यादातर सॉनेटो मे विभिन्न मनोदशाओ और मनोवेगो को वहन करने वाली सधी हुई और सभावित भाषा का उपयोग मिलता है। यही भाषा त्रिलोचन की अपनी सरल और विरल प्रकृति के तथा सॉनेटो मे निहित भावो के अधिक अनुकूल पडती है। यह भाषा नहीं वरन् उनके वस्तु रूप की आतरिक मॉग है।'[38]

प्रगतिवादी कवियो द्वारा प्राय अपनाए गए प्रतीक त्रिलोचन की काव्यभाषा मे बहुत कम ही आए है। क्योकि उनकी काव्यभाषा जीवन के सीधे साक्षात्कार से जुडी है और स्पष्ट-कथन की भाषा है। कविता को प्रतीक के बजाय 'सज्ञा' और 'वस्तु' मे रखना उनकी विशेषता है। उनकी कविता तथ्यात्मक भाषा के सहज कथन पर टिकी है। फिर भी ऐसा नहीं कि उनकी कविता मे अप्रस्तुत विधान और प्रतीक विधान देखने को न मिले। कहीं-कहीं उन्होने सास्कृतिक क्षेत्र से अप्रस्तुत विधायक सामग्री ग्रहण किया है तो कहीं जड या चेतन प्रकृति से; और फिर उसे नयी अर्थवत्ता से स्फूर्त करके प्रतीक रूप मे सयोजित किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है

मै चिता का चाहता हूँ अब उजाला
बूँद-जितना तिमिर सागर बन गया है,
बस उसी की लहर मे जग फॅस गया है;
देखने को नेत्र कुछ पाते नही हैं
बस तिमिर है-तिमिर इतना बढ़ गया है[39]

'चिता का उजाला' यहॉ बलिदान भावना का, तथा 'तिमिर'-निराशा और हताशा का प्रतीक है। थोड़ा सा अंधेरा अब सागर-सा फैलकर सर्वग्रासी प्रतीत होता है। निराशा और हताशा का यह अंधेरा सामाजिक विषमता के कारण पैदा हुआ है। कवि का कहना है कि बलिदान का उजाला ही इस अंधकार को तोड़ सकता है।

त्रिलोचन की काव्यभाषा में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीयकरण जैसे अलंकार भी सहज-कथन की भाँति ही आते हैं, अलंकरण के लिए नहीं। मिथक का प्रयोग भी उनकी काव्यभाषा में एकाध बार ही देखनेको मिलता है, लेकिन मिलता है तो एक नयी भंगिमा के साथ। उदाहरण के लिए, त्रिलोचन ने 'कामधेनु' की मिथकीय परिकल्पना को नये संदर्भ मे संस्कारित करके 'नदी : कामधेनु' रूपक से मिथक को विकास-सत्य के रूप में दिखा दिया है :

नदी ने कहा था मुझे बॉधो/मनुष्य ने सुना और/तैर कर
धारा को पार किया/नदी ने कहा था मुझे बॉधो/मनुष्य ने सुना
और/सपरिवार धारा को /नाव से पार किया/नदी ने कहा
था मुझे बॉधो/मनुष्य ने सुना और/आखिर उसे
बॉध लिया/बॉध कर नदी को/मनुष्य दुह रहा है/अब वह कामधेनु है

(ताप के ताए हुए दिन, पृ0 13)

यहॉ अत्यन्त सहज रूप से मिथक का भाववादी धरातल कवि के हाथो मे पडकर यथार्थ सवलित हो गया है।

छंद-विधान :

लय और छंद क्या है, इस सबंध मे त्रिलोचन जी कहते है "लय तरगित ध्वनि है और जब इसका नियमित रूप बनने लगता है तो किसी छद की इकाई बन जाती है। किसी लय का उसकी इयत्ता मे निरन्तर प्रयोग से किसी एक छद का स्वरूप आ जाता है। प्रकट है कि लय और छद मे अन्तर है, लय से छंद बनता है और किसी छद में लय की पहचान की जाती है। यह लय छंद में नियमित आया करती है। लय और छंद दोनो की पूर्णता भाषा के स्वाभाविक प्रवाह मे अच्छी मानी जाती है।"[40] वे कवियो को छंद का ज्ञान होना जरूरी मानते हैं क्योकि "छद का ज्ञान, भाषा का मर्म बतलाता है। लोग छंद न जानें तो कविता का आन्तरिक अनुशासन नहीं बन पाता। आप नये हैं तो छंदो में लिखने पर भी नये कहे जायेंगे। छदों का अभ्यास इसलिए भी आवश्यक है कि शब्द फालतू आये नहीं और आवश्यक छूटे नहीं।"[41] "छंद के ज्ञान के अभाव मे भाषा के प्रवाह पर अधिकार नहीं होता।... प्रोज-पोइम मे भी टुकड़ों मे छंद आएगा-लिखने वाला भले ही न जानता हो।"[42] त्रिलोचन का मानना है कि कविता को पारायण योग्य और लोकप्रिय बनाने के लिए छंदोबद्ध रचना करनी चाहिए क्योंकि "कविताओं की लोकप्रियता जाने-माने छंदो के आधार पर होती है।...(लेकिन) छंदों को लिख लेना ही कोई बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है–छंदों में जो बात आई हो वह भाषा के निरालेपन के साथ पहचान की खास भंगिमा पेश करती हो।"[43]

त्रिलोचन की अधिकांश कविताएॅ छंदोबद्ध हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रायः मात्रिक छंदो का ही प्रयोग किया है। बरवै, रोला, चौपाई, कुण्डलिया-जैसे हिन्दी के परंपरागत छदो

के अतिरिक्त उन्होने सॉनेट, ग़ज़ल, रूबाई–जैसे हिन्दी के लिए विजातीय काव्यरूपो या काव्यानुशासनो का भी कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है। उनके सॅानेट प्राय रोला छद मे निबद्ध हैं।

छद-विधान की दृष्टि से त्रिलोचन की कविताओ को दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है- (1) सममात्रिक सान्त्यनुप्रास वाली कविताएॅ, और (2) स्वच्छद (मुक्त) छद वाली कविताएॅ।

(1) सममात्रिक सान्त्यनुप्रास वाली कविताएँ :

इस प्रथम वर्ग मे त्रिलोचन की वे कविताएॅ आती है, जिनका निर्माण सम मात्राओ के आधार पर हुआ है, अर्थात् जिनकी पक्तियो मे मात्राएॅ समान है और अन्त मे तुक भी मिलता है। इसी वर्ग मे 'धरती' और 'सबका अपना आकाश' सग्रहो के अनेक गीत, 'अमोला' सग्रह के 'बरवै', 'तुम्हे सौपता हूॅ' सग्रह मे सकलित 'चार कुण्डलियॉ', 'गुलाब और बुलबुल' सग्रह की गजले और रूबाइयॉ, तथा अनेक सग्रहो मे सकलित वे सॉनेट आते है, जो प्राय रोला छद मे निबद्ध है। 'धरती' के अनेक गीत सममात्रिक तुकात छद मे लिखे गए हैं। इसके कई गीतो मे 16 मात्राओ के छद का प्रयोग हुआ है, जो देखने मे चौपाई जैसा लगता है। उदाहरणार्थ–

मुझमे जीवन की लय जागी
मै धरती का हूॅ अनुरागी
जडी भूत करती थी मुझको
वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी

(धरती, पृ० 11)

इसमे लिखने का क्रम भी चौपाई के ही तरह का है, चरणो का अन्त भी, तृतीय चरण को छोड़कर, गुरू-गुरू (s - s) से किया गया है। जागी, अनुरागी, त्यागी की तुकबदी होने से लय और सगीत का सौन्दर्य भी मौजूद है। 'सबका अपना आकाश' सग्रह के कुछ गीतों मे भी 16 मात्राओं के छद का प्रयोग है, जिसे शृगार छद कहा जा सकता है, क्योंकि चरणों के अन्त मे गुरू-लघु(s-।) का प्रयोग हुआ है। जैसे-

शरद का यह नीला आकाश
हुआ सब का अपना आकाश

ढली दुपहर, हो गया अनूप
धूप का सोने का सा रूप

(वही, पृ0 15)

'धरती' संग्रह में कहीं-कहीं चौदह मात्राओ के तुकांत छद का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

आज सुखी सब नर-नारी
शेष नही वह लाचारी
मनुज- शक्ति की तैयारी
नही मनुज को भयकारी
प्रकृति विजय की तैयारी
अखिल अजेय शक्ति सारी
आज मनुज को हितकारी

(वही, पृ0 23)

'धरती' संग्रह के एक गीत मे 28 मात्राओ वाले तुकात छद का प्रयोग हुआ है

अब न जीवन-भूमि पर उनका कहीं है चिह्न कोई
अब न साक्षात्कार सम्भव है न उनका चिह्न कोई
उन युगों के सखा- सहचर चल दिये जग मे न कोई
जलद- विद्युत् वे तरूण-तरूणी नहीं है आज कोई

(वही, पृ० 119)

त्रिलोचन ने 'अमोला' नामक अवधी काव्य- संग्रह, अवधी के अपने छद 'बरवै' मे लिखा है, जिसे तुलसी ने भक्ति और श्रृंगार के माधुर्य से परिपूर्ण करके जन-रूचि के अनुकूल ढाला था और जिसमे वियोग की टीस, वेदना एवं पीडा भरकर रहीम ने प्राण प्रतिष्ठा की थी। 'अमोला' सग्रह मे 2700 बरवै सकलित है। इतनी अधिक संख्या में बरवै किसी कवि के नहीं मिलते। 'अमोला' संग्रह के 'परिचय' मे कवि ने कहा है : 'अमोला' का छंद बरवै 19 मात्राओं का है, 12 और 7 मात्राओं के मध्य यति होती है। यति को कुछ लोग अनिवार्य मानते है। पहले के भी कवि ऐसे बहुत से है जिनमे यति के इस नियम का पालन नहीं मिलता। मेरे यहॉ भी यह यति न मिलने

पर कुछ लोगों को बुरा लग सकता है। मैंने कविता के बनाव का ही ध्यान रखा है। छद आदि कविता के परिधान है।[44] बरवै छद के सबंध में डॉ0 पुत्तुलाल शुक्ल ने लिखा है · "यह अवधी भाषा का अपना छद है। यह छंद जितना अवधी में सरल, मधुर और बहुअर्थव्यंजक होता है, उतना खडी बोली, ब्रज और भोजपुरी मे नहीं।.. सभवत प्रचलित छदों मे यह लघुत्तम छद है पर इसमे व्यजना बडे–बड़े छदो से अधिक होती है। इस छद में 'गागर में सागर' भरा रहता है। तरूणी का कटाक्ष चूक जाता है, पर अमोघ बरवै छंद, हृदय पर अवश्य चोट करता है।"[45] इस कथन को 'अमोला' सग्रह के बरवै चरितार्थ करते हैं ·

तोहँसे बिछुरे जिउ होइ जाइ उदास
अउँतिआइ मन बिसरइ भूखि पिआस।

(पृ0 9)

आन क कहनी होइ त बहुत हिताइ
आपनि उघरे काने परत तिताइ।

(पृ0 35)

के एस बाटइ नाई न जेकरे खोट
पुजवइ बदे सजेन सब लइ लइ ओट।

(पृ0 43)

समचरणों (दूसरे और चौथे) के अन्त में जगण (।S।) या तगण (SS।) आने से बरवै छद मे मिठास बढती है। 'अमोला' के बरवै छदो मे समचरणो के अन्त मे जगण या तगण का निर्वाह प्राय किया गया है।

'तुम्हे सौंपता हूँ' सग्रह मे इदिरा गाधी सरकार के जनविरोधी नीतियो तथा 1974 ई० के दौरान हुए गुजरात और बिहार के आन्दोलनो पर लिखे गये कुल 'तीन कुडलियॉ' संकलित हैं। उदाहरण के लिए, एक कुडलिया प्रस्तुत है·

छोडा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मंडियो में शुरू व्यापारी त्यौहार
व्यापारी त्यौहार लगा है तुलने गल्ला
दर्शक डॉडी देख चकित है अल्ला अल्ला

फखरूद्दीन अली अहमद को यह थोडा है
बातो के घोडे को ससद मे छोडा है

(तुम्हे सौपता हूँ, पृ0 99)

'कुंडलिया छंद दोहा और रोला छद के योग से बनता है। इन दोनो छदो का सबध अभिन्न करने के लिए दोहे का अन्तिम दल रोला के आदि मे आवृत्त होता है और रोला का अन्तिम शब्द-समूह दोहे के प्रारम्भिक शब्द-समूह के समान रखा जाता है।'[46] कुडलिया एक जन छद रहा है क्योकि यह लोक कविता, लोक लय और लोक जीवन की अभिव्यक्ति-शैली के नजदीक पडता है। इसीलिए नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन जैसे जनवादी कवियो ने व्यवस्था की विसगतियो के कारण उपजे जन-विक्षोभ को व्यक्त करने के लिए इसे अपनाया। त्रिलोचन की अपेक्षा केदार और नागार्जुन ने इसका प्रयोग अधिक किया है।

त्रिलोचन की अनेक कविताओ मे कई छदो का, छदों के टुकडो का प्रयोग बीच-बीच मे मिश्रित रूप मे मिलता है। उनके काव्य मे क्रमश "पॉच, छह, सात, आठ, नौ" मात्राओ वाले तुकांत छदों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए, नौ मात्राओ वाले छद का प्रयोग दृष्टव्य है·

आई जो हार
गई कहॉ कहीं
मै हूँ लाचार
धुरियाई देह
इतनी है खेह
पथ मे ही पड़े
रहे, कहॉ गेह
खोजे कब मिला
कोई आधार[47]

सॉनेट, गजल, रूबाई– जैसे हिन्दी के लिए विजातीय काव्यानुशासनो मे निबद्ध त्रिलोचन की कविताओ की चर्चा यहॉ कर लेना समीचीन होगा। क्योकि इन काव्यानुशासनो मे निवद्ध कविता को तुकांत छद की कविता ही कहा जाएगा।

त्रिलोचन ने 1950 के आसपास अपनी कविता के लिए सॉनेट का फार्म चुना और लगातार कई वर्षो तक तेजी से सॉनेट रचते गये। इस तरह उन्होने एक बडी सख्या मे सॉनेटो की रचना की। 'गम्भीरता, विचारशील भाव, अनुभूति की गहन एकाग्रता और कसी हुई भाषा के साथ ही चौदह पंक्तियो का अनुशासन, ये सारी बाते जो एक सॉनेट की विशिष्टता है, त्रिलोचन की मनोभूमि के लिए बहुत अनुकूल थीं। आवेगो की अभिव्यक्ति का सयमित ढग और स्वर की तटस्थता वाली अपनी काव्य-मानसिकता के कारण ही सॉनेट-जैसे विदेशी काव्य-रूप ने त्रिलोचन-जैसे ठेठ भारतीय किसानी मन के कवि को आकर्षित किया होगा।'[48] सॉनेट को त्रिलोचन ने इस कद्र अपनाया और इतने समर्थ रूप मे इसे साधा कि त्रिलोचन और सॉनेट, हिन्दी मे एक-दूसरे के पर्याय-से बन गए।

'सॉनेट'– इटैलियन शब्द Sonetto का लघु रूप है। सॉनेट का मूल स्थान इटली माना जाता है और प्रथम प्रयोक्ता दॉते माने जाते हैं। सॉनेट, जैसा कि सर्वविदित है, हिन्दी मे अग्रेजी कविता के प्रभाव से आया है। यह चौदह पक्तियो मे कसा-मधा और अनुशासन मे बॅधा 'लिरिक' काव्यरूप है। अग्रेजी मे सॉनेट चार प्रकार के होते है- पेट्रार्कियन, शेक्सपीरियन, स्पेन्सेरियन एव मिल्टॉनिक। त्रिलोचन ने इन सभी प्रकार की रचना-पद्धतियो मे सॉनेट लिखा है। अत आवश्यक है कि इन सभी रचना-पद्धतियो के तुक-विधान और चरणो के विभाजन सबधी नियमो के आलोक मे त्रिलोचन के सॉनेटो की परख की जाय।

पेट्रार्की सॉनेट दो खडों मे बॅटे होते है। पहले खड को अष्टक (Octave) और दूसरे खड को षष्टक (Sestet) कहा जाता है। पहले खंड का तुक-विधान–गम मग गम मग–होता है और दूसरे खड का प्राय· स र प स र प। दोनो खडो के बीच विराम की स्थिति होनी चाहिए, लेकिन यह नियम उतना निश्चित नहीं है, जितना तुकों का नियम।[49] 'दिगत ('57) त्रिलोचन का पहला सॉनेट-सग्रह है और हिन्दी का भी पहला सॉनेट-सग्रह है। इस सग्रह मे बीस सॉनेट पेट्रार्की पद्धति पर लिखे गये है, जिनमे अष्टक और षष्टक का तुक-विधान तथा उनके बीच विभाजन व तज्जनित विराम भी मिलता है। 'शब्द' ('८0) उनके सॉनेटो का दूसरा सग्रह है, जिसमे सॉनेट सख्या चार को छोडकर बाकी सभी, यानी एक सौ सोलह सॉनेट पेट्रार्की पद्धति पर रचे गये हैं। इस सग्रह के अठारह सॉनेटो को छोडकर बाकी सभी में अष्टक और षष्टक के बीच विभाजन और तज्जनित विराम की स्थिति आती है। 'फूल नाम है एक' ('85) -सग्रह के सभी सॉनेट पेट्रार्कीय पद्धति पर आधारित हैं। इन सॉनेटो मे भी अष्टक और षष्टक के बीच विभाजन और तज्जनित विराम

की स्थिति आती है। 'शब्द' संग्रह से एक पेट्रार्की सॉनेट उदाहरणार्थ प्रस्तुत है

उडते है पारावत जमी हुई बदली के — ग
नीचे नीचे. लगता है जैसे बादल के — म
छोटे छोटे टुकडे खगाकार ये चल के — म
अपनी चाल दिखाते हैं उस ओर गली के — ग
ऊपर जो आकाश झुका है-भ्रमर कली के — ग
ऊपर का लगता है भरा उजाला छलके — म
जैसे दिक् छोरों से कलश गगन का छलके- — म
घन ये घूॅघट-से लगते हैं किसी भली के — ग

हवा भूमि से आसमान तक आती जाती — स
है बेरोकटोक; बेलों से उलझ रही है, — र
पौधों से परिहास कर रही है, पेडों से — प
छेड़छाड कर रही है, वहॉ पख फुलाती — स
है बैठी चिडियों के, लेकर गध बही है — र
खिले खिले फूलों के गॉवों से, खेडों से — प

(शब्द पृ० 21)

यहॉ अष्टक और षष्टक के बीच विभाजन और तज्जनित विराम की स्थिति आती है। अष्ठक और षष्टक के तुक-विधान का समुचित निर्वाह हुआ है। यहॉ तुक- विधान का उद्देश्य केवल तुक मिला देना नहीं है, बल्कि अर्थ की शक्ति और सौन्दर्य को बढा देना भी रहा है। 'बदली के', 'गली के' और 'कली के' के साथ 'भली के' की तुक मिलायी गयी है- 'घन ये घूॅघट से लगते है किसी भली के'। कहने की आवश्यता नहीं कि इसमे 'भली' शब्द केवल तुक मिलाने के लिए नही आया है, क्योंकि यह एक शब्द चार शब्दो के अर्थ की व्यंजना करता है- 'भले घर की स्त्री'। इस प्रकार त्रिलोचन ने तुकों से तरह- तरह का काम लिया है। यहॉ तुक की वजह से उनकी अभिव्यक्ति मे जो संक्षिप्तता आयी है, वह देखने की चीज है। इसी सॉनेट के षष्टक में 'पेडो से' के लिए 'खेड़ो से' तुक का प्रयोग हुआ है . '. (हवा) लेकर गंध बही है/ खिले खिले फूलो के गॉवों से, खेड़ों से।' 'खेडा' शब्द का अर्थ है 'छोटा गॉव'। बरसात की हवा फूलों के बडे और छोटे दोनो प्रकार के गॉवो अर्थात् बगीचो से गध लेकर बह रही है।

'खेडा' शब्द वर्ण्य-वस्तु के साथ कवि की आत्मीयता अलग से सूचित करता है। त्रिलोचन ने प्राय सर्वत्र इसी व्यंजकता के साथ तुको का प्रयोग किया है।[50]

त्रिलोचन के दो सॉनेट ऐसे है जिनमे पेट्रार्कीय सॉनेट का तुक-विधान और रूप को तो अपनाया गया है किन्तु अष्टक मे एक पक्ति बढा और घटाकर उसमे नवीनता ला दी गई है। 'ताप के ताए हुए दिन' मे सकलित 'अन्तर' शीर्षक सॉनेट नौ और छह के विभाजन में पन्द्रह पक्तियो वाला है। लेकिन अष्टक मे जोडी गई पक्ति भर्ती की लाइन नहीं लगती अपितु अन्तर्वस्तु की मॉगवश लाई हुई लगती है। इसी तरह 'तुम्हे सौपता हूॅ' संग्रह की 'तलाशी' शीर्षक कविता अपने तुक-विधान और रूप मे तो सॉनेट ही है लेकिन उसमे चौदह की बजाय तेरह पक्तियॉ ही है। इसमे षष्टक तो है, लेकिन अष्टक की एक पक्ति गायब है। लेकिन बात अपने- आप मे पूरी है। इस तरह त्रिलोचन सॉनेट के कठोर अनुशासन का पालन करते हुए भी अन्तर्वस्तु की मॉग पर ही ज्यादा ध्यान देते है।

मिल्टन ने अपने सॉनेटो मे पेट्रार्की सॉनेट का तुक-विधान तो लिया है लेकिन अष्टक और षष्टक के बीच विभाजन का निर्वाह नही किया है। त्रिलोचन ने भी कई बार ऐसा किया है। उन्होने 'दिगंत', 'शब्द' और 'फूल नाम है एक' सग्रहों के कई सॉनेटो मे पेट्रार्की सॉनेट का तुक- विधान तो लिया है लेकिन अष्टक और षष्टक के बीच विभाजन के नियम का अतिक्रमण किया है, जिससे उनमे विराम की स्थिति नही आती।

शेक्सपीरियन सॉनेट में तीन चतुष्पदी और अन्त में एक द्विपदी का विधान होता है (4 + 4 + 4 + 2)। इसका तुक- विधान इस प्रकार होता है– ग म ग म, स र स र, प ध प ध, न न। 'दिगत' सग्रह मे नौ सॉनेट शेक्सपीरियन पद्वति पर रचे गये है। इनमे तीन चतुष्पदी और एक द्विपदी का विधान है और तुक-विधान भी शेक्सपीरिन सॉनेट के समान ही है। इस संग्रह मे सोलह ऐसे भी सॉनेट है जिनका सामान्य रूप-विधान शेक्सपीरियन सॉनेट की तरह ही है– तीन चतुष्पदी और एक द्विपदी वाला। लेकिन इनका तुक-विधान शेक्सपियर के सॉनेट में पाये जाने वाले तुक- विधान से भिन्न है। इस नवीन तुक- विधान को त्रिलोचन की विशिष्टता के रूप मे देखा जा सकता है। 'ताप के ताए हुए दिन' सग्रह के आठ सॉनेटो मे शेक्सपीरियन पद्धति के अनुसार ही तीन चतुष्पदी और एक द्विपदी का विधान है और तुक-विधान भी शेक्सपीरियन सॉनेट के समान है।

'उस जनपद का कवि हूँ' सग्रह के सॉनेट भी शेक्सपीरियन पद्वति के सॉनेट है। हालाकि तीन चतुष्पदियो और अन्तिम द्विपदी को अलगाकर नहीं लिखा गया है। लेकिन तुक-विधान शेक्सपीरियन पद्धति पर ही किया गया है। 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' सग्रह के अधिकांश सॉनेट शेक्सपियर पद्धति पर ही रचे गये हैं। इनमे तीन चतुष्पदी और एक द्विपदी का विधान है और तुक- विधान भी शेक्सपीरियन सॉनेटों के समान ही है। शेक्सपीरियन सॉनेट का एक उदारण प्रस्तुत है

महल खडा करने की इच्छा है शब्दो का — ग
जिस मे सब रह सके रम सके लेकिन सॉचा — म
ईट बनाने का मिला नहीं है, अब्दो का — ग
समय लग गया केवल काम चलाऊ ढॉचा — म

किसी तरह तैयार किया है सब की बोली- — स
ठोली लाग लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा — र
भाव, आचरण, इगित, विशेषता, फिर भोली — स
भूली इच्छाएॅ, इतिहास विश्व का, बिखरा — र

हुआ रूप सौदर्य भूमि का, स्वर की धारा — प
विविध तरग भग भरती, लहराती, गाती, — ध
चिल्लाती, इठलाती, फिर मनुष्य अवारा — प
गृही, असभ्य, सभ्य, शहराती या देहाती- — ध
सब के लिए निमत्रण है अपना जन जाने — न
और पधारे इस को अपना ही घर माने [5] — न

शेक्सपीरियन सॉनेट की रचना- पद्धति का पूर्ण निर्वाह करने वाले इस सॉनेट की विशेषता यह है कि पूरे सॉनेट में सिर्फ तीन वाक्य हैं और तीसरा वाक्य तो दस पक्तियो तक फैला हुआ है। पंक्तियो के अन्त मे तुक मुस्तैदी से डटे हुए खडे है किन्तु वाक्य का प्रवाह नहीं रूकता।

स्पेंसर के सॉनेटो मे तुक-योजना इस प्रकार मिलती है- ग म ग म म स

म स स र स र प प। 'दिगत' के बारह सॉनेटो मे, 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' के दस सॉनेटो मे और 'अरघान' मे सकलित 'महाकुभ' (1953) सबधी पच्चीस सॉनेटो मे से अधिकांश मे स्पेंसेरियन सॉनेट के जटिल तुक-विधान को अपनाया गया है। इनमे पक्तियो का विभाजन 12+2 के क्रम से किया गया है। स्पेसेरियन सॉनेट के उदाहरण-स्वरूप 'अरघान' मे सकलित, 1953 के महाकुभ की भीषण मानव-त्रासदी का बयान करने वाला एक सॉनेट प्रस्तुत है .

बिजली के खभे पर, आई बुद्धि, जा चढा	ग
उस को देखो भीड ठॉव पर झूम रही है	म
बॅधे हुए हाथी सी ऊँचे बॉध से बढा	ग
एक हुलुक्का, एक दरेरा, घूम रही है	म
भीड भीड पर भीड दूसरी रूम रही है	म
अस्फुट अगणित कठों की उठ ध्वनि की धारा	स
महाकाश मे मॅडराती है, बूम रही है	म
मरणसिंधु मे मग्नप्राय मानवता हारा	स
कोई अपने लडके को दे रहा सहारा	स
खभे वाला उस को दे दे ले लेता है	र
वह भी बच्चे को, भीड की लहर ने मारा	स
खभे को, क्या करे, फेंक उस को देता है	र
कल जिस छाती में पौरूष का पार नही था,	प
आज उसी के प्राणो का उद्धार नही था	प

(अरघान, पृ0 66)

यह उदारण त्रिलोचन का सॉनेट के रूप- विधान पर असाधारण अधिकार को प्रदर्शित करता है। इस संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि, "भीड के वर्णन के लिए शायद ही अग्रेजी में किसी ने सॉनेट का उपयोग किया हो। त्रिलोचन के लिए सॉनेट ऐसा कुर्ता है जो हर मौसम में पहना जा सकता है। हर विषय के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है। यति का स्थान ऐसे बदलते है मानो मुक्त छद लिख रहे हो।" [52]

त्रिलोचन ने सॉनेट के लिए प्राय रोला छद का उपयोग किया है। उनका कहना है कि, "हमारे यहॉ का जो नेशनल मीटर है, वो रोला है, मेरे अनुसार। रोला को पहले,

चन्द के समय में काव्य-छद कहते थे। काव्य- छद माने कविता का छद। तो इस रोला को मैने माना कि हमारे नेशनल मीटर के अनुकूल है। अत हिन्दी का छद रोला ले लिया।" [53] रोला की भॉति उनके अधिकाश सॉनेट के प्रत्येक चरण मे प्राय 24 मात्राऍ मिलती हैं किन्तु यति का स्थान प्राय· अनिश्चित, अनियमित रहता है। उदारणार्थ-

कल गुलाब जो खिला हुआ था, खेल रहा था
वायु-तरगो से अपनी छबि में लहराता,
और फरहरा अपने रगों का फहराता
उपवन में, नि·शब्द हॅसी में झेल रहा था

(शब्द, पृ0 16)

त्रिलोचन के सभी सॉनेटो की पक्तियो मे हरदम 24 मात्राओ का निर्वाह नहीं हो पाया है। कभी-कभी एक-दो मात्राऍ कम-ज्यादा भी हो गई है। 'रोला एक जन- छद रहा है। राज्याश्रय प्राप्त कवियों ने इसका उपयोग तकरीबन नहीं किया। अभिजात रूचियो वाले कवियो मे भी इसे अधिकाशत जगह नहीं मिली। रोला का चयन ही कहीं गहरे मे त्रिलोचन की पक्षधरता को उजागर कर देता है। लेकिन रोला को ज्यो-का-त्यो वह स्वीकार नहीं कर लेते। रोला के ऊपर न केवल सॉनेट का एक और अनुशासन वह कायम करते है बल्कि उसके मात्रिक अनुशासन और आन्तरिक लय को बरकरार रखते हुए भी उसकी पारम्परिक सहज गेयता को वह एक तरह से भग कर देते हैं या उसे दुरूह बना देते हैं। हो सकता है कि वह किसी शास्त्रीय बन्दिश मे गाया जा सके। लेकिन रोला की सहज धुन में तो उसे नहीं ही गाया जा सकता है। त्रिलोचन वाक्य बडा बनाते है जो सॉनेट की दूसरी पक्ति के आधे मे जाकर, और कभी-कभी तीन पंक्तियों मे समाप्त होता है। इस तरह छद के अनुशासन मे पक्तियॉ तो रहती है, लेकिन वाक्य उस अनुशासन मे नहीं होते। इससे रोला की सरल गेयता काफी हद तक गद्यात्मक लय के नजदीक पहुॅच जाती है। रोला छंद का यह रचाव त्रिलोचन की अपनी अलग पहचान बनाता है। यह छद से मुक्ति के बजाय छद की ही मुक्ति का एक प्रयास है। यहॉ मुक्ति और अनुशासन के बीच का द्वन्द्वात्मक रिश्ता उजागर होता है, साथ ही कथ्य और रूप के रिश्तो पर त्रिलोचन का दृष्टिकोण भी। इसी तरह वह अपनी कविता की वस्तु को ही छंद में ढालने का काम नहीं करते, बल्कि इसके विपरीत वह छंद को भी अपनी मनोभूमि और वस्तु के अनुरूप ढालने या कहें बदलने का काम करते हैं।' [54]

त्रिलोचन ने ग़जल और रूबाइयाँ भी लिखा है, जो 'गुलाब और बुलबुल' ('56) में संकलित हैं। ग़ज़ल मे अधिकतर आन्तरिक भावनाओ का उल्लेख होता है। "अक्सर ग़ज़ल का हर शेर स्वयं पूर्ण होता है। इसके दो बराबर के टुकडे होते है, जिनको 'मिसरा' कहते है। जितने शेरो का आखिरी शब्द एक हो और उसके पहले का शब्द एक ही आवाज का हो, उनको एक साथ लिखते है, और ऐसे पॉच से सत्रह शेरो के सग्रह को गजल कहते हैं। परन्तु इस सख्या के पालन मे उर्दू मे कोई खास पाबन्दी नहीं है। बहुत से शायरो ने अपनी गजलो मे सत्रह से ज्यादा शेर भी रखे है। हर शेर के अन्त मे जितने शब्द बार-बार आये, उनको 'रदीफ' और रदीफ के पहले के एक ही आवाज वाले शब्दों को 'काफ़िया' कहते है। जैसे मीर के इस शेर मे 'पत्ता-पत्ता बूटा- बूटा हाल हमारा जाने है। जाने-न-जाने गुल ही न जाने बाग तो सारा जाने है'। 'जाने है' रर्दाफ है और 'हमारा', 'सारा' काफ्यि है।"[55] गजल के पहले शेर के दोनो मिसरे एक ही 'काफिया' और 'रदीफ़' मे होते है। ऐसे शेर को 'मतला' कहते है। अन्त मे जिस शेर मे शायर का उपनाम या तखल्लुस हो, वह 'मक्ता' कहलाता है। हम कह सकते है कि विविध अन्तर्वस्तु वाले, लेकिन एक ही सरचना मे, महज एक ही बहर मे, एक ही जमीन और वजन पर कहे गये हमकाफ्यि और हमरदीफ़ शेरो का सकलन मात्र ही गजल है। 'हर शेर मे पहले शेर के तुक की पाबन्दी की जाती है। इसका रूप यह होता है 'क-क, ख-क, ग-क'।'[56]

मुझे ऐसा महसूस होता है कि 'गुलाब और बुलबुल' मे त्रिलोचन जी ने ग़ज़ल का फार्म इस्तेमाल करने के साथ-साथ फारसी या उर्दू बहरो का इस्तेमाल भी जरूरी समझा है। लेकिन, चेतन या अवचेतन से यह पाबंदी हर जगह बाकी नहीं रह सकी है। इस संग्रह की पहली गज़ल का पहला शेर (मतला) है

दुख में भी परिचित मुखों को तुमने पहचाना है क्या।
अपना ही सा उनका मन है यह कभी माना है क्या।[57]

'इस शेर मे गज़ल का मिजाज़ पूरी तरह आ गया है। मानवीय दिलकशी के साथ इसमे जुबान और बयान का लुत्फ भी है। लेकिन इसी ग़ज़ल के दूसरे शेर मे वह इसे कायम नहीं रख सके है

जिनकी हमने याद की जिनके लिए बैठे रहे,
वे हमे भूले तो भूलें इसमे पछताना है क्या।

'जिनकी हमने याद की' के बदले उर्दू मे 'हमने जिन्हे (या जिनको) याद किया' लिखा जाता है। लेकिन, त्रिलोचन शास्त्री ने जायज तौर पर हिन्दी मिजाज का ख्याल रखा है। फिर भी विषय और उसके निर्वाह की दृष्टि से भी यह शेर बहुत मामुली है। 'जिनके लिए बैठे रहे' बहुत सतही अन्दाज़ेबयां है। 'पछताना' का लफ्ज भी यहॉ भरती का है और शायद सिर्फ तुक पूरा करने के लिए लाया गया है।' [58] इस गजल का तीसरा शेर तो और मामूली बन पड़ा है-

हाथ ही हिलता न हो जब पॉव ही उठता न हो,
इनकी उनकी बात से आना है क्या जाना है क्या।

'इनकी उनकी बात से' और 'आना है क्या जाना है क्या' में सादा और साफ बोलचाल की जुबान का मजा मिल जाये, लेकिन विषय और अभिव्यक्ति का हल्कापन दूर नहीं होता। चौथे और पॉचवे शेर मे त्रिलोचन फिर से गजल के मिजाज को पा लेते हैं

आजकल क्या-कुछ इधर मेरे हृदय को हो गया,
चुप ही चुप है, अब उसे रोना है क्या गाना है क्या।
जब तुम्हीं से दूर हूँ तब मै निकट किसके रहूँ,
होश जाने पर यहॉ खोना है क्या पाना है क्या।

(गुलाब और बुलबुल, पृ0 27)

इस गजल का अन्तिम शेर (मक़्ता) है-

मुझको दुख यदि है त्रिलोचन तो इसी का जान तू,
यदि स्वय समझे न वे तो उनको समझाना है क्या।

यहॉ हम देखते है कि त्रिलोचन ने ग़जल का फार्म और तुक की पाबदी का पूग निर्वाह किया है। 'गुलाब और बुलबुल' की अधिकांश गज़लो मे गज़ल का फार्म और तुक की पाबंदी का निर्वाह हुआ है। लेकिन एक ग़ज़ल के कई शेरों में तुक पूरा करने के लिए भरती के शब्द भी आते हैं और उनमें से कई तो हिन्दी के ऐसे कठिन शब्द होते है जो आम व्यवहार में प्रयुक्त नहीं होते। फिर भी मजहर इमाम का यह कहना सही है कि, ''त्रिलोचन शास्त्री की गजलें बहुत ऊँची न सही, लेकिन एक खास मेयार को जरूर बरकरार रखती हैं। हो सकता है, उर्दू वालों को इन ग़ज़लो मे कोई ताजगी और नयापन न महसूस हो, लेकिन हिन्दी को उर्दू ग़ज़लों की नरमी, लताफ़त और नफ़ासत

का थोडा बहुत एहसास दिलाने मे त्रिलोचन शास्त्री जरूर कामयाब रहे है।"[10]

चार पक्तियो की उस कविता को 'रूबाई' कहते है, जिनमे एक ही विचार प्रकट किया गया हो। मजहर इमाम के अनुसार "रूबाई मे पहली-दूसरी और चौथी पक्ति का हमकाफ्यिा (तुक का एक होना) होना जरूरी है। अगर तीसरी पक्ति मे भी हमकाफ्यिा हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन आम तौर से ऐसा नहीं होता है। इसके लिए जो खास बहर इस्तेमाल की जाती है, वो है लाहौल विला कूव्वत इल्लाह बिल्लाह। इसमे सत्रह जहाफ्त (मात्राएँ) भी आते हैं। कहा जाता है कि, रूबाई का इन्हीं बहरो मे होना जरूरी है, वरना वो रूबाई न होगी, 'क्ता' हो सकती है, 'दोवैती' हो सकती है, 'तराना' हो सकती है। त्रिलोचन शास्त्री के मजमू-ए-कलाम 'गुलाब और बुलबुल' मे एक सौ एक रूबाइयॉ शामिल है, जिनमे से शायद एक को भी रूबाई नहीं कहा जा सकता है। 'गुलाव और बुलबुल' की पहली रूबाई ये है-

स्वर के सागर की बस लहर ली है
और अनुभूति को वाणी दी है
मुझसे तू गीत मॉगता है क्यो
मैने दूकान क्या कोई की है

(पृ0 1)

इसमे जो बहर इस्तेमाल की गयी है, वो रूबाई के करीब है। लेकिन आम तौर पर उनकी रूबाईयो का अन्दाज ये है-

कौन वह सामने से जाती है
पास आती नहीं लजाती है
फूल मे, चॉदनी मे, तारो मे
रास जीवन के जो रचाती है

(पृ0 6)

मार से काट से बचे रहिए
प्रेम के रङ्ग से रचे रहिए
आदमीयत का प्यार पाना हो
ऑख की ऑख मे जचे रहिए

(पृ0 17)

इन्हे रूबाईयो के बदले 'क्ता' कहना ज्यादा मुनासिब होगा।' [60]

(2) स्वच्छंद (मुक्त) छंद वाली कविताएँ :

निराला की मुक्त छंद की कविताओं की परम्परा मे त्रिलोचन ने ऐसी अनेक कविताएँ लिखी हैं, जिनमें न तो किसी प्रकार के छद का कोई बन्धन है और न मात्रा की ही कोई समानता है। लेकिन लय और प्रवाह उनमे प्राणतत्त्व की तरह मौजूद है, और वे ही उसे छद सिद्ध करते हैं। त्रिलोचन ने मुक्त छद की ऐसी कई कविताएँ लिखी है जिनमे अन्तिम तुके तो मिलती है, किन्तु जिनके चरणो मे मात्राओ की समानता नहीं दिखती। यदि कहीं समानता आ गई है तो वह आकस्मिक है, उसके लिए कवि ने कोई विधान नहीं किया है। ऐसी कविताओ मे लय का प्रवाह भी विद्यमान है। 'धरती' सग्रह मे ऐसी कविताओं मे लय का प्रवाह भी विद्यमान है। 'धरती' सग्रह मे ऐसी कई कविताएँ मिलती है। उदाहरण के लिए-

विश्व के सरोवर मे दिन का कमल
लहराता दृग दृग का नीला कमल
सदा अमल
नित्य नवल
खिला यह दिन का कमल
सुन्दर सहस्रदल

(धरती, पृ0 66)

चॉदनी-चर्चित
परम प्रार्थित
समर्पित
स्नेह सी यह रात
स्तब्ध नीरव रात

(वहीं, पृ0 87)

त्रिलोचन ने मुक्त छंद की ऐसी अनेक कविताएँ भी लिखी है, जिनके चरणों मे मात्राओ और तुको की समानता कहीं नजर नहीं आती। लेकिन उनमें लय और पहाडी झरने का-सा उन्मुक्त प्रवाह मौजूद रहता है। जैसे-

चल रही हवा/धीरे धीरे/सीरी सीरी;/उड रहे
गगन मे/झीने झीने/कजरारे/चचल/बादल।/

छिपते दिपते/जब तब/तारे/उज्जवल, झलमल।
चॉदनी चमकती है गगा बहती जाती है

(वही पृ030)

अथवा-

केवल रिमझिम का सगीत सुन पडता था
बूँदों की छनकारे
ओलतियो की टप टप-टपकारे
पानी का कल कल करते
बहते ही जाना[61]

मुक्त छद की कई छोटी-बडी कविताओ मे त्रिलोचन ने कथात्मक वर्णन और बातचीत की लय तथा ठेठ गद्य-जैसे वाक्य विन्यास को अपनाया है। इस तरह की कई कविताएँ 'धरती', 'ताप के ताए हुए दिन', 'चैती', 'तुम्हे सौपता हूँ' और 'अरघान' सग्रहो मे मिलती है। 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'गोबिन्द आज तुम नहीं हो', 'भोरई केवट के घर' ('धरती' सग्रह मे), 'सब्जी वाली बुढिया', 'परदेसी के नाम पत्र' ('अरघान'), 'नन्हे', 'झापस', 'क्षण की खिडकी' ('चैती') 'फेरू' (तुम्हे सौंपता हूँ' सग्रह मे)- आदि कविताओ तथा 'मैं तुम', 'नगई महरा' 'चित्रा जाबोरकर' 'छोटू' ('ताप के ताये हुये दिन' मे), 'रैन बसेरा', 'बिना लौटने की राह मे' ('तुम्हे सौपता हूँ') आदि लबी कविताओ मे कवि ने मुक्त छद मे वर्णनात्मकता अथवा कथात्मकता और ठेठ गद्य वाली बातचीत की लय को अपनाया है। इस तरह कवि ने मुक्त छद की इन कविताओ के माध्यम से कविता की लय को साधारण बोलचाल की भाषा की लय के करीब लाने का क्रान्तिकारी प्रयास किया है। इन कविताओ का सबध यदि जोडा जा सकता है तो निराला की 'नये पत्ते' सग्रह की कविताओं से ही। 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' कविता बातचीत की लय पर आधारित मुक्त छंद का उदाहरण है ·

मैने कहा कि चम्पा, पढ़ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,
कुछ दिन बालम सग साथ रह चला जायगा जब कलकत्ता
बडी दूर है वह कलकत्ता

कैसे उसे सँदेसा दोगी
कैसे उसके पत्र पढोगी
चम्पा पढ लेना अच्छा है।

चम्पा बोली तुम कितने झूठे हो, देखा,
हाय राम, तुम पढ-लिख कर इतने झूठे हो
मै तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मै अपने बालम को सँग साथ रखूँगी
कलकत्ता मै कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे।[62]

इन पक्तियो की लय गद्य से मिलती-जुलती है। ध्वनि-प्रवाह और लय कहॉ कोमल है और कहॉ उदात्त, इन भेदो के प्रति त्रिलोचन सजग दीखते है। मुक्त छद की लबी कविता 'नगई महरा' मे ठेठ गद्य के वाक्य-विन्यास मे कथात्मक वर्णन को अपनाया गया है। इस कविता मे बातचीत की सहज लय विद्यमान रहती है-

नगई ने हाथ चलाते चलाते फिर कहा
दुनिया है, दुनिया का ज्ञान है, आदमी है,
आदमी को क्या क्या नहीं जानना है
देखते सुनते और करते ज्ञान होता है
अपनी जब होती है
समझ नई होती है
मेरे लिए समझ पाना कठिन था
पर रूक रूक कर निकले बोल ये
कहीं ठहर गए थे मेरे मन में[63]

'कविता की इन पक्तियो को देखे तो लगेगा कि इन पंक्तियो मे लय नहीं है लेकिन लय है, शब्दो की अतर्लय है, उनके प्रयोग की लय है और उन रागो की लय है जिनमे शब्दो को प्रयोग के जरिए जोडा गया है।'[64]

इस प्रकार हम देखते है कि त्रिलोचन ने परम्परागत मात्रिक छदो का सफल प्रयोग किया है और साथ ही मुक्त छद की कविताओ मे स्वच्छद लय-प्रवाह व बातचीत की सहज लय को अपनाकर भावाभिव्यक्ति का सफल निर्वाह किया है। सॉनेट गजल, रूबाई (वस्तुत 'क़ता')–जैसे विदेशी काव्यानुशासनो का भी उन्होने सफल निर्वाह किया है।

संदर्भ :

1 शब्द : त्रिलोचन, पृ0 32 (प्रथम सस्क0 1980 ई0)
2 उस जनपद का कवि हूँ त्रिलोचन, पृ0 116 (प्रथम सस्क0 1981 ई0)
3 दिगंत : त्रिलोचन, पृ0 60 (द्वितीय सस्क0 1996 ई0)
4 ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृ0 51 (द्वितीय संस्क0 1996 ई0)
5 प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन (राजकमल, प्रथम संस्क0 1985 ई0), भूमिका, पृ0 8
6 सापेक्ष-38, : जुलाई-सित0 1996, पृ0 42
7 शब्द : त्रिलोचन, पृ0 63
8 आलोचना : जुलाई-सित0 87, पृ014
9. त्रिलोचन के बारे मे : सम्पा0 गोबिन्द प्रसाद, पृ0 87 (प्रथम संस्क0 1994 ई0)
10. वही, . पृ0 204
11. तुम्हे सौंपता हूँ : त्रिलोचन, पृ0 75 (प्रथम संस्क0 1985 ई0)
12. फूल नाम है एक : त्रिलोचन, पृ0 32 (प्रथम सस्क0 1985 ई0)
13. त्रिलोचन के बारे मे : पृ0 177-78
14. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन, पृ0 53
15. सापेक्ष : 38, जुलाई-सित0 1996, पृ0 534
16. वही, पृ0 44
17. त्रिलोचन के बारे में , पृ0 123
18. रामचरितमानस, पृ0 37 (गीता प्रेस, गोरखपुर)
19 निराला रचनावली : खंड-2, पृ0 118
20 उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन, पृ0 13
21 राग-विराग : सम्पा0 रामविलास शर्मा, पृ0 124-25 (संस्क0-1997 ई0)
22 धरती : त्रिलोचन, पृ0 21 (संस्क0 1977 ई0)
23 आलोचना : अक्टू0-दिस0 85, पृ0 79
24 शब्द जहां सक्रिय हैं (आलो0) . नन्दकिशोर नवल, पृ0 63-64
25 शब्द और मनुष्य · परमानन्द श्रीवास्तव, पृ0 95 (प्रथम संस्क0 1988 ई0)
26 शब्द जहां सक्रिय हैं, पृ0 62
27 ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृ0 73

28 सापेक्ष · 38, जुलाई-सित० ’96, पृ0 379
29 गुलाब और बुलबुल : त्रिलोचन, पृ0 72 (प्रथम संस्क० 1956 ई0)
30 त्रिलोचन के बारे में : सम्पा0 गोबिन्द प्रसाद, पृ0 204
31 त्रिलोचन शास्त्रीसे मीना व्यास की बातचीत, वर्तमान साहित्य : सित० 92, पृ० 42
32 कविता के नये प्रतिमान नामवर सिह, पृ0 127 (चतुर्थ पेपरबैक संस्क० 1990)
33 अनकहनी भी कुछ कहनी है · त्रिलोचन, पृ0 83 (प्रथम संस्क० 1985)
34 अरघान · त्रिलोचन, पृ0 68, (द्वितीय संस्क० 1998)
35 त्रिलोचन के बारे में : सम्पा0 गोबिन्द प्रसाद, पृ0 24
36 वही, पृ0 133
37 वही, पृ0 154, मैनेजर पाण्डेय का कथन।
38 वही, पृ0 21
39 तुम्हें सौंपता हूँ · त्रिलोचन, पृ0 30 (प्रथम संस्क०, 1985)
40 सापेक्ष : 38, जुलाई-सित0 96, पृ0 630
41 त्रिलोचन और शम्भू बादल की बातचीत, साक्षात्कार : जून-जुलाई ’84, पृ0 126
42 साक्षात् त्रिलोचन : कमलाकात द्विवेदी, दिविक रमेश, पृ0 148 (प्रथम सस्क० 1990)
43 त्रिलोचन से बातचीत, पूर्वग्रह फरवरी ’75, पृ0 5
44 अमोला : त्रिलोचन, पृ0 7 (प्रथम संस्क० 1990)
45 आधु0 हिन्दी काव्य में छंद योजना : डॉ0 पुत्तुलाल शुक्ल, पृ0 318
46 वही, पृ0 329
47 सबका अपना आकाश : त्रिलोचन, पृ0 65 (प्रथम संस्क० 1987)
48 त्रिलोचन के बारे में, पृ0 195, राजेश जोशी का कथन।
49 शब्द जहाँ सक्रिय हैं (आलो0) · नन्दकिशोर नवल, पृ0 59
50 वही, पृ0 61
51 ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृ0 51
52 रूपतरग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि : डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 287 (प्रथम सस्क0 1990)
53 साक्षात् त्रिलोचन : कमलाकात द्विवेदी, दिविक रमेश, पृ0 39
54 त्रिलोचन के बारे में, पृ0 198

55. हिन्दी साहित्य कोश : भाग-1 (सम्पा0 धीरेन्द्र वर्मा व अन्य), पृ0 216 (तृतीय सस्क० 1985)

56 उर्दू साहित्य का आलो० इतिहास : एहतेशाम हुसैन, पृ0 303 (प्रथम संस्क०1984)

57 गुलाब और बुलबुल · त्रिलोचन, पृ0 27 (प्रथम संस्क० 1956)

58 मजहर इमाम, सापेक्ष : 38, जुलाई-सित0 96, पृ0 507

59 वही, पृ0 508

60 वही, पृ0 505

61 ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृ0 18

62 धरती : त्रिलोचन, पृ0 89

63 ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृ0 73-74

64 नरेन्द्र पुंडरिक, आजकल, फरवरी : 2001, पृ017

6

त्रिलोचन की कविता में सहजता का आलोक और कलात्मक विन्यास का नवोन्मेष

'सहज' (वि०) —शब्द में 'ता' प्रत्यय जुडने पर भाववाचक सज्ञा शब्द 'सहजता' बनता है। 'सहजता' शब्द के अर्थ है— स्वाभाविकता (Naturality), सरलता, सामान्यता। भावाभिव्यक्ति के प्रसंग मे, अभिव्यक्ति मे बनाव-सजाव, अलकार आदि पर जोर दिए बिना स्वाभाविक अभिव्यक्ति देना सहजता है। उस अभिव्यक्ति मे अलकार भी आ सकता है, लेकिन वह 'अलकरण' या सायास अलकरण बनकर नहीं बल्कि अनायास आएगा। अभिव्यक्ति की सहजता मे लोक की कथन- भगिमा, शब्दो और भाषा व्यवहार का ध्यान होता है, न कि लोक से कटा, व्यवहार से दूर—सायास प्रयोग। कविता के प्रसग मे, सहजता केवल भाषा की विशेषता नही, बल्कि वह समूचे काव्याभिव्यजना से जुडी होती है, वस्तु और रूप, कथ्य और शिल्प, भाव और भाषा के साथ जुडी होती है। कविता मे सहजता से तात्पर्य है— कथ्य व रूपगत सजावट और अलकरण के आयास के बिना कविता में कथ्य-कथन की स्वाभाविकता-जन्य सशक्त अभिव्यक्ति। अर्थात् अभिव्यक्ति मे वैदग्ध्यभगीभणिति व विच्छिति की अपेक्षा स्वाभाविकता का सौन्दर्य। अंग्रेजी कवि जॉन कीट्स का एक लोकप्रिय कथन है · 'कविता को जीवन में इस सहजता से फूटना चाहिए जैसे पेड से कोपल फूटती है। रचना यदि इस लावण्यमयी सहजता से जीवन में नहीं आती तो उसका न आना बेहतर है।'[1]

भाषा की सहजता का तात्पर्य है— भाषा की कृत्रिमता से परहेज और भाषा को जनाभिमुख बनाना। ऐसी भाषा सरल भी हो सकती है, लेकिन यह जरूरी नहीं कि वह आम बोलचाल की ही हो। वह बोलचाल के सामान्य स्तर से थोडा ऊपर और विशिष्ट भी हो सकती है, लेकिन कृत्रिम नहीं। वस्तुत भाषा मे सहजता न तद्भवता में होती है, न तत्समता में। सहजता भणिति-भंगी मे होती है, समूची अभिव्यक्ति- पद्धति मे होती है, विषयानुरूपता मे होती है। सहजता की एक कसौटी है- संप्रेषणीयता। अर्थात् एक ऐसा अभिव्यक्ति- विधान जो प्रभावपूर्ण ढग से संप्रेषणीय हो। चमत्कार से पैदा करने वाला प्रभाव निष्प्राण होता है। दरअसल सहजता ही उत्कृष्ट काव्य-मूल्य है, जो कविता में स्वाभाविकता को व्यक्त कर काव्यभाषा की अभिव्यजना को बल प्रदान करता है। कविता में सहजता काव्य-साधना का प्रतिफल है, जो विरल भी है। बात को कहने के ढंग की सादगी और सहजता एक लम्बी कला साधना का ही परिणाम होती है। और तभी ऐसा हो पाता है कि रचना मे प्रवेश

करने के बाद पाठक इस अहसास से बेखबर रहता है कि वहाँ कोई भाषा, कोई शिल्प गढने या रचने का साहित्यिक आयास किया जा रहा है।

रचना देखत बिसरइ रचनाकार
तब रचना कइ रूप होइ उजियार।

(अमोला, पृ० 10)

यानी शिल्प भूल जाए, रचना- कौशल पर ध्यान न जाए। रचना मे ही रस आने लगे। ऐसी स्थिति में ही रचना मे 'सहजता का आलोक' फूटता है— जीवन-रस और मार्मिकता से सराबोर। रचना मे सहजता का आलोक जीवन के स्वाभाविक सौन्दर्य और मार्मिकता के रूप मे मौजूद रहता है। रचना में सहजता का अर्थ सिर्फ सरलता अथवा सपाटपन नही, बल्कि उसमे प्राय सश्लिष्टता और सगुफिति भी मौजूद रहते है।

सहजता केवल रूपगत नही होता, वरन् वह जीवन- दृष्टि एव सौन्दर्य- दृष्टि मे भी अनुस्युत होता है। सामान्य रोजमर्रा की तथाकथित अकाव्यात्मक स्थितियो मे कविता की— मार्मिकता की पहचान करना—'सहजता' का ही एक पहलू है। जीवन के साधारण-से-साधारण तथ्यो-प्रसगो मे गहन आत्मीयता के साथ जुडकर, उनमें काव्य-सभावना की तलाश करके जीवन- सौन्दर्य और मार्मिकता को उद्घाटित करना कविता मे 'सहजता का आलोक' पैदा करता है। और तभी, काव्य-विवेक एक सहज जीवन- विवेक का पर्याय हो जाता है, जिसमे कविता भी जीवन का एक सहज तथ्य है, महिमामडित, विलक्षण, लोकोत्तर चमत्कार नहीं।

त्रिलोचन की कविता का प्राण- तत्त्व 'सहजता' है। कवि के प्रथम काव्य- सग्रह 'धरती' (1945) की कविताओं में मौजूद सहजता के आलोक से प्रभावित होकर, शमशेर जी ने एक सूत्रात्मक किन्तु काव्यात्मक टिप्पणी की ·

सरलता का आकाश था
जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ।
× × ×
तुमने 'धरती' का पद्य पढा है?
उसकी सहजता प्राण है।[2]

'सहजता' त्रिलोचन के स्वभाव में है। जैसा सहज उनका जीवन, वैसी सहज उनकी कविता, वैसी ही सहज-सरल उनकी अभिव्यक्ति-पद्धति। आधुनिक शिल्प मे जिस रूपगत

चमत्कार या कलात्मक निपुणता को तरजीह दी जाती है, वह त्रिलोचन की कविता के सदर्भ मे, उसके आरम्भिक विकास काल से ही अप्रासगिक है। 'धरती' सग्रह मे प्रकृति और जीवन के कुछ चित्र अपनी स्वाभाविकता, सहज भावमग्नता और स्वच्छ सरलता के कारण बहुत मुग्धकारी बन पड़े हैं। बानगी के लिए एक कविता का यह अश प्रस्तुत है

धूप सुन्दर/धूप मे/जग-रूप सुन्दर/सहज सुन्दर/
व्योम निर्मल/दृश्य जितना/स्पृश्य जितना/भूमि का
वैभव/तरगित रूप सुन्दर/सहज सुन्दर/तरूण हरियाली/निराली
शान शोभा/लाल पीले/और नीले/वर्ण वर्ण प्रसून सुन्दर/
धूप सुन्दर/धूप मे जग-रूप सुन्दर
ओस कण के/हार पहने/इन्द्रधनुषी/छबि बनाये/शस्य
तृण/सर्वत्र सुन्दर/ धूप सुन्दर/ धूप मे जग-रूप सुन्दर/
सघन पीली/ऊर्मियो मे/बोर/हरियाली/सलोनी/झूमती
सरसो/प्रकम्पित वात से/अपरूप सुन्दर/धूप सुन्दर[3]

प्रकृति के सहज सौन्दर्य को भावमुग्धता के साथ निहारता हुआ कवि, अपने को अनिवर्चनीयता की स्थिति मे पाकर कहता है-'अपरूप सुन्दर'। कविता मे रूप, गध और स्पर्श—तीनो का बोध एक साथ होता है। इस कविता मे 'सहजता' का सौन्दर्य अपने उत्कृष्ट रूप में मौजूद है। सीधी-सादी अभिव्यक्ति-पद्धति, कथन-भंगिमा और सीधी-सहज-निरलंकृत भाषा-शैली ही इसकी विशिष्टता है। कवि की सौन्दर्य-दृष्टि मे जैसी स्वाभाविकता और नैसर्गिक खुलापन है, वैसी ही उसकी अभिव्यक्ति-पद्धति मे भी स्वाभाविकता और सादगी है। कथन-भगिमा मे चमत्कार सृजन और नयी बात कहने की ललक से वे प्राकृतिक उपादानो का विरूपीकरण नहीं करते, जैसा कि आधुनिकतावादी कवियों ने जोश मे आकर किया है।

'धरती' सग्रह की ही एक कविता 'तारको से ज्योति चलकर'— में बहुत ही प्यार से ठेठ भारतीय विवाह का चित्रण हुआ है। बहू, वर, सास, माता, नारियॉ, बारात— पूरे गॉव की जीवन-रागिनी का बहुत मार्मिक रेखांकन यहॉ मिलता है—

है अँधेरी रात

कल है

ब्याह का दिन

दीपको से गॉव का एकान्त अमलिन

जागती हैं नारियॉ

आज अपने गीत से वे तारको को है जगातीं

साज शादी के सजातीं

आज सारा गॉव एक-प्राण, मिल कर

आज सबका हर्ष जागा है विमल तर

आज जीवन-रागिनी अविराम उठ कर और उठ कर

छा रही है छा रही है छा रही है

× × ×

घर बसेगा

बहू

आयेगी सुघरतर

घर बना देगी उतर कर देव-मन्दिर

सास मन मे सोचती है

वह हमे सुख और सबको शान्ति देगी

वह हृदय मे सोचता है

कॉपती सुख से कहीं बैठी अकेली

साधती होगी बहू कुछ भाव के स्वर

आज मनसा इन सबो की गीत की पहली कडी ही

गा रही है गा रही है गा रही है

(धरती, पृ० 24)

इस कविता मे 'सहजता का आलोक' मौजूद है—वस्तु और रूप, कथ्य और शिल्प, भाव और भाषा—सभी में। एक सामान्यतम अनुभव को बोलचाल के सहजतम क्रियापदो ने हठात् ही एक अजब असामान्यता-सी पैदा कर दी है। इस कविता मे लोकगीतो की भाव-संवेदना और सहज लय-प्रवाह मौजूद है, वर्णनात्मकता के बावजूद। गीतो मे लोकगीतो का रंग ले आना उतना मुश्किल नहीं है जितना वर्णनात्मक या चित्रात्मक कविताओ मे।

'धरती' सग्रह की कविताओ मे 'सहजता' का गुण मौजूद होने के साथ-ही-साथ कविताओं में स्वर-विविधता और रूप-वैविध्य भी दृष्टिगत होता है। इस सग्रह मे मुक्त छद की कविताएँ, गीत, बातचीत की सहज लय मे निबद्ध कविताएँ और 'प्रोज पोएट्री' भी शामिल हैं। नामवर सिह इसे लक्ष्य करने मे नहीं चूके . "त्रिलोचन की 'धरती' का महत्व सबसे अधिक उसकी स्वर-विविधता और रूपगत समृद्धि मे है, जो इस प्रकार के अन्य कवियो मे अपेक्षाकृत कम था।"[4]

बीसवीं सदी के चौथे दशक के आरम्भिक वर्षों से स्वर-सधान करने वाले त्रिलोचन के गीतों में कई प्रकार के स्वर मिलते है। 'धरती' सग्रह मे ज्यादातर गीत है। इनमे से कई ऐसे गीत बहुत प्रभावित करते है, जो सीधे-सादे शब्दो मे और छोटी-छोटी लडियो मे है। उदाहरण के लिए—

आज मै अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता
जीवन मिला है यह
रतन मिला है यह
धूल में कि फूल मे
मिला है तो मिला है यह
मोल-तोल इसका
अकेले कहा नहीं जाता

(धरती, पृ० 60)

बकौल विश्वनाथ त्रिपाठी 'इस गीत की सहजता बोलचाल की सहजता है। . इसमे प्रवाह और लय केवल वार्तालाप का है। अकेलेपन की पीड़ा-तीव्रता और उस अकेलेपन से बाहर आने की तीव्र इच्छा के द्वन्द्व मे यह ढला है कि जिस लय में यह ढला है वह लय नही है, वह भाषा की प्रचलित लय है लेकिन स्थिति (अकेलेपन) और गति (उसे तोडने की इच्छा) के द्वन्द्व से युक्त अनुभूति उस लय मे ढल गई है।'[5] इस गीत में छद की छोटी जमीन उदासी और मन की विकलता को तथा कुछ भी कहने के प्रति अनमनेपन को व्यक्त करता है। गीति-विधा में इसी तरह का अनूठा प्रयोग इसी संग्रह में—

बरस रहे रस बरस रहे रस
गरज गरज घन ये
धारामयी धरा हो आई
रग-रग की ले सुघराई
आई, सुन्दरता अब आई
नवल बने सब
नवल बने सब
वन-उपवन
जन
ये

(धरती, पृ० 33)

कविता में उर्ध्वाधर क्रम से पक्तियो का छोटा होता जाना, पहली पक्ति मे 'वरस रहे रस' और आगे चलकर 'नवल बने सब' की आवृत्ति तथा अन्तिम पक्ति मे 'ये' का लाघव, मात्र छन्द के अनुशासन से ही ऊपर आकाश मे घिरे हुए घटा-टोप बादलो का और उनसे टपकती बूँदों का एक चित्र उभारने मे सहायक होता है।[6]

सहजता त्रिलोचन के गीतो की शक्ति है। उनके यहॉ हृदय के भाव सीधे गीत बन जाते है; उनकी रचना-प्रक्रिया मे कोई बाधा नहीं, विशिष्ट दिखने की कोई ललक नहीं। उदाहरण के लिए, इस गीत में त्रिलोचन ने प्रेम के आरम्भ का स्वाभाविक चित्र खींचा है—

यो ही कुछ मुसकाकर तुमने
परिचय की यह गॉठ लगा दी
था पथ पर मै भूला भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन लहर थी उस दिन
तुमने अपनी याद जगा दी
कभी कभी यों हो जाता है
गीत कही कोई गाता है
गूंज किसी उर मे उठती है
तुमने वही धार उमगा दी[7]

व्यक्तित्व की पारदर्शी सरलता और स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण, जिस प्रणय को रूमानी कवियो ने भावोच्छ्वास-स्फीत शब्दावली के बिना कम ही व्यक्त किया है,उसी को प्रगतिशील कवि त्रिलोचन ने एक सहजता के साथ सीधे-सादे शब्दो मे अभिव्यक्त कर दिया है। त्रिलोचन ने सीधे- सादे शब्दो में और छोटी-छोटी लडियो मे कई ऐसे गीत लिखे, जो लोकगीतों की तकनीक पर रचित और प्राय उनसे मिलते-जुलते है। 'ये दिन न भुलाऽऽऽऽना ओ सनेही' और 'कोइलिया न बोली' आदि गीत इसी तरह के है—

(1) ये दिन न भुलाऽऽऽऽना/ ओ सनेही/ आने को आए/सनेह
लगाया/ बाती मिलाई/ दीया जगाया/ बिसर मत जाऽऽऽऽना/
ओ सनेही/नीबू के फूले/बेला के फूले/ कहीं किसी बारी/मे
भूले भूले/बिलम मत जाऽऽऽऽना/ओ सनेही[8]

(2) मॅजर गये आम/ कोइलिया न बोली/ बाटो के अपने/हाथ
उठाए/धरती/ बसन्त-सखी को बुलाए/ पडे हैं सब काम/
कोइलिया न बोली/पाकर नीम ने/पात गिराए/बात अपत की/
हवा फैलाए/कहॉ गए श्याम/कोइलिया न बोली।

(तुम्हे सौपता हूॅ, पृ० 18)

लोक लय, लोक धुनों पर आधारित इन गीतों मे लय की नई उठान के साथ-साथ अभिव्यक्ति की ताजगी भी है। त्रिलोचन के अधिकतर गीतो मे उनकी भाषा चित्रभाषा नही, विवरण की भाषा है। और यह उनकी कमजोरी नहीं, साहस और शक्ति का प्रमाण है। वे ज्यादा तालमेल नहीं करते, बल्कि अक्सर ज्यो-का-त्यो रख देते है— दृश्यो को गीतो मे। यथा—

हरा भरा ससार है ऑखों के आगे
ताल भरे है, खेत भरे हैं
नई नई बाले लहराए
झूम रहे है धान हरे हैं
झरती हैं झीनी मजरियॉ
खेल रही है लोल लहरियॉ
जीवन का विस्तार है ऑंखों के आगे[9]

त्रिलोचन की कविता मे 'सहजता का आलोक' स्पष्ट कथनो, पूरे-पूरे वाक्यो, लोक से जुडी भाषा और भाव-सवेदना आदि रूपो मे दिखता है। 'भाषा की गद्यात्मकता और वर्णनात्मक तकनीक त्रिलोचन की कविता के सबसे विशिष्ट गुण है। अपनी ज्यादातर कविताओ मे वे इस गद्यात्मकता और सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक को उस खतरनाक छोर तक साधने का जोखिम उठाते है, जहॉ कई बार कविता के 'कविता' न रह जाने की आशका भी उत्पन्न हो जाती है। यहीं हमें त्रिलोचन की वास्तविक क्षमता और उनके चकित कर देने वाले कौशल का पता चलता है। गद्यात्मक वाक्य-विन्यास और ठेठ वर्णन की तकनीक के बावजूद उनकी कविताएँ सपाट और इकहरी नहीं हो जाती।'[10] सवाल उठता है कि 'त्रिलोचन भाषा की गद्यात्मकता और सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक के प्रति इतना अधिक आग्रह क्यो दिखाते हैं? उनकी कविताओ का कोई भी जागरूक पाठक सहज ही यह देख सकता है कि यह तकनीक उनकी यथार्थवादी पद्धति और प्रगतिशील दृष्टिकोण के सर्वाधिक अनुकूल पडती है। उनकी कविताओ को गौर से देखने पर पता चलता है कि आम बोलचाल के गद्य की आन्तरिक लय उनमे पूरी तरह सुरक्षित रही आती है और विशिष्ट शब्द-पद-क्रम तथा ध्वनि आवर्तों के सहारे त्रिलोचन बडी कुशलता से उसमे अवसरोचित त्वरा या धीमापन भी पैदा कर देते है। इसी तरह ठेठ वर्णन की तकनीक के सहारे वे वस्तु-तत्त्व पर सीधा 'फोकस' कर पाते है। इसके अलावा इससे त्रिलोचन की कविता मे एक और दुर्लभ गुण भी उत्पन्न हो जाता है। वह है उनकी कविताओ की सरलता और सहजता। जटिल से जटिल भाव-स्थितियो मे भी यह सहजता और सरलता उनके काव्य का प्राण होती है।'[11] 'तुम्हे सौपता हूँ' सग्रह की एक कविता मे उन्होंने कहा भी है कि 'अपने अन्तर की अनुभूति बिना रँगे चुने /कागज पर बस उतार देता हूँ।'

छायावादी भाषा के असर से मुक्त होने और अपना नया रास्ता तैयार करने के लिए त्रिलोचन जिन दो बातो की मदद लेते है, वे गद्य का वाक्य-विन्यास और वर्णनात्मकता ही हैं। यही वजह है कि उनकी ज्यादातर कविताओ में हमे कोई-न-कोई कहानी अवश्य मिलती है। इस कथात्मक वर्णन को ठेठ गद्य के वाक्य-विन्यास मे सजाकर त्रिलोचन एक बिल्कुल नयी यथार्थवादी शैली का निर्माण करते है। इसका सम्बन्ध यदि जोडा जा सकता है, तो निराला की 'नये पत्ते' की कविताओं से ही।[12] 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'नगई महरा', 'फेरू', 'चित्रा जॉंबोरकर', 'रैन बसेरा'—आदि अनेक कविनाएँ ऐसी हैं, जिनमे कथातत्त्व की प्रधानता है। बहुत बारीक-सी कथा उनके कई गीतो मे भी

पायी जाती है। जैसे-'जब जिस छन मै हारा', 'मै जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूँ' ('धरती') और 'फूल मुझे ला दे बेले के' ('तुम्हे सौपता हूँ') आदि मे। उनके सॉनेट तो कथा तत्त्वो से भरे हुए है ही। उनके प्रथम सॉनेट-सग्रह 'दिगत'(जो हिन्दी का भी पहला सॉनेट-सग्रह है) से 'सिपाही और तमाशाबीन', 'रोटी', 'भिखरिया', 'अतवरिया', 'भौर्जा', 'जगदीश जी का कुत्ता', 'आया है वह' और 'अपघात' शीर्षक सॉनेटो को प्रमाण के रूप मे बेहिचक प्रस्तुत किया जा सकता है। उनके यहॉ कथातत्त्व मात्र 'फिर क्या हुआ?' की कुतूहल-वृत्ति को शान्त करने वाला कथातत्त्व नहीं है, बल्कि जीवन की गभीर व्याख्या करने वाला कथातत्त्व है। सीधे-सादे कथात्मक वर्णन मे वे हमेशा व्यक्ति-सत्य के माध्यम से किसी-न-किसी समाज-सत्य का उद्घाटन करते है, कोई-न-कोई अन्तर्विरोध उजागर करते है। उनकी कविताओ में लोक कथाओ जैसी सरल, चुटीली और गहरे घाव करने वाली कहानियॉ है।

अनेक कविताओ मे कथात्मकता को ठेठ गद्य के वाक्यो मे गुम्फित कर त्रिलोचन अपने लिए एक नया रास्ता अपनाते है, जिसे 'गद्य कविता' की सज्ञा दी जा सकती है। ऐसी कविताओं में वर्णनात्मकता, कथात्मकता और संलाप की लय मिलती है। 'धरती' सग्रह की एक कविता है—'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती'। पहली बार इस कविता मे त्रिलोचन कथात्मक वर्णन को ठेठ गद्य के वाक्य-विन्यास मे सजाकर एक बिल्कुल नयी यथार्थवादी शैली का निर्माण करते है। बकौल नामवर सिह—'यह कविता सन् 40-41 के आसपास की है। हिन्दी कविता के लिए उस समय यह एकदम नयी भाषा थी। हर तरह की चालू काव्य-भाषा से अलग।'[13] क्योंकि इसमे चम्पा स्वय बोलती है— अपने गॅवई बोली-बानी, लहजे और सहज भोलेपन के साथ। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया है कि स्वय त्रिलोचन को 'यह तो सदा कामना थी, इस तरह से लिखूॅ/जिन पर लिखूॅ, वही यो अपने स्वर मे बोले'। ('उस जनपद का कवि हूँ', पृ०115) इस कविता में कवि ने चम्पा के बातचीत के लहजे को टाक भर दिया है— बिना किसी छेडछाड के। इसकी "सृजन-प्रक्रिया मे लोकबोली का भी सस्कार हुआ है। लोकगीत के छन्द का भी और लोकगीत के काव्य का भी। भाषा खडी बोली है, लेकिन उसमें 'अच्छर''अक्षर' नहीं हुआ न 'बजर' 'बज्र' और 'चीन्हती' क्रिया भी अपनी सहजता के साथ डटी हुई है। वाक्य-विन्यास गद्य का है लेकिन उसमे एक अन्तर्निहित लय है— धूमिल के मोचीराम से कहीं अधिक। बातचीत के क्रम में पढे-लिखे कवि की भाषा भी 'हारे गाढ़े काम सरेगा' वाली ठेठ मुहावरेदानी अपना लेती है।"[14]

'चम्पा...' कविता मे 'सहजता' अपने उत्कृष्ट रूप मे मौजूद है। कविता मे छोटी बच्ची चम्पा अपने पूरे भोलेपन के साथ मौजूद है। 'चम्पा का भोलापन कवि की रचना नही है। रचनात्मकता उस भोलेपन की प्रस्तुति मे है। अनिवार्य-कथनता से लाभ यह हुआ कि यह भोलापन वागाडम्बर से आहत नहीं हुआ। भोलापन कथित नहीं— वह सवाद से प्रकाशित होता है— पाठक-श्रोता के मन मे।'[15] कविता मे व्यक्त चम्पा का पढने से कतराना और दलील देना सहज मानी जानी चाहिए। और यही बात इस कविता के सहज विकास की प्रक्रिया है। चम्पा से बातचीत के क्रम मे कविता आगे बढती है— 'मैने कहा कि चम्पा, पढ लेना अच्छा है/ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,/कुछ दिन बालम सग साथ रह चला जायगा जब कलकत्ता/बडी दूर है वह कलकत्ता/कैसे उसे सॅदेसा दोगी/कैसे उसके पत्र पढोगी/चम्पा पढ लेना अच्छा है।' पढने के पक्ष मे कवि का यह ऐसा तर्क है जो बालिका की आन्तरिकता को छूता है— उसे दहलाने की हद तक। और पति के मामले मे स्त्री का ढीठपन यहॉ की परपरा को स्वीकार नही है, इसलिए त्रिलोचन जी की तर्क पद्धति बहुत ही सहज है। कविता आगे बढती है— 'चम्पा बोली · तुम कितने झूठे हो, देखा/हाय राम, तुम पढ-लिख कर इतने झूठे हो/मैं तो ब्याह कभी न करूँगी/और कहीं जो ब्याह हो गया/तो मै अपने बालम को अपने सग साथ रखूँगी/कलकत्ता मै कभी न जाने दूँगी/कलकत्ते पर बजर गिरे।' यहॉ पर चम्पा का विवाह करने से इनकार हमारे यहॉ की लज्जा व सकोच के तहत ही है। साथ ही 'चम्पा का कवि पर आरोप बहुत ही सहज है, जो हमारे यहॉ की हया परम्परा के अन्तर्गत आता है। देशज परम्परा में पढे-लिखे आदमी को सत्य यानी सही जानकारी के नजदीक माना जाता है। पढे-लिखे आदमी ने जब लोक के सहज विश्वास को छला तो झूठा जान लिया गया। त्रिलोचन पर यह आरोप इसी आधार पर लगाया गया है।'[16] परदेसी बालम के लौटकर न आने, और सदेशा भी न देने की अनेक व्यथा-कथाऍ सखियो से सुनकर ही शायद चम्पा के हृदय को इतनी चोट पहुॅची है कि वह लगभग शाप देने की मुद्रा मे कहती है— 'कलकत्ते पर बजर गिरे'। स्त्री के मुहावरे मे यह एक गाली है, लेकिन लगभग शाप देने जैसा। पाठक-श्रोता के मन मे इसकी अनुगूंज कविता को समाप्त नहीं होने देती। वह बहुत दूर तक और बहुत देर तक हमे बाधे हुए अपने साथ लिए चली जाती है।

इस कविता मे कथ्य-कथन की सादगी और जीवन की स्वाभाविकता लाने के लिए कवि ने काफी मेहनत की है। शब्दो का परिवेश जीवन के परिवेश से जुडा है, चरित्र और

उसका सवाद भी। कविता मे परिवेश, चरित्र और उसका सवाद— ये तीनो मिलकर 'जीवन का एक लघु प्रसग' रचते है। कविता मे चम्पा का भोलापन इस सहजता से समूचे काव्याभिव्यजना मे— अर्थात् वस्तु और रूप, कथ्य और शिल्प, भाव और भाषा मे— उभरकर सामने आता है कि आभास ही नहीं होता है कि कवि ने इसके लिए कोई बडा प्रयास किया है। लेकिन कविता मे बात को कहने के ढग की सादगी और सहजता एक लम्बी कला-साधना का ही परिणाम होती है। स्वय त्रिलोचन की दृष्टि मे— उत्कृष्ट रचना वह है जिसे पढते समय रचनाकार का रचना-कौशल भूल जाए—

रचना देखत बिसरइ रचनाकार
तब रचना कइ रूप होइ उजियार।[17]

कवि ज्ञानेन्द्रपति का कहना है— "त्रिलोचन की सहजता की साधना कला-साधना की अविरोधी है। बल्कि यदि यह सच है कि कला वहीं अपने निखरे रूप मे होती है जहाँ वह तनिक ध्यान नहीं खीचती, तो कहना होगा कि त्रिलोचन से बडा कलाकार कवि अभी हिन्दी मे दूसरा नहीं।"[18] जीवन की सामान्य स्थितियो को उसी तरह बनाए रखना, जैसे उसमे कोई खास बात है ही नहीं, और उन स्थितियों मे से कविता पैदा करना, मार्मिकता पैदा करना त्रिलोचन की खास विशेषता है। और इसमे उन्होंने बहुत बडी साधना की है। इसमे वे सिद्धहस्त है। कवितापन से कविता को दूर रखना उनकी महत्वपूर्ण विशेषता है, और इस अर्थ मे वे बहुत बड़े प्रयोगशील कवि है। जीवन को उसकी समूची स्वाभाविकता या सहजता के साथ अपनाने वाले त्रिलोचन, कविता मे भी बनावटीपन या कवितापन के सख्त खिलाफ है; चाहे वह बनावटीपन भावाभिव्यक्ति मे हो, चाहे भाषा-शैली मे।

'धरती' सग्रह मे ही 'प्रोज-पोएट्री' के फार्म में लिखी गई कविता है— 'जीवन का एक लघु प्रसंग'। यह कविता छन्द या मुक्त छन्द मे नहीं, ठेठ गद्य के विन्यास मे है, और गद्य की आन्तरिक लयमयता तथा वर्णन व सलाप का आत्मीय ढग उसे काव्यात्मक स्तर प्रदान करती है। यह 'रूप' की दृष्टि से विलक्षण प्रयोग है, जिसकी नवीनता पर शुरू मे किसी का ध्यान नहीं गया। संवाद शैली में यह अलग-अलग मानसिक-वैचारिक भूमि का गद्य है। 'रामचरितमानस' के मंथरा-कैकेयी संवाद और 'रामचन्द्रिका' के अगद-रावण सवाद के खरेपन जैसा ही यहाँ सधे हुए लोकजीवन की मुहावरेदानी और लोकोक्तियों से भरे-पूरे और आक्रामक वाक्य है। कविता शुरू होती है संस्मरण या आपबीती से। आगे सवाद की शैली में 'देखने' और 'सोचने' के बीच है त्रिलोचन का 'जीवन की गहराई से जुडी कला दृष्टि'।

इस कविता मे क्रमश कई नाटकीय दृश्य उपस्थित होते है। बालक की व्यग्र मन स्थिति, मॉ के रूढ़िग्रस्त संस्कारों और बूआ का ज्ञान पर आस्थाशील सस्कारो के बीच का द्वन्द्व— वर्तमान और भविष्य के बीच का द्वन्द्व— आदि के तनावो के बीच कविता क्रमश आगे बढती है। अन्त मे, मॉ के रूढिग्रस्त संस्कार बूआ के आगे हथियार डाल देते है—

बूआ ने कहा धन्य बुद्धि, जो नहीं पढते, वे सब क्या अमर है?
मॉ ने कहा देखते हुए मक्खी लीलते नहीं बनता,
पढ लिख कर ही आखिर फलाने विक्षिप्त हुए,
पढ़ते-लिखते ही तीन-चार जने मर गये,
तुमको तो जैसे कहीं पत्ता भी नहीं खडका,
गिरते हुए थोडा भी।
बुआ ने कहा दुलहिन (मॉ को वे यही कहा करती थीं) इस बच्चे को
मैने श्रद्धा से, प्रेम से, निष्ठा से,
विद्या को दान कर दिया है,
जानबूझ कर दान कैसे फेर लूॅ,
ऐसा कभी नहीं हुआ—
विद्या माता ही अब इसको निरखे-परखे।
रक्षा और पालन-पोषण करे।

(धरती, पृ० 82)

इस कविता मे नाटकीयता का गुण भी सहज और प्राणवान है। पूरी कविता मे नाटकीय सवाद की विशिष्टताऍ बोलचाल की शैली मे मौजूद हैं। कविता मे वाक्य पूरे है। कहीं-कही वाक्य में किंचित फेरफार है अन्यथा सीधे-पूरे वाक्य। सन् 1936 मे[19] कविता के फार्म मे लिखते हुए गद्य का इस तरह इस्तेमाल निश्चय ही कविता के स्वरूप को बदलने का ही एक उपक्रम था। त्रिलोचन ने कहा भी है

पावइ केउ तउ ठीक न पावइ ठीक
कबिता कबहुॅ न चली एक धइ लीक।

(अमोला, पृ० 152)

'धरती' की दो-तीन गद्य-कविताओ को लक्ष्य करके ही शायद मुक्तिबोध ने कहा था 'प्राच्य क्लासीकल स्ट्रेन और पाश्चात्य प्रोज टेकनीक का वे समन्वय किया चाहते है। उसका प्रथम चरण ही धरती का काव्य है, हम केवल इतना कह सकते हैं।'[20]

'धरती' की कविता 'चम्पा.. ' और 'जीवन का एक लघु प्रसग' की टेकनीक का बहुत सार्थक विस्तार 'नगई महरा' मे हुआ है। इस कविता की रचना 'चम्पा' कविता की रचना के लगभग तीस-बत्तीस साल बाद हुई। यह एक सीधी-सादी कथात्मक कविता है, जिसमे वर्णनात्मकता व गद्यात्मकता पर खास जोर दिये जाने के बावजूद बातचीत का लहजा स्वाभाविक है, और बातचीत की आन्तरिक लय भी मौजूद है। भाषा मे लोक-बोली 'अवधी' का गहरा पुट अपने नैसर्गिक रूप मे मौजूद है, जो एक पूरे समाज के नेमधर्म, रस्मोरिवाज और अन्तर्विरोधों को खोलता चलता है

> नगई का परिवार
> छोटा था
> घरनी और एक बच्ची
> बच्ची गोहनलगुई थी
> घरनी सेदुर से मिली नही थी
> धरौवा कर लिया था[21]

इन पक्तियों की लय बोलचाल की गद्य से मिलती-जुलती है। साधारण बोलचाल की लयात्मकता यहॉ उल्लेखनीय है। इसकी भाषा बोलचाल की भाषा है, जिसमे कोई लाग-लपेट या अलकारिता नहीं है। शब्दो का परिवेश जीवन के परिवेश से जुडा है। यानी नैसर्गिक जीवन की अभिव्यक्ति नैसर्गिक भाषा मे हुई है। कविता में एक ताजगी है, खुलापन है— कहन का, बतकही का, लोकजीवन के शब्दो के प्रयोग का, वाक्यो के गढन का। यह कविता, कविता को कहानी की तरह वाचिक परम्परा के निकट ला देती है। लोक-जन के राग, उनका पूरा परिवेश, उनके सस्कार, उनकी परम्पराएॅ, उनका जीवनोल्लास और जीवन सघर्ष— सबकी अभिव्यक्ति इतने ताजे-टटके रूप में हुई है कि पढने पर आन्तरिक सुख का अहसास होता है। जैसा कि, नामवर सिंह ने कहा है· 'कविता तो क्या कहानी मे भी इतने कम शब्दो मे ऐसा जीवन्त चित्र दुर्लभ है।'[22]

हिन्दी की लम्बी कविताओ की परम्परा मे 'नगई महरा' अनेक कारणों से विशिष्ट है। 'उसमे लम्बी कविता को मिथक, फैण्टेसी, रूपक और अमूर्तन के घटाटोप से मुक्त करके जन-जीवन के यथार्थ और ठोस अनुभवो की भूमि पर उतार लाने का सफल कलात्मक प्रयास है। उस कविता मे जन-जीवन के अनुभव उसी जीवन की भाषा मे यथार्थवादी रचाव के साथ व्यक्त हुए है। यथार्थ से भाषा का ऐसा आत्मीय सम्बन्ध केवल

'हरिजन गाथा' (नागार्जुन) मे दिखाई देता है।'[23] 'चम्पा' और 'नगई महरा' जैसी कथा-कविताओ का सौन्दर्य उनके चरित्र की स्वाभाविकता, विश्वसनीयता के साथ-साथ रूपगत सहजता, स्वाभाविकता और भाषा के ठेठपन मे सुरक्षित है।

व्यर्थ की काव्यात्मकता से छुटकारा पाकर और जीवन के सहज गद्य को आत्मसात करके त्रिलोचन की कविताएँ अपना एक नया, किन्तु सहज शिल्प गढती है। कविता के अन्दर कहानी कहने मे, वस्तुओ के यथातथ्य ब्यौरे प्रस्तुत करने में और लोगो की बोली-ठोली के प्रस्तुतिकरण मे यह जीवन का गद्य अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ प्रकट होता है। कविताओ मे अच्छा गद्य लिखना, वास्तव मे बहुत मुश्किल काम है। त्रिलोचन की कविता अच्छा गद्य, सुगठित-सुव्यवस्थित और बोलचाल की सहज लय-प्रवाह से युक्त गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। बोलचाल के गद्य का टेकनीक अपनाने से त्रिलोचन की कविताओ मे स्पष्टता और सहजता या स्वाभाविकता मौजूद रहती है। वस्तुत कविता मे गद्य के प्रयोग का अर्थ है— उसे सामाजिक यथार्थ के और अधिक निकट लाना। उसमे जीवन की स्वाभाविक क्रियाओ और नाटकीय भगिमाओ को सहजता से पिरोना। कविता मे गद्य की ताकत क्या हो सकती है— इसे त्रिलोचन न केवल जानते है, वरन् बखूबी दिखलाते भी है।

त्रिलोचन जी की एक खासियत तो यह है कि कविता मे उनका जोर विशेषणो या सज्ञापदो पर नही, 'क्रिया' पर रहता है। कविता मे 'क्रिया' उन्हे सर्वाधिक पसन्द है क्योंकि 'जीवन की हलचल' की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त रूप 'क्रिया' ही है। उनकी नजर मे 'भाषा की लहरो मे जीवन की हलचल है,/गति मे क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगत, पृ० 67) क्रिया पूरी करने के लिए ही शायद वे कविता मे हमेशा 'एक पूरा वाक्य' लिखना पसद करते है। यह बहुत कडियल किस्म का गठन है, पर इसमे सादगी के साथ-साथ भाषा की ताकत भी प्रकट होती है। उनके क्रियापद एक ओर तो कविता की अभिव्यजना की गति को बढाते-चलाते है, तो दूसरी ओर भाव-भगिमा मे चपलता ला देते है। कविता मे अधूरे वाक्यो का प्रयोग करने, सहायक क्रियाओ का प्रयोग न करने के कारण ही छायावादी काव्यभाषा कमजोर व ढीली-पोली हो गई, दूसरी ओर काव्याभिव्यक्ति भी अस्पष्ट और उलझी हुई है। भाषा मे 'सहायक क्रिया' की शक्ति को कवि राजेश जोशी ने त्रिलोचन के सग-साथ मे बखूबी समझा था, और अपनी कविता 'सहायक क्रिया' में बखूबी अभिव्यक्त किया—

हमारी भाषा की कुछ बानक ही ऐसी है
कि बिना सहायक क्रिया के उसका काम लगभग नहीं चलता।

× × ×

वाक्य मे वह अपने आप तलाश लेती है अपनी जगह
उसकी जगह में बहुत ज्यादा हेरफेर सभव नहीं

× × ×

भाषा के कुशल करतबबाजो ने बहुतेरी कोशिश की
वाक्य से उसे बाहर रखने की।
पर जीवन के व्यापक गद्य में उसकी उपस्थिति बनी रही लगातार
जब-जब उसको बाहर रखने की कोशिश होती है
भाषा कुछ डरी डरी-सी मरघिल्ली सी लगने लगती है
उसके आने से पूरे पद मे एक अजब ठसक सी पैदा हो जाती है।
कभी-कभी वक्ता के मन्तव्यो की व्यजना भी छिपी रहती है उसमे
शासक अपने आदेशों मे वृत्तिक सहायक क्रिया का
इस्तेमाल करते है अक्सर
सशय की गुंजाइश कम हो जाती है वाक्य मे उसके आ जाने से।[24]

त्रिलोचन शास्त्री हिन्दी के अकेले ऐसे कवि है, जो गद्य की तरह कविता की भाषा मे भी अटूट वाक्य-विन्यास को एक बुनियादी शर्त की तरह सामने रखते है। वे कविता मे हमेशा एक पूरा वाक्य लिखने के हिमायती ही नहीं हैं, बल्कि पूरी चौकसी के साथ कैसा भी फार्म हो– उसमे वे पूरा वाक्य लिखते ही है। और तो और 'सॉनेट' जैसे बहुत ही नपे-तुले फार्म मे भी वे बखूबी अनवरूद्ध चरणान्त लिखकर वाक्य पूरा करते है। बानगी के तौर पर–

मेंहदी की अरघान उडी देखा, फिर ठहरा,
    कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे हैं
    अपने सौरभ के स्वर मिल कर मिला रहे हैं
हवा चली, मानो वे बोले, निशिदिन पहरा
यहॉ हमारा रहता है. गहरे से गहरा
    भेद हमारे यहॉ खुलेगा. दिला रहे है–
    हम मेंहदी से मर्म सत्य का; पिला रहे हैं–
अमृत घ्राण को स्वार्थ यहाँ तक आते हहरा.[25]

हिन्दी के कवियों मे त्रिलोचन ही ऐसे है, जिन्होंने कविता मे वाक्य की समाप्ति पक्तिमध्य में की है। सॉनेटो मे पूर्ण वाक्य-विन्यास और अरूद्धचरणातता के कारण उनकी काव्यभाषा उस स्तर पर चलती है जहॉ कविता की लय और गद्य की लय परस्पर घुलमिल जाती है।

सॉनेट के लिए त्रिलोचन ने रोला छन्द को अपनाया है, लेकिन ज्यो-का-त्यो नही। 'रोला के ऊपर न केवल सॉनेट का एक और अनुशासन वह कायम करते है बल्कि उसके मात्रिक अनुशासन और आन्तरिक लय को बरकरार रखते हुए भी उसकी पारम्परिक सहज गेयता को वह एक तरह से भग कर देते है या उसे दुरूह बना देते है। हो सकता है कि वह किसी शास्त्रीय बन्दिश में गाया जा सके। लेकिन रोला की सहज धुन मे तो उसे नही ही गाया जा सकता है। त्रिलोचन वाक्य बडा बनाते है जो सॉनेट की दूसरी पक्ति के आधे मे जाकर, और कभी-कभी तीन पक्तियों में समाप्त होता है। इस तरह छन्द के अनुशासन मे पक्तियॉ तो रहती है, लेकिन वाक्य उस अनुशासन मे नही होते। इससे रोला की सरल गेयता काफी हद तक गद्यात्मक लय के नजदीक पहुॅच जाती है। रोला छन्द का यह रचाव त्रिलोचन की अपनी अलग पहचान बनाता है। यह छन्द से मुक्ति के बजाय छन्द की ही मुक्ति का एक प्रयास है।'[26] सॉनेट के लिए रोला छन्द के इस तरह उपयोग पर शास्त्रज्ञ आचार्यो को भी चकित रह जाना पड़ता है।

अपनी कविता के लिए त्रिलोचन ने 1950 ई० के आसपास सॉनेट का फार्म अपनाया। तुक विधान और सॉनेट के चरणो का विभाजन करने मे उन्होने पाश्चात्य कवियो— पेट्रार्क, शेक्सपियर, मिल्टन और स्पेन्सर की पद्धतियो का इस्तेमाल किया। लय की गति का धीमा होना, काव्य-स्वर मे गंभीरता, विचारशीलता, अनुभूति की गहन एकाग्रता के साथ ही चौदह पंक्तियो मे तुक का अनुशासन आदि, जो सॉनेट की विशेषताएॅ हैं, त्रिलोचन की मनोभूमि के काफी अनुकूल थीं। आवेगो की अभिव्यक्ति का संयमित ढग और स्वर की तटस्थता वाली अपनी काव्य मानसिकता के कारण ही शायद त्रिलोचन जैसा ठेट जनवादी कवि, सॉनेट जैसे विदेशी काव्य-रूप से आकर्षित हुआ। इन सब कारणो के साथ ही, जैसा कि सुधीश पचौरी ने कहा है 'सॉनेट अचानक त्रिलोचन का अपना फार्म इसलिए भी बन जाता है क्योकि वे बिम्बो मे नहीं, सरल वाक्यो मे सोचने वाले कवि है और शायद अपने ढंग के एकमात्र, अकेले, निपट-अकेले कवि है, जो सिर्फ वाक्यो मे सोचते है और पूर्ण वाक्य मे ही कहते है। सॉनेट उन्हे वाक्यों के अन्वय से खेलने का मौका देने है

क्योकि छन्द के बन्धन के बावजूद, उसमे वे खेलने का अवकाश निकाल सकते है।'[27] कविता में त्रिलोचन के वाक्य-गठन की खूबी है कि वह विचारबोध, सवेदनाबोध और इन्द्रियबोध—कहीं से कविता के अर्थ को उलझाती नहीं है।

त्रिलोचन की कविता मे सहजता का एक रूप सॉनेटो के अरूद्धान्त वाक्य-प्रवाह मे भी मौजूद है। सॉनेटो मे प्राय· बोलचाल की भाषा की सहजता है, और उसमे वाक्य पूरा होने की शर्त रहती है। उनमे वाचन-प्रवाह और सवेदन-बोध की इकाई उनके वाक्य है, पक्ति नही। वहॉ पक्ति के बजाय वाक्य जादू जगाते है। उदाहरण के लिए एक सॉनेट का यह अश देखा जा सकता है .

दुपहर थी जेठ की हवा भी चल कर ठहरी
थी नीम की छॉह चलता कूऑ. मूडे. चले
हम तुम. प्यास कडी थी और थकन भी गहरी.
घनी छॉह देखी. जा बैठे पेड के तले
घमा गए थे हम. फिर नगे पॉव भी जले
थे. मर गया पसीना, जी भर बैठ जुड़ाए
लोटा-डोर फॉस कर जल काढा पिया. भले
चंगे हुए. हवा ने जब तब वस्त्र उडाए.[28]

इसमे एक शब्द के भी वाक्य है, दो शब्दो के भी, तीन शब्दो के भी, चार शब्दो के भी, पॉच शब्दो के भी और उनसे ज्यादा के भी। इससे अदाज लगाया जा सकता है कि हिन्दी का वाक्य-विन्यास पूरे-पूरे वाक्यो वाले छन्दोबद्ध काव्य-रूप की रचना मे किस तरह सहायक हुआ है। वस्तुत जीवन की ओर देखने वाले लेखक मे वाक्य ज्यादा प्रमुख होता है। वाक्य ही आगे चलकर मुहावरे का रूप लेता है। जीवन की ओर देखने वाली रचना मे मुहावरे अधिक होते हैं। उपर्युक्त उद्धरण मे 'चलता कूॅआ', 'प्यास कड़ी थी', 'थकन भी गहरी', 'मर गया पसीना'— आदि मे हम देखते है कि वाक्य ही मुहावरे का रूप ले चुके हैं। इनके सहारे कवि ने अपनी बात बहुत ही सक्षेप मे, चुस्त ढंग से कह दिया है। कवि केदारनाथ सिह ने ठीक ही कहा है कि, "शब्दो की जैसी मितव्ययिता और शिल्पगत कसाव उनके सॉनेटो मे मिलता है, वैसा निराला को छोडकर आधुनिक हिन्दी कविता मे अन्यत्र दुर्लभ है।"[29] त्रिलोचन के सॉनेटो मे अनुशासन, मितकथन और चुस्ती के साथ-साथ लय-तुक सब दुरूस्त मिलता है।

रोला छन्द के ऊपर सॉनेट का एक और अनुशासन कायम करने के बावजूद त्रिलोचन उसमे जिस गद्य-भाषा का प्रयोग करते है, वह प्राय बोलचाल की स्वच्छन्द भाषा है। वाक्य की पूर्णता और बातचीत की लय का विन्यास सॉनेट के काव्यानुशासन मे बॅधकर अपनी अनूठी शक्ति का परिचय देते है। फिर भी सॉनेटो मे सहजता बरकरार रहती है। सॉनेटो मे बातचीत की सहज लय मे विन्यस्त 'जीवन का सहज गद्य'— वह भी अरूद्धान्त वाक्य-विन्यास के रूप मे— कुछ इस तरह मौजूद रहता है कि वाक्य-विन्यास के अनुसार पक्तियो को तोड देने पर अच्छा-खासा मुक्त छन्द बन जाए। त्रिलोचन अपने सॉनेटो मे प्राय· "यति का स्थान ऐसे बदलते है मानो मुक्त छन्द लिख रहे हो।

चूक क्या हुई।
छोडो भी।
उसको अनजानी रह जाने दो।
मेरी बेचैनी से जी को विचलित और न करो।
पास आ गई।
हवा है,
चली जाएगी।
मुझसे इस क्षण की मनमानी कितनी देर चलेगी।
भरी सॉस छाती को दबा रही है धीरे-धीरे,
यही दवा है।

(फूलनाम है एक, पृ० 99)

यह सारे अर्ध विराम वही है जो पुस्तक मे छपे है। उनके अनुसार पक्तियॉ तोड कर वाक्य और वाक्याश यहॉ छापे गये है। यहॉ सॉनेट के उत्तर भाग की छह पक्तियॉ मजे मे मुक्त छन्द की तरह पढी जा सकती है। दरअसल उन्हे पढना इसी तरह चाहिए। अत्यानुप्रासो का सुख पाने के विचार से आपने 'सॉनेट' पढ़ा तो कविता हाथ से निकल जायेगी। ऊपर की पक्तियों में अंत्यानुप्रास कहॉ कहॉ है? — यह प्रश्न करने पर, सभव है, आप चक्कर मे पड जाऍ। यति का स्थान बदलने का कौशल यहॉ कुछ कुछ वैसा ही है जैसा निराला की इस कविता मे"[30]—

सडक के किनारे दूकान है पान की,
दूर एक्कावान घोडे की पीठ ठोंकता हुआ,

पीरबख्श एक बच्चे को दुआ दे रहा है,
पीपल की डाल पर कूक रही है कोयल,
माल पर बैलगाडी चली ही जा रही है।
नीम फूली है,
खुशबू आ रही है
डालो से छन छन कर राह पर किरने पड़ रही है .[31]

त्रिलोचन के यहाँ 'सॉनेट' के बँधे-बँधाए अनुशासन के बावजूद, मुक्त-छन्द जैसा लय-प्रवाह होने की वजह से काफी प्रभावित होकर केदारनाथ सिह ने लिखा— "इन सॉनेटो की एक विशेषता जो मुझे हमेशा आकृष्ट करती रही है, वह है इनका लचीलापन जो इनकी अलस लय को अनत सभावनाओ से भर देता है।"[32] सॉनेट और रोला छन्द को लेकर छायावादी और छायावादोत्तर काल के अनेक कवियो ने प्रयोग किए है लेकिन त्रिलोचन ने हिन्दी मे उनकी शक्ति का उद्घाटन करके अन्य कवियो से कही ज्यादा उन्हे हिन्दी कविता मे स्थापित कर दिया है। वास्तव मे जिस सादगी से त्रिलोचन ने 'सॉनेट' के शिल्प का निर्माण किया है, वह हिन्दी मे अद्वितीय है। उनके यहाँ सॉनेट के काव्यानुशासन का निर्वाह, रोला छन्द का निर्वाह और अटूट वाक्य-विन्यास का निर्वाह तथा बातचीत की भाषा-शैली की स्वच्छन्दता— एक साथ मौजूद है। यह एक अनूठा गुण है। सॉनेट की कसी-कसाई सरचना मे भी त्रिलोचन ने बातचीत के गद्य की-सी सहजता और निर्दोष वाक्य-गठन के साथ ही उसमे प्रवाह और आवेगशीलता भी बनाये रखा है।

गद्य का वाक्य-विन्यास और ठेठ वर्णनात्मक तकनीक अपनाने वाले कवि त्रिलोचन की ज्यादातर कविताओं में हमे कोई-न-कोई कहानी अवश्य मिलती है। उनके सॉनेट भी इसके अपवाद नहीं। उनके सॉनेटो मे प्राय एक कथा होती है— छोटी, मार्मिक, सृजनदात्री। आत्मचित्र भी कथा कहते है, अन्य चरित्र भी कथा कहते है। बानगी के तौर पर 'दिगत' सग्रह के एक सॉनेट मे मार्मिक लघु कथा द्रष्टव्य है

सीथ बीन कर खाता है अब वह बगाली
जो दूकान चलाता था, तन कर चलता था,
स्निग्ध प्रार्थनाओं के स्वर सुन कर ढलता था
और कृपा करता था, लेकिन अब कगाली
ने श्रीहीन कर दिया है. घर से गंगाली,
अर्तन बर्तन, बिके. एक दल ही पलता था
उसके अन्न और जल पर, प्रतिदिन छलता था
अपनापे के अभिनय से. अब घर है खाली.

लाला ओमप्रकाश कर्ण जैसे दानी है.
दान करेगे तभी घूँट पानी का उन के
गले उतर सकता है ब्रह्मा ने भी चुन के
उन्हे सपदा सौपी है कितने ज्ञानी है,
दोनो हाथ लुटाते है. मन के मानी हैं.
खिचडी बॅटवाते है, आया है वह सुन के

(दिगत, पृ० 49)

त्रिलोचन के सॉनेटो मे जैसी मार्मिक लघु कथाएँ मिलती है, वैसी लघु कथाएँ आधुनिक हिन्दी कविता मे मिलना मुश्किल है। कई सॉनेटों मे त्रिलोचन 'अपनी कथा' (आत्मकथा) का कोई मार्मिक प्रसग बुनते है— कभी आत्मचित्र के माध्यम से, तो कभी पिता, भौजी या अपने परिवार की गरीबी के अंकन के माध्यम से। 'उस जनपद का कवि हूॅ' सग्रह के इस सॉनेट मे उनकी 'आत्मकथा' का एक मार्मिक प्रसग है

... .. . अभावो का ही घर था
नाते रिश्ते के भी लोग बचा कर जाते,
मिला खा लिया, नहीं निराहारो ही पर था
दिन काटना. किसी प्रकार से लाज बचाते
थे बाबा ससुराल के सुजन एक आ पड़े,
चिता हुई, बहुत खाते थे डेढ पसेरी
चावल रॉधा गया, पुराना, साफ़ कर अडे
रहे. दी गई लिट्टी, चख कर उठे, न देरी
की. बाबा बोले, बस एतनइ, कुछु अवरउ खा,
रच्चा देखा चउरेउ कइ रोटी कइसनि आ.

(उस जनपद का कवि हूॅ, पृ० 91)

त्रिलोचन की बहुतेरी कविताओं मे कोई-न-कोई पात्र है, और उसकी कथा है। उनमें एक कहन की, नॅरेशन की जो खूबी है, वह किसी अन्य कवि के यहॉ उतनी विदग्धता के साथ मौजूद नहीं है। उनकी कविता में जितने प्रकार के चरित्र मिलते हैं, उतने प्रकार के चरित्र बहुत ही कम कवियो मे मिलते हैं। अधिकाश कवियो के यहॉ कविता मे वर्णन का अवकाश नहीं, कथातत्त्व के समावेश की गुजाइश नहीं, इसलिए वहॉ कविता मे चरित्रों के लिए भी स्थान नहीं बनता।

त्रिलोचन अपनी कविताओ मे सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक अपनाते है, और इस वर्णन की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे वस्तुओ को उनके नैसर्गिक वस्तुगत रूप मे प्रस्तुत करते है, न कि किसी अन्य के प्रतीक रूप मे। 'उनका सारा कौशल और सतर्कता इसी बात मे दिखाई देती है कि जिन वस्तुओ का वे वर्णन करे, वे अपने वास्तविक यथार्थ स्वरूप मे ही उभरे, किसी भी अन्य वस्तु के प्रतीक के रूप मे नहीं।.. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि त्रिलोचन ने इस बात पर उस दौर में जोर दिया, जब हिन्दी कविता मे प्रतीक और बिम्ब को ही भाषा और अन्तत· कविता का पर्याय बना डाला गया था।'[33] त्रिलोचन बिम्ब और प्रतीको के आकर्षण मे न फॅसे। क्योकि सीधे सहज ढग से बात कहने की जिद उन्हे शुरू से ही थी।

बिम्ब और प्रतीको के प्रयोग से बुनी जटिल भाषा-शैली से अलग त्रिलोचन की सीधी-कथन वाली शैली को शमशेर जी ने 'सपाट' (Straight) कहा है। 'सपाटबयानी' की शैली, जो सातवे दशक मे कविता की बिम्बवादी रूझान से मुक्ति के लिए आई, त्रिलोचन के यहॉ अपने आरम्भिक रूप मे विद्यमान है। सातवे दशक में कविता-भाषा बिम्ब-प्रधान एव आम जीवन से कट गया था। ऐसे समय कविता मे जीवन से जुडाव के क्रम मे सपाटबयानी की शैली अपनाई गई। नामवर सिह ने लक्ष्य किया "कविता मे सपाटबयानी का यह आग्रह वस्तुत गद्य-सुलभ जीवंत वाक्य-विन्यास को पुन प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग मे बिंबवादी रूझान निश्चित रूप से बाधक रहा है। नई कविता के उत्कर्ष काल मे भी प्रवाह-पतित होने का खतरा उठाकर एक कवि धारा के विरूद्ध वाक्य-विन्यास की रक्षा के लिए आवाज बुलंद करता रहा, लेकिन उसकी आवाज न तब सुनी गई और न अब— वह कवि है 'धरती' और 'दिगत' का रचनाकार त्रिलोचन"[34]। 'सपाटबयानी' त्रिलोचन की कविता के लिए अन्वेषित प्रतिमान नहीं है। सातवें दशक में जब बिम्बो की अधिकता से कविता रोजमर्रा की जिन्दगी से कटी, तो लगा कि कविता में जीवन से साक्षात्कार के लिए संवाद-शैली का उपयोग आवश्यक है। परिणाम हुआ 'सपाटबयानी' के रूप मे कविताएँ लिखी जाने लगी। कोई भी नई प्रवृत्ति जब आती है तो यह अक्सर देखा जाता है कि क्या उसका कोई सूत्र परम्परा मे पहले से है या नहीं। इसी अन्वेषण प्रक्रिया मे नामवर जी को त्रिलोचन की कविताएँ मिलीं। इस 'सपाटबयानी' मे बोलचाल की भाषा से जुडाव था और अटूट वाक्य को संरक्षित करने का प्रयास भी। सयोगवश त्रिलोचन इस दिशा मे प्रथम महत्वपूर्ण कवि है।[35] कविता मे बिम्बवादी और प्रतीकवादी आन्दोलन की अनुकृति या नकल और विदेशी कविता की छाया, जिसे त्रिलोचन 'कविता के चेहरे पर लगा हुआ उधार

का भद्दा पाउडर' कहते है, को पोछकर कविता को उन्होने सादे लावण्य से भरा—

वह कलक धो दिया, सहज मै ने बना दिया
कविता को— उस का स्वाभाविक सरल उजाला
दिपता है, ऑखो मे खुबता है, जना दिया
जो जानना सभी को था,

(उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 113)

प्रगतिवादी काव्यान्दोलन के शुरूआत मे निराला जैसा छायावादी कवि भी छायावादी कविता के अप्रस्तुत विधान, लाक्षणिकता और भाषा की सश्लिष्टता का परित्याग करके सीधी, सहज, निरलकृत भाषा और वर्णनात्मकता को अपनाते हुए कविता-देवी से कहा

सहज -सहज पग धर आओ उतर,
देखें वे सभी तुम्हें पथ पर।

वह जो सिर बोझ लिये आ रहा,
वह जो बछडे को नहला रहा,
वह जो इस-उससे बतला रहा,
देखूँ, वे तुम्हे देख जाते भी हैं ठहर?[36]

कविता उस समय आकाश से धरती पर उतर रही थी। निराला का इस पर जोर था कि सहज पग से उतरो। इस तरह उतरो कि रास्ते पर और लोगो के साथ दिखाई पडो, तथा तुम्हारे साथ लोगो का लगाव महसूस हो सके। निराला की इस कविता मे वस्तु एव रूप की जैसी सहजता है, वैसी ही सहजता त्रिलोचन की कविताओ मे प्राण बनकर समाया रहता है। त्रिलोचन के यहॉ 'सपाटबयानी'— 'असामान्यता या विशिष्टता को सामान्यीकृत करने का एक विशिष्ट काव्य-कौशल'— के रूप में सामने आता है, जो अभिव्यक्ति को सहजता प्रदान करता है; ठीक वैसे ही जैसे कबीर, तुलसी, जायसी करते है। कवि मलयज ने अपनी डायरी मे त्रिलोचन की कविता के प्रसंग मे लिखा है : "मुझे ऐसा महसूस होता है कि साधारणता में अपने को लय करके ही महान कला का सत्य प्राप्त होता है— महान कला अपने को इसी साधारणता मे लय करती है— कला की महानता लय होने मे है, अलग से तारे की तरह चमकने मे नही।"[37] सीधे बयान के रूप मे भी कविता कितनी अर्थपूर्ण हो सकती है, इसका अच्छा उदाहण त्रिलोचन का काव्य है। बानगी के तौर पर, उनके एक सॉनेट का यह अंश प्रस्तुत है .

पत्र तुम्हारा. पढा और नीरव ही देखा
इधर उधर. तुम अभी अभी केवल कुछ पहले
आए थे तब द्वार बद था जीवन-रेखा
मै भी पथ पर खीच रहा था चित्र सुनहले

जो मन मे थे, उन्हे धरा पर खोज रहा था,
तुम को क्या मालुम. तुम्हारी तो अभिलाषा
मन की मन मे रही किसी ने नही कहा था
कहॉ गया वह,तुम आए थे, जिसकी भाषा
सुनने और समझने अमिलन जन्य निराशा
कितना मूक बना देती है, छिपा नही है
मुझ से. . ...[38]

अंतरंग अनुभवो के इस सादे बयान मे, मानसिक स्थिति के इस चित्रण मे जो सन्तुलन है, धीरज है, जो सघनता या एकग्रता है उसके लिए 'कलात्मक' बहुत ही सीमित शब्द या विशेषण है। इस सादे बयान मे भी मानसिक स्थिति व अतरग अनुभवो की ऐसी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है, जिसके लिए अलकार, बिम्ब, प्रतीक जैसे काव्य उपमानो की जरूरत नही, और जिसके लिए सारे काव्य-साधन या उपकरण छोटे पड जाते है। सीधा बयान भी त्रिलोचन के लिए कविता के बाहर की चीज नहीं, यदि खरी अनुभूति के साथ ही आवेग को संयमित करने का बल हो। जैसे इस सॉनेट मे—

पलकें नीचे गिरीं, ऑख मे कहॉ ढिठाई
तब तक आ पाई थी, रोम रोम ही मानो
ऑख बन गया, सिहरन से लहराया, दानो
से किस के यह हर्ष भरा था और मिठाई
मन मे पाग उठी थी, मेरी और तुम्हारी
दो दुनिया अब एक थी, उधर कोयल बोली,
कही पपीहा चीख़ा, फेरी यों ही हो ली
प्राणो की मन की छवि अपने आप उतारी
हम ने अपनी अपनी ऑखो मे. यह ऐसे
हुआ कि जान न पडा. ... . .
चुपके चुपके प्राणों की वह अदलाबदली
भीतर बाहर छाई इंद्रधनुष की बदली

(उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 3५)

प्रेम के इस अतरंग अनुभव का सीधा-सादा बयान अपने मे इतना मुग्धकारी बन पडा है क्योकि इसमें खरी अनुभूति की गहराई तथा हृदय-भाव की निश्छलता मौजूद है। यहॉ वस्तु और रूप—दोनो मे 'सहजता का आलोक' मौजूद है। कथ्य-कथन मे इस तरह की बेलाग सादगी, असाधारण साधारणता और अनायासता त्रिलोचन की निजी विशेषता है। त्रिलोचन का मानना है कि, "कवि के पास जब कहने के लिए 'वस्तु' कम होती है तो उसकी रचना मे अलकारिता अधिक हो जाती है।"[39] त्रिलोचन की काव्यभाषा मे भी अलकार, बिम्ब, प्रतीक मिल जायेंगे, पर अलकरण या चमत्कार बनकर नहीं, बल्कि भाषा की सादगी, सहजता, क्षमता और जीवनी-शक्ति का प्रमाण बनकर।

एक तूफानी दौर की केदारनाथ अग्रवाल और अपनी कविताओ का अद्भुत साम्य देखकर नागार्जुन ने कहा था कि 'जो केदारनाथ ने लिखा, वह मैने लिखा और जो मैने लिखा वह केदारनाथ ने लिखा।'अन्तर्वस्तु और शिल्प दोनो की समानता को लेकर यह बात कही गयी थी। नयी कविता के अनेक कवियो की कविताओ मे भी इस प्रकार की समानता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लेकिन त्रिलोचन, प्रगतिशील काव्यधारा के एक ऐसे कवि है, जिनकी प्रत्येक कविता ही नहीं, वरन् एक-एक पक्ति पर, एक-एक शब्द पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। इस छाप का मूलाधार उनकी सहजता है।[40] बिना किसी दबाव के, एकदम सहज और सादे ढग से बोलचाल के लहजे मे अपने खास अदाजेबया से अपनी बात को रख देने का जो कौशल त्रिलोचन के पास है, अन्यत्र नही मिलेगा। सहज यथार्थ और उसका सहज प्रस्तुतिकरण त्रिलोचन की अपनी विशेषता है। यथा-'जब जब बाहर से आया तब तब मेरा घर/अपने अपनेपन से अधिकाधिक अपनाता'। (शब्द, पृ० 45) या 'डर लगता है जीवन मे उन से जो अपने/होते है, अपनेपन का ज्ञापन करते है'। (शब्द, पृ० 46) त्रिलोचन व्यग्य भी सहज होकर करते है और चीजो या घटनाओ को अतिरजित नही करते। यथा-'दीन, हीन, छवि-क्षीण और व्याकुल ईश्वर को/आज सडक पर हाथ पसारे मै ने पाया।' (शब्द, पृ० 49) यहॉ शब्दो का कोई जादुई चमत्कार नही वरन् अभिव्यक्ति की सहजता, मार्मिकता और भाषा की सम्प्रेषणीयता है, जो ठडे मौसम की तरह सबको प्रभावित करती है।

प्रकृति और जीवन की 'स्वाभाविकता' में सौन्दर्य देखने वाले त्रिलोचन, इनका चित्र खींचते समय स्वाभाविकता पर ही आग्रह रखते है, न कि बिम्ब, प्रतीक या अलकरण पर। वे अपने गहरे जुडाव से उपजे अनुभव को स्वाभाविकता के साथ, बिना किसी बनाव-सजाव के,

अभिव्यक्त करते है। आसपास के अतिपरिचित व साधारण दृश्यो पर उनकी दृष्टि टिकती और रमती है। लेकिन उनका वर्णन करते समय वे भावस्फिति के शिकार नहीं होते, बल्कि वर्णन की 'स्वाभाविकता' को अपनाकर सहज सौन्दर्य का साक्षात् कराते है। उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत हैं दो छोटे-छोटे चित्र

(क) मेमने कुदकते है
जाडे की धूप को जीवन के खेल से
ऑक ऑक देते है[41]

(ख) ऑख मूँदे, पेट पर सिर टेक
गाय करती है घमौनी बॅधी जड से
पेड की छाया खडी दीवार पर है[42]

दोनो ही चित्र जाडे की धूप मे जीवन के चित्र है · पहला, गतिमय जीवन का चित्र है और दूसरा, अपेक्षाकृत स्थिर। पहले मे जीवन की गतिमयता व उल्लास का चित्र है, तो दूसरे मे आलस्य और स्थिरता का चित्र। पहला चित्र दोपहर के पूर्व का है और दूसरा, दोपहर के ठीक बाद का। 'पेड़ की छाया खडी दीवार पर है'— पक्ति से दोपहर के बाद का बोध होता है। 'ऑख मूँदे, पेट पर सिर टेक'— पक्ति से पूरी शिथिलता का और 'गाय करती है घमौनी' के द्वारा इस शिथिलता मे जीवन-सौन्दर्य को अभिव्यक्ति मिली है। दोनो ही चित्र अत्यन्त स्वाभाविक और जीवन से भरपूर है। ये दोनो चित्र त्रिलोचन की सघन ऐंद्रिकता की बानगी पेश करते है। उपरोक्त छोटी कविताओ को त्रिलोचन की लघु कविताओं का बेजोड नमूना के रूप मे भी पेश कर सकते है। ऊपरी तौर पर ऐसी कविताऍ जापानी 'हाइकू' कविताओ से मिलती-जुलती है, लेकिन वस्तु एवं सवेदना-बोध के स्तर पर उनसे अलग है। ऐसी लघु कविताओं की तीन या चार पक्तियो मे 'जीवन का सूक्ष्म पर्यवेक्षण' है, और उसकी व्यापक व्यंजना को सांकेतिक भाषा मे, थोडे से शब्दों मे समेटा गया है। 'चैती', 'तुम्हें सौपता हूँ' और 'अरघान' संग्रहों मे संकलित लघु कविताऍ अपनी एकान्विति, गठन और बेधक सादगी में अत्यन्त प्रभावशाली है।

त्रिलोचन की कविता 'एक समग्र इकाई की तरह होती है। एक ऐसी अन्विति वहाँ होती है कि अलग से उसका कोई अश निकालकर उद्धृत करना अगर असम्भव नहीं तो मुश्किल जरूर होगा। यह अन्विति सिर्फ कविता, या भाषा के स्तर पर नहीं, अनुभव के

स्तर पर भी है। वह किसी एकागी या हिस्सो मे बटे अनुभवो को अपनी कविता मे शामिल नहीं करते।'[43] अनुभव और कथ्य-रूप की ऐसी एकान्विति हिन्दी के बहुत कम कवियों में मिलेगा।

त्रिलोचन के स्थापत्य का एक सूत्र है 'ध्वनिग्राहकता'। त्रिलोचन ने लिखा है 'ध्वनिग्राहक हूँ मै. समाज में उठने वाली ध्वनियॉ पकड लिया करता हूँ।' (दिगत, पृ० 25) जनजीवन की भाषा और चित्र ग्रहण करने के लिए त्रिलोचन को 'ध्वनिग्राहक' बनना पडता है। उनकी भाषा समाज में उठने वाली ध्वनियॉ ही है। उन ध्वनियो का ही ग्राहक है कवि त्रिलोचन। ये ध्वनियॉ ही उसे नये चित्र के साथ नयी भाषा देती है, जिसकी अभिव्यक्ति 'धरती' से 'मेरा घर' तक हुई है। चम्पा, नगई महरा, चित्रा जाबोरकर, छोटू— जैसी लम्बी कविताओ, सॉनेटों व अन्य कविताओ की भाषा 'जीवन-सवाद' की भाषा है, और 'जीवन की हलचल' से युक्त। भाषा की कृत्रिमता त्रिलोचन को पसन्द नही, इसीलिए उन्होने भाषा को बिना रगे-चुने इस्तेमाल किया है। उनका मानना है कि, "भाषा कथ्य के लिए इस प्रकार अनिवार्य है कि उसमे जरा भी सशोधन कथ्य को निस्तेज कर देगा।"[44] इसीलिए त्रिलोचन ने अपनी कविताओ मे अपने परिवेश मे, बोलचाल मे आने वाले शब्दो, मुहावरो व लहजो को ज्यो-का-त्यो आने दिया है, बिना किसी लाग-लपेट के अथवा बनाव-सजाव के। वे जानते है कि जीवन में व्यवहृत भाषा ही सृजनात्मक होती है, क्योकि यह सर्जनात्मकता जीवन से आती है। वे यह भी जानते है कि तराशी गई भाषा चमत्कृत तो करती है, लेकिन उसमे तराशा हुआ जीवन ही अभिव्यक्ति होगा, चम्पा, नगई महरा, भोरई केवट और फेरू कहार का सहज जीवन नही। त्रिलोचन की भाषा का गहरा सम्बन्ध जीवन की क्रियाशील एव जीवित भाषा से सतत रहता है, और वह भाषा जीवन के विपुल व विविध अनुभवो से निर्मित होती है। त्रिलोचन स्वय अपनी भाषा के बारे मे औरो से अपने अलग ढर्रे की बात करते हुए कहते हैं

> बड़े बडे शब्दो मे बडी बड़ी बातों को
> कहने की आदत औरो मे है पर मेरा
> ढर्रा अलग गया है ढाकों के पातों को
> थाली की मर्यादा दे कर पहला घेरा
> तोड दिया रस जीवन का जीवन से खींचा,
> दिये हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा
> उसको आदर दिया. मरूस्थल मन का सींचा

(उस जनपद का कवि हूँ, पृ०116)

त्रिलोचन ने लोकभाषा का आयत्तीकरण सॉनेट जैसे मुश्किल काव्य-रूप मे दिखलाया है। सॉनेट मे आए हुए अवधी के शब्दो से पता चलता है कि कवि का उन शब्दो से कितना घनिष्ठ और गहरा सबंध है। इधर-उधर से सुन-सुनाकर इस्तेमाल किये गये शब्दो मे उनकी आत्मा नहीं बोलती। 'चिल्ला जाडा', 'झॉय-झॉय करती दुपहरिया', 'भौर सी पगडण्डी', 'कोल्हाडो का गुलौर और चोका' तथा 'सबखइ और अलबैती' जैसे पद और नाम इनकी रचनाओ मे एकदम खपे-खपाए, ढले-ढलाए और रचे-रचाए आते है।[45] ध्वनिग्राहकता और जीवन से जुडाव के कारण ही त्रिलोचन की कविता मे शब्द-प्रयोगो मे, वाक्यो मे स्वाभाविकता हरदम मौजूद रहता है। *वस्तुत:* उनकी कविता मे शब्दो का परिवेश. जीवन के परिवेश से जुड़ा होता है। त्रिलोचन का मानना है कि, "एक अच्छी कविता मे यदि शब्द अपने समग्र परिवेश के साथ उपस्थित है तो उस पक्ति को बार बार पढे जाने पर भी उसका आकर्षण समाप्त नहीं होता।"[46]

'सवादमयता' त्रिलोचन की कविता के स्थापत्य की एक खास विशेषता है। 'मै तुम' कविता की पक्तियॉ हैं . 'मै तुम से, तुम्ही से, बात किया करता हूँ और यह बात मेरी कविता है'। (ताप के ताए हुए दिन, पृ० 61) उनकी ज्यादातर कविताओ की मूल प्रकृति बातचीत करने जैसी है। बहुत-सी कविताएॅ दो या अधिक व्यक्तियो के बीच सवाद जैसी है. और काफी कविताएॅ अपने-आप से सवाद करने जैसी। चम्पा, जीवन का एक लघु प्रसग. नगई महरा, चित्रा जाबोरकर, छोटू, रैन बसेरा–आदि अनेक कविताओ, और बहुतेरे सॉनेटो मे बतकही का आत्मीय रंग-ढग मौजूद है। कहीं कवि स्वय किसी से सरस व बेलाग बतकही मे मौजूद है, तो कही वह किन्ही दो या अधिक लोगो की बातचीत को 'ध्वनिग्राहक' बनकर बिना लाग-लपेट के सीधे-सादे ढग से पेश करता है। उनकी काव्य-शैली मे बतकही का रग-ढंग है जिससे पाठक सहज मे ही उससे अपनापा जोड लेता है। उनकी अधिकाश कविताओं मे बातचीत की सहज लय मिलती है। बानगी के लिए—

'अच्छा बॉच लेते हो रमायन
तुम्हारे बाबू कहते थे जैसे
अब कोई क्या कहेगा
उन की भीतर की ऑख खुली थी
सुर भी क्या कठ से निकलता था
जैसे असाढ के मेघ की गरज'

(ताप के ताए हुए दिन, पृ० 73)

त्रिलोचन ने हिन्दी कविता की लय को साधारण बोलचाल की भाषा की लय के करीब लाने का क्रान्तिकारी प्रयास किया है। वे अपनी कविताओ मे परिवेश, चरित्र, उसका सवाद— यानी 'जीवन का पूरा एक लघु प्रसग' रचते है। उन्होने अपनी कविताओ मे बातचीत के अन्दाज ही नही, अपितु बातचीत वाली भाषा का भी कलात्मक उपयोग किया है। इसीलिए उनकी काव्यभाषा मे बोली का ठाठ है। अपनी कई कविताओ मे वे अनेक आदमियो की बातो को तथा अलग-अलग टुकडो मे कही हुई बातो को इकट्ठा करके पूरे वातावरण को मूर्त कर देते है। इस प्रकार का प्रयोग दूसरे कवियो के यहॉ नही मिलता। त्रिलोचन ने यह गुण तुलसी से सीखा है। 'महाकुभ 1953' के मरणकाण्ड और राज्यपाल की सवेदनहीनता पर विभिन्न लोगो की प्रतिक्रियाओ का जीवत मूर्तीकरण निम्न सॉनेट मे देखा जा सकता है ·

> लाशों की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था
> राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही,
> चहलपहल थी, सागर और ज्वारभाटा था
> जो सुनता था वही थूकता था, 'यह. छी छी
> यह क्या रग ढग है. मानवता थोडी सी
> आज दिखा दी होती ' 'वे साहित्यकार है',
> कहा किसी ने औरत बोली झल्लाई सी—
> 'बादर होइँ, पहाड़ होइँ, आपन कपार है '
> पति ने कहा, 'होश में बोलो.' 'धुँआधार है
> उन के भाषण सस्कृति पर.' 'कोई तो स्याही
> जा कर मुँह पर मल देता ' 'ये भूमिभार है '
> 'कर की कालिख आप पोत ली है मनचाही.'

(अरघान, पृ० 73)

त्रिलोचन की बहुत-सी कविताएँ अपने-आप से सवाद करने जैसी हैं। 'इस सवाद मे ऐसी लय है मानो कवि किसी धुन मे अपने ही से बाते कर रहा हो। स्वागत सलाप की एक रौ। स्वागत संलाप की यही लय उनकी कविताओ को यदा-कदा नाटकीय भगिमा के करीब ले जाती है। यानी इनमें बोलचाल की धार है, भावों का वेग तथा प्रवाह है, सलाप की क्षिप्रता और सघनता (गति) है। वे बोलचाल के बीच शब्दों की लय और उसमे निहित प्रवाह को एक खास रिद्म मे पकडते हुए उनका उपयोग इस ढग से करते है कि शब्द

स्पदित होकर एक कलात्मक उत्कर्ष को छूने लगते है। गीत हो या कविताएँ या सॉनेट, सलाप की लय कहीं भी देखी जा सकती है।'[47] बानगी के तौर पर—

(क) आ गये तुम आज
इतने दिन बिता कर आज
आ ओ
बहुत दिन मैने तुम्हारी राह देखी
बहुत दिन मैने तुम्हारा दिन गिना है
बहुत मुख से प्रेम से चुपचाप मैने
बहुत दिन तन्मय तुम्हारा गुणसुना है

(धरती, पृ० 50)

(ख) आओ इस आम के तले
यहाँ घास पर बैठे हम
जी चाही बात कुछ चले
कोई भी और कहीं से

(ताप के ताए हुए दिन, पृ० 38)

(ग) इन दिनों तुम बहुत याद आये,
जैसे धुन राग के बाद आये।

(तुम्हे सौपता हूँ, पृ० 74)

इनमे प्रत्यक्ष प्रकृति का संवाद है। ऐसी कविताओ मे बात कहने की भगिमा इतनी आत्मीय और सहज है कि पाठक को लगता है कि, कवि बिना लाग-लपेट के सीधे उसी मे बात कर रहा है। त्रिलोचन की अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनमे सवाद की प्रकृति परोक्ष है, अपने-आप से सलाप की तरह। बानगी के लिए—

1 आज मै अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता

(धरती, पृ० 60)

2. हो तुम भी घोचूँ ही। भाषा, छद, भाव के
पीछे जान खपाते हो। लद गया जमाना
इन का। छोड़ो भी। आओ, अब से मनमाना

लिखा करो। गद्य ही ठीक है। अब कटाव के
ढब बदले है। बोल चढे है भाव ताव के।[48]

अकेलापन, उदासी, अवसाद, अवसन्नता और आत्मलोचन के क्षणो मे बहुधा वे खुद से बाते करते नजर आते है। ऐसी स्थितियो मे, कविताओ मे मर्मस्पर्शिता, स्वाभाविक व तरल भावनात्मकता मौजूद रहती है।

त्रिलोचन के यहॉ आत्मपरक कविताओ की सख्या बहुत अधिक है। अपने बारे मे हिन्दी के शायद ही किसी कवि ने इतने रगो मे और इतनी कविताएँ लिखी हो। पर त्रिलोचन की आत्मपरक कविताएँ किसी भी स्तर पर आत्मग्रस्त कविताएँ नही है और यह उनकी गहरी यथार्थ-दृष्टि और कलात्मक क्षमता का सबसे बडा प्रमाण है। त्रिलोचन अनुभव के इस धरातल तक पहुँचने के लिए जिस कौशल का इस्तेमाल करते है, वह खास तौर से ध्यान देने योग्य है। वे अपनी आत्मपरक कविताओ मे 'त्रिलोचन' का प्रयोग प्राय अन्यपुरूष में करते है और इस तरह बडी कुशलता से अपने 'आत्म' से एक कलात्मक दूरी प्राप्त कर लेते है। अपने 'आत्म' के प्रति यह गहरी निर्मम दृष्टि उन्हे एक ऐसी शक्ति प्रदान करती है, जिसके चलते वे मानो अपनी ही धज्जियॉ उडाते है और फिर उनके मुँह मे ऐसी बेलाग और तिलमिला देने वाली पक्ति निकलती है— 'भीख मॉगते उसी त्रिलोचन को देखा कल।'[49] इस पक्ति में कथ्य की जो निर्मम चोट है, उसमे केवल अनुभूति की प्रखरता ही नहीं, एक विलक्षण कलात्मक साहस भी है, जो उस समय हिन्दी के लिए एक नयी चीज थी।[50] अपने प्रति ऐसी अचूक निर्मम दृष्टि समकालीन साहित्य मे भी कम ही मिलेगी। ऐसा काव्य-कौशल और अपने 'आत्म' के प्रति ऐसी ही अचूक निर्मम दृष्टि सूर और तुलसी के आत्मभर्त्सना के चित्रो मे मौजूद है।

त्रिलोचन अपनी आत्मपरक कविताओ मे ऐसी तटस्थता और साक्षीभाव अपनाते है, मानो 'अपने चोले से निकलकर अपने छूट गये चोले को देखना'। ऐसा बयान 'परभावकरण' या अपने आप को अपने से अलग करके देखने की प्रक्रिया के कारण ही संभव हुआ है। 'परभावकरण' और अपने-आप के लिए अन्य पुरूष (तृतीय पुरूष) का प्रयोग करने के कारण कविताओ मे साक्षीभाव आ गया है। जैसा कि राधावल्लभ त्रिपाठी ने कहा है "साक्षीभाव से बयान मे निस्सगता आती है। इस निस्सगता मे अवस्थित कवि भोगी और भोग्य दोनो को देखता है। इस देखने मे हर वस्तु का स्वभाव सामने आ जाता है। तब कवि वस्तुओ को तदवस्थ रूप मे देखता है। इससे उसके कथन मे स्वाभावोक्ति का

साम्राज्य हो जाता है।'[51] वस्तुपरक दृष्टि से यथार्थ के पर्यावलोकन के कारण ही त्रिलोचन की आत्मकथात्मक पंक्तियॉ भी काल का महत्वपूर्ण दस्तावेज बन सकी है।

गौर से देखा जाय तो महसूस होगा कि त्रिलोचन की कविता का स्थापत्य 'ऐंद्रियबोध' से जुडे होने मे है। चम्पा, जीवन का एक लघु प्रसग, नगई महरा, रैन बसेरा, झापस—आदि अनेक कविताओ व तमाम सॉनेटो में इसे गहराई से देखा जा सकता है। 'देखने के लिए गया, ऑखें जो देखती थीं, मन को बताती थी'— यह रचना-प्रक्रिया का एक सूत्र है, जिस पर पूरा 'महाकुभ 1953' की कविताओ का ताना-बाना त्रिलोचन के कवि ने बुना है। महाकुंभ संबंधी पच्चीस सॉनेट-पुज मे त्रिलोचन की महाकाव्यात्मक प्रतिभा से साक्षात्कार होता है— वही मानव त्रासदी, वैसी ही विराटता और गरिमा। बकौल नामवर सिह '**विस्मय** की बात तो यह है कि महाकाव्यात्मकता सम्भव हुई उस गीतात्मक काव्य रूप मे जिसे 'सॉनेट' कहते है— वही सॉनेट जिसके लिए नागार्जुन कई बार त्रिलोचन को डॉट चुके है— बन्द करो यह सॉनेटबाजी।"[52]

महाकुभ संबधी पच्चीस सॉनेटो की माला को 'लघु आकार का महाकाव्य' कहा जा सकता है। इस महाकाव्य का नायक कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि भारत की श्रमशील जनता है। 'महाकुभ' कविता का स्थापत्य महाकविता या महाकाव्य का स्थापत्य है। इसके प्रथम सॉनेट मे यथार्थ और अनुभव का फलक महाकवियों के महाकाव्य-सा ही है

क्षितिज नील, तदुपरि बैगनी, और फिर नीला,
महाकाश को घेरे जाडे की घनमाला,
गगा बीचोबीच, पार झूँसी का टीला,
संमुख कुंभनगर, दिन का सॉवला उजाला,
आडी, सीधी, टेढी राजमार्ग की माला
पहने हुए बस्तियॉ क्रम से चली गई है,
तबू, कुरिया, टाट चटाई टीनो वाला
आट ठाट छाजन का, एकाकार कई है,
भिन्न कई है, अपनी अपनी चाल गई है,
साज बाज दिखलाती हुई नवीन बस्तियॉ
नर नारी की धाराऍ आनदमयी है,
और कहॉ यह चुहल, यह लहर और मस्तियॉ,

(अरघान, पृ० 51)

यह 1953 की त्रिलोचन की कविता का विन्यास है, जहा पूरा चित्र महाकाव्य-सा है। इसमे से एक पक्ति क्या, एक अक्षर भी कोई नही निकाल सकता। यहॉ हर चीज अपनी जगह दूसरे से जुडी है और कवि ने चुहल करती इसानी उत्सव भरी बस्ती का यथार्थ— व्यापक फलक पर चित्रित 'कैनवास पेटिग' के समान— आक दिया है। इसे ही महाकविता का स्थापत्य कहा जाना चाहिए। दूसरे, तीसरे, चौथे और पॉचवे सॉनेट मे भी महाकुभ के रगारग जन-महोत्सव का सोल्लास वर्णन है। यह वर्णन किसी तमाशार्बीन की रिपोर्टिंग नही, वरन् एक सहृदय कवि का तन्मयता के साथ किया गया वर्णन है। इन सॉनेटो मे त्रिलोचन के अनुभव की व्यापकता व अभिव्यक्तिगत सघनता का बोध होता है। लेकिन यह सब उस लोमहर्षक मानव-त्रासदी की पृष्ठभूमि जैसा है, जिसका चित्रण बीस सॉनेटो मे हुआ है। इन बीस सॉनेटो मे त्रिलोचन ने स्थिति की पूरी भयावहता और वीभत्सता को सामने रखा है। बानगी के लिए एक सॉनेट का यह अश प्रस्तुत है

> पलक मारने मे जो उमड़ा भीड भडक्का,
> बॉध के शिखर से सरका, पट गया वह गढा
> जो नीचे था. और अनवरत धक्कम धक्का
> निगल गया सैकडो को. महाकाल था चढा
> अपने दल बल से, फॅसने वाला नही कढ़ा
> जिन की सॉस चल रही थी वे सब अचेत थे
> और मृतो की हत्याओ के पाप से मढा
> था जैसे उन का चेतन स्तर, कटे खेत थे
> मानो भीषण नाट्य के लिए, बचे प्रेत थे
> आसपास जो घूम रहे थे, चौवाई है
> जैसे नदी किनारे हिलते हुए बेत थे,
> कुछ ऐसे थे जैसे उन्हे टक्कबाई है

(अरघान, पृ० 57)

भीषण मानव त्रासदी, महामरण के दृश्यो को देखकर भावुकता, आवेग, आक्रोश को रोक पाना अत्यन्त मुश्किल काम होता है। लेकिन त्रिलोचन पूरे सयम से महाभारत सदृश मरण-दृश्यो को सजय की भॉति घूम-घूमकर देखते-दिखाते जाते हैं, बिना किसी अतिरिक्त आवेग या आवेश के। सॉनेट के कसे-कसाये काव्य-रूप मे भी भीड का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ा है। यहॉ वस्तु और रूप—दोनों एक दूसरे को सिद्धि देते हुए दिखाई

देते है। इस प्रसग मे डॉ० रामविलास शर्मा ने त्रिलोचन के सॉनेट-कौशल की दाद देते हुए लिखा है "भीड के वर्णन के लिए शायद ही अग्रेजी मे किसी ने सॉनेट का उपयोग किया हो। त्रिलोचन के लिए सॉनेट ऐसा कुर्ता है जो हर मौसम मे पहना जा सकता है। हर विषय के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है।"[53]

त्रिलोचन की कविता की वस्तुगत नवीनता इस बात में होती है कि मार्मिकता की पहचान उन स्थितियो मे करते है जिनमे पहले मार्मिकता नहीं ढूँढी जाती थी। इस दृष्टि से वे अकाव्यात्मक समझी जाने वाली स्थितियो का काव्य-स्थितियों मे समावेश करके भाव-परिधि का विस्तार करते है।[54] वास्तव मे 'सहजता' का ही एक पहलू है— सामान्य रोजमर्रा की तथाकथित अकाव्यात्मक स्थितियो मे कविता को पहचानना, जीवन की मार्मिकता को पहचानना। त्रिलोचन जीवन की सहज स्थितियो मे मार्मिकता की पहचान करते है, कविता की पहचान करते है। मार्मिकता की अभिव्यक्ति सहजता में होती है, विचलन मे नहीं। वे यह जानते भी है और इसे अपनी कविता मे दिखाते भी है। उनकी एक कविता 'सब्जी वाली बुढिया'— मे इसे बखूबी देखा जा सकता है

> 'मेथी और पालक की दो दो हरी गट्ठियॉ/लस्सन और प्याज की चार चार पोटियॉ/बुढिया कह रही थी ग्राहक से—ले लो यह सब ले लो कुल पचास पैसे मे/ग्राहक बोला—जो कुछ लेना था ले चुका/ यह सब क्या करूँगा/रखने की चीज नही/बुढिया ने सॉस ली और कहा—दिन है ये ठंड के/ले लो तो मै भी घर को जाऊँ/ ग्राहक ने सुना नही/और दाम चुका कर चला गया/मै पास वाले से गोभी ले रहा था/बुढ़िया से मै ने कहा—अम्मा, सारी चीजे इकट्ठे बॉध कर मुझ को दे दीजिए/बुढिया असीसती हुई चली गई'।
>
> (अरघान, पृ० 83-84)

इस कविता की केन्द्रीय पंक्ति है— 'बुढिया ने सॉस ली और कहा— दिन है ये टड के'। किसी तरह एक-एक दिन करके जिन्दगी को चलाने की जुगत मे लगी बुढिया की स्थिति ही दारूण है। "उसे किसी प्रकार से काव्यात्मक बनाने की जरूरत नही। जरूरत देखने-सुनने और पाठक-श्रोता को दिखाने-सुनाने की है। इससे ज्यादा कुछ करना कविता की हत्या करना है। 'उसकी बाते जो कानो मे पर्डी/उनको अनसुना कर नहीं पाया मैं'— अनसुना न कर पाना कविता मे सौदर्य और उसका आधार नवता लाता है। यह कविता 'बीज' कविता है। हिन्दी में इस कविता की भावना को लेकर अनेक कविताएँ लिखी गई हैं।"[55]

किसी तरह जिन्दगी गुजारने के लिए रोज-ब-रोज कठिन मशक्कत करते हुए किसी वृद्धा की दारूण स्थिति का ऐसा स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी चित्रण पहली बार त्रिलोचन ने ही किया।

'अमोला' ('९०) तक आते-आते त्रिलोचन की कविता बहुत सहज हो गई है। वे अपनी जमीन से कहीं बहुत गहरे जुड गये है। अवधी के अपने लाडले छन्द 'बरवै' मे यह रचा गया है। ठेठ अवधी मे रचित 'अमोला' त्रिलोचन की सबसे सहज कृति है। इसकी 'सहजता' का मूल उसकी भाषा मे नहीं, बल्कि कवि की दृष्टि मे है। 'जो जहॉ भी जैसा है और जीवन से जुडा है, जीवन की चिन्ताओ, सुख-दु ख से जुडा है, कितना भी महत्वहीन क्यो न हो, उसको उसके पन मे, उसकी मिट्टी की भाषा मे बखानना ही सहजता है।'[56] 'अमोला' मे मुक्तकों मे सकलित अतरग जीवन-कथा का रस है, जिसे कवि ने बैसवाडे के किसान की बोली में हमे सुनाया है। इन मुक्तकों मे विविध जीवन-अनुभूतियो का सघन समावेश है। मुक्तको मे निजी अनुभूतियो के साथ-साथ लोककठ का व्यापक जीवनानुभव, सामान्य लोक-सत्य और लोक जीवन का व्यापक ससार रचा-बसा है। बानगी के तौर पर कुछ 'बरवै' प्रस्तुत है

अपने उप्पर ओल्हे चोटि पिराइ
अवर आन कइ जइसे काठ चिराइ।[57]

के एस बाटइ नाइॅ न जेकरे खोट
पुजवइ बदे सजेन सब लइ लइ ओट।

(अमोला, पृ० 43)

जउॅ पिआर मुसरा धइके जरिआन
छॉहि पसारत दुइ जिउ पइ हरिआन।

(वही, पृ० 46)

जउ जनाइ नस नस मॅऽ जाड़र चॉड़
तउ कुछु करइ धरइ कइ बान्हइ फॉड़।

(वही, पृ० 68)

तजेह बने नहि लाज परे परान
झॉझर होइ पुरान पहिरन झलरान।

(वही, पृ० 75)

'अमोला' मे त्रिलोचन ने अपने देखे-भोगे अनुभव के सहारे जनजीवन से जुडी सूक्तियो का ऐसा खजाना प्रस्तुत किया है, और ऐसे अनछुए-अनूठे बिम्ब भरे है कि चकित रह जाना पडता है। यथा–

अपनाइति हेरत हम गए हेराइ
रस निकसइ जब कोल्हू ऊखि पेराइ।

(अमोला, पृ० 10)

हम तउ आपन मन अङऊ धइ दीन
एसे कवनउ काज न कब्बउँ लीन।

(वही, पृ० 11)

कवनि उपाई पाई आपनि सासि
चिता बनि आवइ गटई मँऽ फाँसि।

(वही, पृ० 19)

कुकुरे कॉ जउ कुकुरउँछी लगि जाइ
भागइ रूकि दर पइ मुँह धइ दॅतिआइ।

(वही, पृ० 103)

मड्डल अओसर चउरे चउक पुराइ
रड रड रचि के मधुरे मधुरे गाइ।

(वही, पृ० 172)

'अमोला' के मुक्तको में सवाद स्थापित करने की अद्भुत क्षमता है। अमोला के बरवै पढने पर लगातार यह अनुभव होता है कि कोई व्यक्ति गॉव की चौपाल मे जीवन के अनुभवों को सहेज कर सुना रहा है। बानगी के तौर पर–

तउलि तउलि के कहइ सिखेसि जे बोल
ओकइ सबकेउ सुनइ गुनइ अनमोल।

(अमोला, पृ० 21)

देखे सुखे न बसइँ केरावादार
दिन दिन रिकचा रगरा पानीमार।

(वही, पृ० 79)

मरा परा ते पाछे ढोवा जाइ
पहिले थइली थइला टोवा जाइ।

(वही, पृ० 79)

राजू, तोहॅकॉ लिहेन सड्हती लूटि
चुप मारा जे सुने ऊ करे कूटि।

(वही, पृ० 95)

जेकरे ऊपर एतना अह्यऽ लोभान
लहब्यऽ कइसे जउ ओकरे चित आन।

(वही, पृ० 96)

सँत मरे उपखान बढावा जाइ
जोरि जोरि बिधि से सतावा जाइ।

(वही, पृ० 169)

न तउ निसार न बचि पावइ कइ बन्न
तउलि लेइँ बनिऑ पेटे कइ अन्न।

(वही, पृ० 171)

घाघ और भड्डरी के अनुभव-सिक्त दोहो के समान त्रिलोचन के मुक्तको मे आते-जाते मौसम और फसलो, पेडो का सूक्ष्म अवलोकन और गहन अनुभव भरा पडा है। लेकिन इन मुक्तकों मे केवल अनुभवपूरित सूक्तियॉ नही बल्कि सहृदय भाव-दृष्टि और नवीन बिम्बो की सृष्टि भी दिखाई देती है

घेरइँ हेरइँ गर्जइँ बरसइँ जाइँ
बादर भुइँ कर ताप ताकि अपनाइँ।

(अमोला, पृ० 11)

खाल खलार भरा भुइँ जलचदरानि
जीउ कइ गॉठि छोरि दुबिउ पफनानि।

(वही, पृ० 18)

बिरई बिरवा सोहरइँ भुइँ की ओट
नान्हे तन अखरी बूनन कइ चोट।

(वही, पृ० 21)

सर्दी मॅऽ पिआर लागइ एस घाम
जेस सुधि आए पहिल पिआर क नाम।

(वही, पृ० 33)

महॅकइ लागइ रेडत रेडत धान
बासि उठइ सगरउ सेवान मएदान।

(वही, पृ० 45)

गोहूॅ के बलिआने भएॅ दुधार
खेतिहर फरहर मन से खाइॅ उधार।

(वही, पृ० 72)

जेठे चलत करेरि डगरि नरमाइ
घमछॉहीं जउ कबहुॅ काल होइ जाइ।

(वही, पृ० 83)

नओ नओ पल्लओ तामबरन बिस्तार
अमवा फगुने एतनइ किहेसि सिडार।

(वही, पृ० 104)

डउडी डउडी महुआ उठा कुॅचाइ
रतिगर पाए फूल चुआवत जाई।

(वही, पृ० 113)

इस प्रकार हम देखते है कि 'अमोला' त्रिलोचन की सबसे सहज कृति है— भाव, भाषा और अभिव्यक्ति का आत्मीय ढग— सभी दृष्टियो से। अमोला जनपदीय है, और अपनी ज़मीन से गहरे जुडे कवि के लिए यह अभिव्यक्ति उसकी रचनात्मक अनिवार्यता थी।

त्रिलोचन ने विविध प्रकार की कविताएॅ लिखी है— लम्बी और छोटी कविताएॅ, गीत, गजल, रूबाइयॉ, सॉनेट, बरवै, कुडलियॉ, त्रिपदियॉ, चतुष्पदियॉ आदि। उन्होंने तीन काव्य-रूपक भी लिखा। उनकी कविताएॅ छन्दबद्ध भी हैं और मुक्त छन्द मे भी। उनकी अभिव्यक्ति सदैव सयत, अत्यत सन्तुलित और विलक्षण रूप से सधी हुई होती है। इसलिए अन्य अनेक प्रगतिवादी कवियो की तरह उनमे अतिरिक्त शोर नही सुनाई पड़ता। आवेगों की सयमित अभिव्यक्ति और स्वर की तटस्थता के लिहाज से त्रिलोचन एक महत्वपूर्ण और अपने तरह के अकेले कवि है।

भाषा, शैली और विषय-निर्वाह की दृष्टि से त्रिलोचन ने अपने प्रयोगो को इतनी सहजता, सरलता से उपस्थित किया है कि अभ्यस्त पाठक उनके गाम्भीर्य का अनुमान तक नहीं कर पाते। काव्य-रचना मे सर्वाधिक ध्यान वे विषय पर देते हैं, उसके बाद भाव के आकर्षण केन्द्र पर दृष्टि रखते है। परिणामत उनकी कविताओं मे एक तो सीधी-सादी व्यजना प्रणाली रहती है, दूसरे अतिविस्तार नहीं पाया जाता। उनकी कविता में रूप एव कथ्य-कथन की स्वाभाविकता हमेशा बरकरार रहती है, चाहे छन्द से बाहर लिख रहे हों या छन्द मे। उनमे अनुभूति का खरा आवेग होने के बावजूद उसे तटस्थ, निर्वैयक्तिक ढग से देखने की खास अपनी दृष्टि भी मौजूद है। दोनो के बीच का तनाव त्रिलोचन की कविता का खास अपना रग है। भाषा की गद्यात्मकता, बातचीत का लय-प्रवाह, वर्णनात्मक तकनीक और कविता में सवादमयता उन्हें तुलसी, जायसी और निराला जैसे सिद्ध कवियो से मिली है।

संदर्भ :

1 उद्भावना, अक-58, फरवरी 2001, पृ० 33
2 कुछ कविताएँ शमशेर बहादुर सिह, पृ० 17
3 धरती त्रिलोचन, पृ० 83-84, द्वितीय सस्क० 1977
4 इतिहास और आलोचना नामवर सिह, पृ० 80, सस्क० 1962
5 त्रिलोचन के बारे मे सपा० गोबिन्द प्रसाद, पृ० 110, प्रथम सस्क० 1994
6 डॉ० भगवान सिंह, वही, पृ० 136
7 तुम्हें सौपता हूँ · त्रिलोचन, पृ० 86, प्रथम सस्क० 1985
8 ताप के ताए हुए दिन त्रिलोचन, पृ० 33, द्वितीय सस्क० 1996
9 सबका अपना आकाश त्रिलोचन, पृ० 17, प्रथम सस्क० 1987
10 श्याम कश्यप, आलोचना अक्टूबर-दिसम्बर '85, पृ० 78
11 वही, पृ० 78
12 वही, पृ० 80
13 त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 80
14 नामवर सिह, वही, पृ० 80
15 विश्वनाथ त्रिपाठी, वही, पृ० 116
16 नरेन्द्र पुंडरीक, आजकल · नवम्बर '97, पृ० 28
17 अमोला : त्रिलोचन, पृ० 10, प्रथम सस्क० 1990
18 वर्तमान साहित्य : अगस्त '92, पृ० 27
19 "निराला ने पहली बार 'प्रोज पोएट्री' 1943 ई० मे लिखी थी। मैने 1936 ई० के आसपास पहले पहल 'प्रोज पोएट्री' लिखी थी। 'धरती' में ऐसे गद्यकाव्य संग्रहीत है।" —'काव्य और अर्थ-बोध' त्रिलोचन, पृ० 94, प्रथम सस्क० '95
20 त्रिलोचन के बारे मे, पृष्ठ- 39
21 ताप के ताए हुए दिन · त्रिलोचन, पृ० 65, द्वितीय सस्क० 1996
22 त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 81
23 मैनेजर पाण्डेय, वही, पृ० 157
24 पहल, अंक-63, जन० 2000, पृ० 62-63
25 दिगत . त्रिलोचन, पृ० 50, द्वितीय सस्क० '96
26 राजेश जोशी, त्रिलोचन के बारे में, पृ० 198
27 सापेक्ष, अक-38, जुलाई-सित० '96, पृ० 163-64

28 उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन, पृ० 67, प्रथम संस्क० '81
29 प्रतिनिधि कविताएँ · त्रिलोचन, सपा० केदारनाथ सिह की भूमिका, पृ० 6, प्रथम सस्क० '85
30 रामविलास शर्मा · प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ० 287, प्रथम सस्क० 1990
31 निराला रचनावली खण्ड 2, पृ० 107-8
32 त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 126
33 श्याम कश्यप, आलोचना : अक्टू०-दिस० '85, पृ० 80
34 कविता के नए प्रतिमान नामवर सिह, पृ० 127, पेपरबैक सस्क० '97
35 अनिल त्रिपाठी, साक्षात्कार नव० 2000, पृ० 94
36 निराला रचनावली खण्ड-1, पृ० 346, प्रथम सस्क० '83
37 मलयज की डायरी भाग-2, सपा० नामवर सिह, पृ० 264, प्रथम सस्क० 2000
38 अनकहनी भी कुछ कहनी है . त्रिलोचन, पृ० 13, प्रथम सस्क० '85
39 त्रिलोचन पर डायरी : सपा० ओमेन्द्र, पृ० 74, प्रथम सस्क० 1995
40 लल्लन राय · हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ० 201, प्रथम सस्क० 1989
41 अरघान : त्रिलोचन, पृ० 30, द्वितीय सस्क० 1998
42 वही, पृ० 31
43 राजेश जोशी, त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 190-191
44 काव्य और अर्थ-बोध त्रिलोचन, पृ० 61, प्रथम सस्क० '95
45 नामवर सिह · इतिहास और आलोचना, पृ० 88-89, सस्क० 1962
46 त्रिलोचन पर डायरी सपा० ओमेन्द्र, पृ० 84
47 गोबिन्द प्रसाद, त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 21
48 फूल नाम है एक त्रिलोचन, पृ० 31, प्रथम सस्क० '85
49 प्रतिनिधि कविताएँ . त्रिलोचन, सपा० केदारनाथ सिह की भूमिका, पृ० 7
50 मेरे समय के शब्द केदारनाथ सिह, पृ० 152, प्रथम संस्क० '93
51 बहुबचन-2, जन०-मार्च 2000, पृ० 144
52 त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 94
53 प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि रामविलास शर्मा, पृ० 287
54 विश्वनाथ त्रिपाठी, त्रिलोचन के बारे मे, पृ० 117
55 वही, पृ० 117-18
56 मान बहादुर सिह, वही, पृ० 163
57 अमोला : त्रिलोचन, पृ० 23, प्रथम संस्क० 1990

अपनी समकालीन कविता के बीच त्रिलोचन की अद्वितीयता का कारण और संदर्भ

अपनी समकालीन कविता अर्थात् अपने समय की कविता के बीच हर बडे कवि का अपना एक वैशिष्ट्य होता है। अपनी समकालीन कविता के बीच त्रिलोचन की अद्वितीयता के कारणो एव सन्दर्भो की तलाश जरूरी है क्योकि त्रिलोचन की कविता पर विचार करते हुए हम कुछ बुनियादी काव्य चिन्ताओ को एक साथ जॉचने-परखने की कोशिश करे जिनकी रोशनी मे त्रिलोचन की कविता की सार्थकता और शक्ति भी प्रकट हो तथा उसकी सीमाएँ भी समझ मे आती हो।

हिन्दी कविता की दुनिया मे त्रिलोचन का प्रवेश 'धरती' (1945) के कवि के रूप मे हुआ। केदारनाथ अग्रवाल का पहला कविता-सग्रह 'युग की गगा' ('47) और नागार्जुन की 'युगधारा' ('53) से काफी पहले ही त्रिलोचन के इस सग्रह मे उनकी गहरी 'जन-प्रतिबद्धता' और 'अनुभूत जीवन-संघर्ष' का यथार्थ और मर्मस्पर्शी परिचय मिला। फिर भी उन दिनो प्रगतिवादी खेमे मे त्रिलोचन की अपेक्षा केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की ही अधिक चर्चा हुई। शायद इसका कारण यह था कि उन दिनो प्रगतिवादी काव्यधारा मे वर्ग-सघर्ष के विस्फोटक उफान, आह्वानधर्मी और उपदेशपरक कविताएँ ही प्रमुखता पा रही थीं, जबकि त्रिलोचन की कविताएँ न तो आदोलन के उफान से प्रेरित थीं, न ही किताबी जुमलो से। उनकी कविता सीधे-सीधे धरती की कविता थी। सिर्फ प्रगतिशील दिखने वाली कविताएँ लिखने वाले कवियो से उनका ढर्रा अलग था। उन्होने जन से, उसकी रोजमर्रा की समस्याओ से अंतरंग रूप में जुडकर सामान्य जीवन की यातना, दु:ख और आकाक्षा को सामाजिक बनावट की गहरी संलग्नता मे देखा और कविता के रूप मे उसे वाणी दी। नितात तात्कालिकता से अलग, जीवन के गहरे यथार्थ से जुडकर अनूभूति के रूपान्तरण की अतरंग कोशिशो में भीतर से कशमकश वाली उनकी कविता ऊपर से ठंडे मुहावरे वाली हुई। प्रगतिवादी कविता की जार्गनवाली शब्दावली, नारेबाजी और जोश के उफान के बीच मे इस कविता की गहराई और सचाई को पहचानने मे कुछ देर लगी।

त्रिलोचन की 'धरती' ('45) का महत्व सबसे अधिक उसकी स्वर-भास्वरता तथा रूपगत समृद्धि के कारण है, जो उस समय के अन्य कवियो मे अपेक्षाकृत कम था। इस सग्रह मे संकलित दो कविताएँ-- 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' और 'जीवन का एक लघु प्रसग'— ठेठ बातचीत के आत्मीय लहजे मे और एकदम गद्य के विन्यास मे लिखी गई

है। काव्य-रूप की दृष्टि से यह विलक्षण प्रयोग है जिसकी नवीनता पर पहले किसी का ध्यान नहीं गया। 'धरती' की कविताओ मे जीवन-यथार्थ, किसानी जीवन के सामूहिक श्रम, जीवन-संघर्ष और जन-शक्ति मे गहरी आस्था की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। 'धरती' सग्रह की पहली और शायद एकमात्र समीक्षा मुक्तिबोध ने की, जो जुलाई '46 के 'हस' मे छपी। मुक्तिबोध ने लक्षित किया : "कवि की अपनी अनुभूतियॉ बहुत संयम के साथ प्रकट होती है। उसमें चीख-पुकार या अट्टहास का आलोडन नहीं है। न वह चीज है जिसे आप अतृप्त वासना कह सकते हैं। इन सब दोषो से मुक्त, विचारो और भावनाओ से आलोकित, काव्य मिलना कठिन होता है। साथ ही कवि की प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण आन्तरिक क्षति-पूर्ति के रूप मे नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन-सघर्ष से मॅज-घिसकर तैयार हुई है।"[1] मुक्तिबोध को यह बात पसन्द आई कि "इस सघर्ष की वास्तविकता उसके (कवि के) मन मे इतनी गहरी गयी है कि वह न प्रलयवादी रोमैण्टिक स्वप्नो मे डूबता है, और न किसी समझौते की भावना से परिचालित हो आदर्शवादी तलैया को अपना समुद्र समझता है।"[2] त्रिलोचन की जो बात मुक्तिबोध को सबसे अच्दी लगी, वह यह थी कि कवि त्रिलोचन मे 'सेटिमेंटेलिटी' का लेश भी नहीं है। वे यह भी लक्षित किए बिना न रह सके कि त्रिलोचन टेकनीक के प्रति सचेत अधिक है। कुल मिलाकर 'प्राच्य क्लासीकल स्ट्रेन और पाश्चात्य प्रोज टेकनीक का वे समन्वय किया चाहते है।'[3] कहीं ऐसा तो नहीं कि त्रिलोचन का यह क्लासिकी सयम और गद्यात्मकता ही तत्काल स्वीकृति मे आडे आई, क्योंकि ये दोनो ही चीजे उन दिनो फैशन के खिलाफ थीं।[4]

त्रिलोचन निराला के बाद और उन्हीं की परम्परा मे आने वाले बहुत ही समर्थ कवि हैं। वह उस सधि भूमि पर खडे है जहॉ से प्रगतिवादी और प्रयोगवादी आदोलन एक-दूसरे से अलग होते है। त्रिलोचन न केवल रूपवादी आदोलन के खतरे के प्रति सावधान थे अपितु स्वयं प्रगतिवादी होते हुए भी वह प्रगतिवाद की नारेबाजी के प्रति भी उतने ही सावधान थे। उस युग में भी जब लोग बड़े भोलेपन से स्वर्ग लूटने के लिए तैयार हो जाते थे, व्योम के मेघो से लाइन-क्लीयर मॉगने लगते थे और हिमालय को ॲगड़ाई लेने का आदेश दे देते थे, अपनी हर कविता से एक नयी सुबह और नया जमाना निकाल कर पाठको और श्रोताओ के सामने पेश कर देते थे, एक कविता मे कई-कई क्रान्तियॉ हो जाती थीं— गो देश जहॉ का तहॉ पडा रहता था-- त्रिलोचन इस भावोच्छ्वास से बचने की कोशिश कर रहे थे और वस्तु-स्थिति को अपनी ऑखो से देख रहे थे और किसी तरह का ढोग खडा करने से साफ इन्कार कर रहे थे।

· अगर न हो हरियाली,
कहॉ दिखा सकता हूॅ. ..
· अगर कोठरी ॲधेरी
है तो उसे ॲधेरी समझाने कहने का
मुझ को है अधिकार। ...

(दिगत, पृ० 25)

अन्य प्रगतिशीलों से त्रिलोचन का यह महत्त्वपूर्ण अन्तर है कि जहॉ उन्होने खोखली ललकारो से लोगो के कान बहरे किए, वहॉ त्रिलोचन ने अपनी इस चेतना को सुरक्षित रखा था और अपने कलात्मक विवेक से कविताऍ लिख रहे थे।[5] त्रिलोचन की कविताओ मे ऊपरी तौर पर बेचैनी और बिह्वलता की जगह एक विशेष प्रकार की वस्तून्मुख तटस्थता का होना, पूरी प्रगतिशील कविता के बीच उनकी एक अलग पहचान कराता है। उनके यहॉ केदार और नागार्जुन की कविताओं जैसे नारेबाजी, जोश और आंदोलनात्मक आवेश प्राय· नहीं मिलता।

त्रिलोचन के कवि की एक बडी विशेषता है उसका सयमित स्वर। काव्य-रचना के क्रम मे कवि प्राय उद्विग्न नहीं होता। इसके विपरीत नागार्जुन की अधिकांश कविताओ मे हमे अत्यधिक उद्वेग के दर्शन होते है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि त्रिलोचन का मन अपनी पारिवेशिक विसगतियो से आहत नहीं होता और उनके मन मस्तिष्क मे आक्रोश की लहरें नहीं उठतीं। सच तो यह है कि वे अपनी गभीर प्रकृति एव अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के कारण अपना गुस्सा पी जाते है। इस प्रक्रिया के बाद जब वे अपनी काव्यवस्तु को रूप प्रदान करने या काव्य-रचना के लिए प्रवृत्त होते है तो अनायास उनकी रचना मे एक प्रकार की सवेदनात्मक गहराई आ जाती है।[6] नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की अनेक तात्कालिक या राजनीतिक कविताओ मे प्रखर विक्षोभ, उद्वेग और आवेगाकुलता देखा जा सकता है। केदार ने किसान, मजदूरों के पक्ष मे लिखते समय नेताओं, सेठो आदि के ऊपर तीव्र विक्षोभ और आवेगमय अभिव्यक्तियॉ करते है और प्रायः उनका काव्य-सयम जबाब दे जाता है। लेकिन त्रिलोचन के यहॉ ऐसा नहीं होता। उनकी कविता बहुत ज़्यादा शोर करने वाली या आवेग मे तरंगायित होने वाली कविता नहीं है। उसमे भीतरी उद्वेलन है, ऊपरी लहरो की दहाड नहीं। त्रिलोचन चाहे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विद्रूपताओ पर व्यग्य कर रहे हों, चाहे अपनी देखी-भोगी गरीबी का बयान कर रहे हो, चाहे मुक्ति के लिए आह्वान कर रहे हो-- कहीं भी

तीव्र भावाकुल आवेग, प्रहार या ललकार की मुद्रा मे नहीं आते। आवेगो की रास तनी रहती है, वह उन्हे उन्मुक्त नहीं छोड़ते। इसीलिए उनकी कविता में आवेगात्मक उतार-चढ़ाव कम है, अपेक्षाकृत केदार, नागार्जुन और धूमिल के। उनके यहॉ अनुभूति का आवेग होता है किन्तु उसे तटस्थ निर्व्यक्तिक ढग से देखने का अपना खास स्वभाव मौजूद रहता है। दोनो के बीच का तनाव त्रिलोचन की कविता का खास अपना रंग है।

विकट से विकटतर भाव-स्थितियो मे भी गजब के संयम और तटस्थता का निर्वाह त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व की एक अलग पहचान है। उदाहरण के लिए, मानसिक स्थिति के इस चित्रण मे जो भाव-सतुलन और धीरज है, जो भाव-सघनता और एकाग्रता है- वैसी अभिव्यक्ति किसी और कवि के यहॉ मिलना मुश्किल है ·

पत्र तुम्हारा. पढा. और नीरव ही देखा
इधर उधर तुम अभी अभी केवल कुछ पहले
आए थे. तब द्वार बन्द था. जीवन-रेखा
मैं भी पथ पर खींच रहा था. चित्र सुनहले

जो मन मे थे, उन्हे धरा पर खोज रहा था,
तुम को क्या मालूम. तुम्हारी तो अभिलाषा
मन की मन मे रही किसी ने नहीं कहा था
कहॉ गया वह, तुम आए थे, जिसकी भाषा

सुनने और समझने, अमिलनजन्य निराशा
कितना मूक बना देती है, छिपा नहीं है
मुझ से. . . . ..
मुझे तुम्हारा हृदय निरतर बल देता है,
जगज्जलधि मे जीवन की नौका खेता है [7]

अंतरग अनुभवो के इस सादे बयान मे ऊपरी तौर पर दिखने वाली सहज और सयत अभिव्यक्ति अपने भीतर तीव्र हलचल और बेकली को समोए हुए है, यह छिपा नहीं रहता। 1953 के 'महाकुभ की फूटन' का 'लेखा' करते समय भी, जबकि नागा साधुओ एवं पुलिस के सम्मिलित आतंक से भीड मे भगदड होने से हजारों यात्री मरे थे, त्रिलोचन पूरे सयम से महाभारत-सदृश दृश्यों को रखते जाते हैं, कहीं भी अतिरिक्त आवेग या आवेश नहीं। महाकुभ

के मरण पर लिखते हुए भी वे लगातार जबर्दस्त आत्मनियन्त्रण बनाये रखते हैं। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा–

पलक मारने मे जो उमड़ा भीड भडक्का,
बॉध के शिखर से सरका, पट गया वह गढा
जो नीचे था. और अनवरत धक्कम धक्का
निगल गया सैकडों को. महाकाल था चढ़ा
अपने दल बल से, फॅसने वाला नहीं कढ़ा.
जिन की सॉस चल रही थी वे सब अचेत थे
और मृतो की हत्याओ के पाप से मढा
था जैसे उन का चेतन स्तर, कटे खेत थे
मानो भीषण नाट्य के लिए, बचे प्रेत थे
आसपास जो घूम रहे थे, चौवाई है
जैसे नदी किनारे हिलते हुए बेत थे,
कुछ ऐसे थे जैसे उन्हे टक्कबाई है.

(अरघान, पृ० 57)

ऐसे मरण-दृश्यो को देखकर ऊपजे विक्षोभ, व्यग्रता, भावोत्तेजना को दबाकर सयमित, सतुलित आवेगमयता के साथ ऐसी संयत, सतुलित अभिव्यक्ति केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, धूमिल, गोरख पाण्डेय और आलोकधन्वा के यहॉ मिलना मुश्किल है। राजेश जोशी ने बहुत सही कहा है कि, "स्वर की ऊपरी तटस्थता उनको एक ऐसा विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती है, जिससे उन्हे हिन्दी-कविता मे एकदम अलग से पहचाना जा सकता है। आवेगो की ऐसी संयमित अभिव्यक्ति और सुर की ऐसी तटस्थता का कोई दूसरा कवि ढूँढना असम्भव-सा लगता है।"[8]

तात्कालिक घटनाओं को लेकर त्रिलोचन ने बहुत कम लिखा है, और घटनाओ को लेकर खिलते समय भी वे केदार और नागार्जुन की तरह तीव्र आवेग और भावातिरेक के शिकार नहीं होते। वास्तव मे, त्रिलोचन घटनाओं के प्रभाव में तीव्र आवेग के कवि नहीं है, बल्कि घटनाओ के मूल मे स्थित जीवन-संवेगों के स्थिर-आवेग के कवि हैं। वे भावनाओ का उफान, भावुकता और आवेश को दबाकर स्थिर-आवेगो के रूप मे ही अपनी संवेदनाओ को

अभिव्यक्त करते हैं। डॉ० विजयबहादुर सिह ने स्पष्ट शब्दो में लिखा है "त्रिलोचन की कविजन्य भावुकता पर आवेगाकुलता के संस्कार सबसे कम हैं। दूसरे, वे इतने तटस्थ वस्तुवादी है कि ससार और उसमे घटित समस्त व्यापार को उसके प्रकृत-अंदाज मे ही पेश करते है। उनकी कविता प्रत्यक्ष दुनिया के बीच जाकर खडी है, या प्रत्यक्ष जीवन और सृष्टि-व्यापार ही यहॉ आ गया है, कहा नहीं जा सकता। केदार छायावादी अलकृति, आवेगपरकता और भावुकता का इस्तेमाल प्रगतिशीलता के पक्ष में करते हैं, बहुत दूर तक यही काम नागार्जुन भी करते देखे जा सकते है, किन्तु त्रिलोचन इससे प्राय· मुक्त हैं।"[9]

त्रिलोचन की कविता किसी समय की मनोदशा को तो उजागर करती है लेकिन बहुत अधिक सतह पर घटित हो रही तत्कालीन स्थितियों या घटनाओ के ब्यौरो को दर्ज नहीं करती। इस बिन्दु पर त्रिलोचन नागार्जुन से एकदम अलग कवि है। लेकिन ऐसा कहने का अर्थ यह नहीं कि उनकी कविता अपने समय को दर्ज नहीं करती।[10] फिर भी, केदार और नागार्जुन की तरह, त्रिलोचन किसी तात्कालिक घटना पर तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए कविता नहीं लिखते। किसी सद्यः-घटित घटना अथवा प्रसग का प्रभाव उनके अन्तर्मन पर गहरे स्तर पर होता है, लेकिन वे तुरन्त आवेग, आवेश के उफान मे नहीं आते। वे चीजे उनकी स्मृति मे कुछ समय तक पकती-सीझती रहती है, और फिर रचना के रूप मे सामने आने पर तात्कालिक प्रतिक्रिया न होकर एक परिपक्व जीवन-अनुभव, एक मार्मिक सच्चाई के रूप मे होती है। इसीलिए उनकी कविता मे सामाजिक-राजनीतिक घटनाओ का चित्रण-वर्णन बहुत कम है, मानव-जीवन की दशाओं और अनुभवो की अभिव्यक्ति अधिक है।

केदार और नागार्जुन बहुत बार किसी सद्यः-घटित घटना या प्रसंग को लेकर भावावेश में कविताऍ लिखते हैं, और तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इस कारण बहुत बार उनका क्रोध, घृणा और भावावेश सर्जनात्मक नहीं हो पाता, त्वरित टिप्पणी या भावुक प्रतिक्रिया बनकर रह जाता है। तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त न करने के स्वभाव के कारण त्रिलोचन के स्वर मे कहीं भी रज नहीं है। यह उनकी कविताओ का विशेष चरित्र है। मलयज ने बहुत सही लक्ष्य किया है कि, "त्रिलोचन अनुभूति का पका हुआ रूप रखते है, शान्त और ओजपूर्ण, जिसकी सह-अनुभूति क्षुब्ध सवेगो के घात-प्रतिघात के स्तर पर नहीं, विवेकयुक्त अन्तर्दृष्टि के स्तर पर की जा सकती है। त्रिलोचन की कविता इसीलिए एक सहृदय एव परिपक्व मानसिकता की मॉग करती है। इस कविता को भागते हुए तीव्र अहसासो के क्षण में पकड़ पाना मुश्किल, बल्कि दुस्साध्य है। इसे पकडने के लिए थोडा इत्मीनान वाला भाव लाना होगा, जिसमे आप इसके अतरग

सौष्ठव का, उसकी बनावट की एक-एक सजीव पत्ती का आनन्द ले सके।"[11]

केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जहॉ उन्होने निहायत तात्कालिक घटनाओ एवं छोटे-मोटे राजनेताओं को रचना की विषयवस्तु के रूप मे स्वीकारा है। ऐसी अधिकाश कविताओ मे काव्य के विषय का 'काव्य-वस्तु' के रूप मे रूपातरण तक नहीं हुआ है, जो किसी सफल रचना के लिए आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य है। केदार की कविता मे राजनीति की निर्णायक भूमिका है। लेकिन उनकी राजनीतिक कविताऍ शुरू से ही उनकी प्रकृति और प्रेम संबधी कविताओं की अपेक्षा अधिक सपाट रही है। "राजनीतिक कविता या ऐसी कविता जिसमे कवि के अपने विचार व्यक्त हुए है, अधिक सावधानी और कलात्मक एकाग्रता की माग करती है, क्योंकि वहॉ यह खतरा बराबर बना रहता है कि कविता 'सूक्ति' बनकर न रह जाये, सिर्फ 'नारेबाजी' न हो जाए, 'रिपोर्ट' बनकर भी न रहे और उसका प्रभाव मात्र सदिच्छा तक ही सीमित न रह जाए।"[12] कई बार केदार अपनी कविताओ को इन खतरों से नहीं बचा पाये है और तब कविता विचार-कथन या सूक्ति-कथन, नारा और रिपोर्ट तक ही सीमित रह जाती है।

नागार्जुन की कविताओ का भी सर्वाधिक सशक्त एव महत्वपूर्ण पक्ष राजनीति ही है। उन्होने अपनी तात्कालिक या राजनीतिक कही जाने वाली रचनाओ मे उस लोक-क्षोभ को वाणी दी है जिसे राजनेताओ ने अपनी आत्मरति, दम्भ, जिद, सनकीपन और राजनीतिक स्वार्थ के चलते उभारा है। लेकिन ऐसी कविताओ मे काव्यात्मक सघटन की दृष्टि से विश्रृखलता तब आती है जब नागार्जुन विभिन्न राजनेताओ अथवा छोटी-बडी समसामयिक घटनाओ को विषयवस्तु बनाकर काव्य-रचना करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। 'इस क्रम मे कई बार उनका अत्यन्त आवेगशील मन भी कविताओ के रचनात्मक स्खलन का कारण बनता है, विशेषतः तब जबकि वे किसी घटना अथवा व्यक्ति के अन्तर्विरोधो को द्वन्द्वात्मक तरीके से समझे बिना, अपने अनुभूत विचार को सही-सही काव्यात्मक परिणति तक पहुॅचाने के बजाय जन-कवि होने की पूरी छूट लेते हुए रचना-प्रक्रिया के बीच मे ही और अनेक बार तो प्रथम चरण मे ही उसे जैसे-तैसे अभिव्यक्ति करने लगते हैं। उदाहरण के लिए, उनकी एक कविता की चद पंक्तियॉ द्रष्टव्य है·

प्रेसिडेंट के इस चुनाव को भूल न जाओ,
आओ, आओ।
× × ×
गिरि बाबा की करो आरती, जय बुलवाओ!
रेड्डी जैसे छिपे घाघ को सबक सिखाओ!![13]

इस कविता मे सन् 1969 मे भारतीय राष्ट्रपति पद के लिए हुए चुनाव के क्रम मे काग्रेस पार्टी के दो गुटो के बीच के मतभेद को विषयवस्तु बनाकर कवि ने जो कुछ लिखा है वह कविता कम और नारेबाजी अधिक है।'[14] नागार्जुन की बहुतेरी तात्कालिक या राजनीतिक कविताओं मे 'क्लीशे' और 'जार्गन' मिलता है। कई बार ऐसी कविताएँ किसी वक्ती जरूरत के लिए रवा-रवी में लिख दी गई हैं।

त्रिलोचन ने प्रचलित अर्थ मे राजनीतिक कविताएँ बहुत कम लिखा है। लेकिन अपने समय की राजनीति की गहरी समझ और गहरी राजनीतिक चेतना निस्सदेह उनकी कविता को सदा अनुप्राणित करती रही है। केदार और नागार्जुन की तरह उन्होंने शासन-सत्ता पर सीधा आक्षेप बहुत कम किया है और सीधे-सीधे राजनीतिक विषयो पर भी कम लिखा है। उनकी बहुत-सी ऐसी कविताएँ है, जिनमें सीधे-सीधे सत्ताधरियों का, नेताओ का नाम-निर्देश नहीं है, फिर भी उनकी पृष्ठभूमि में अपने समय के राजनीतिक सदर्भ होते है। ऐसी कविताओ मे राजनीतिक सदर्भ को केवल कुछ शब्द-संकेतों और इशारों के जरिए पकडना होता है। स्वय त्रिलोचन का कहना है : "राजनीति, कविता मे कविता की तरह आये, यह मुझे ज्यादा अच्छा लगता है।.... मेरी कविताओ मे यदि राजनीति की छानबीन करनी हो तो उन्हे 'क्रियाओ मे' खोजा जाना चाहिए; संज्ञा पदो मे नहीं।"[15] उदाहरण के लिए, एक कवितांश प्रस्तुत है, जिसमे त्रिलोचन ने 'कवि शमशेर से' उस समय के हालात का मार्मिक बयान किया है

आपत्काल स्वदेश और जन को जैसा मिला है अभी
वैसा और कभी न था. समय ने क्या-क्या दिखाया नहीं.
सारा देश विवर्ण है, विकल है, अत्यंत उद्विग्न है,
लांछा से हतदर्प है, व्यथित है, विक्षुब्ध है, श्रांत है.

(चैती, पृ०28)

त्रिलोचन ने नागार्जुन की तरह रोज़मर्रा की राजनीति पर टिप्पणी करने के बजाय

जीवन मे गहरे पैठी हुई राजनीति का आलोचनात्मक अंकन किया है। बानगी के तौर पर प्रस्तुत है उनकी कविता 'चुनाव के दिन'--

> इलायची से बसा हुआ रूमाल लगाया
> ऑखो पर कि बह चले ऑसू; और साथ ही
> नाम किसान मजूर का लिया, और हाथ ही
> नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया
>
> उसी पुराने गले से, चकित थे सब श्रोता
> कैसे शेर बन गया बिल्ली, कौन बात थी
> आज नहीं कुछ दिन पहले किस की बिसात थी
> इस से बाते करता, समय नहीं है, होता
> बना बनाया उत्तर, और काम पडने पर
> बोला करती थीं उस की ओर से गोलियॉ,
> बिछ जाती थी एक दो नहीं, कई टोलियॉ,
> आज चिरौरी करता है घोड़ा अडने पर.
>
> ये चुनाव के दिन हैं नाटक और तमाशे
> नए नए होंगे, ठनकेंगे ढोलक, ताशे.[16]

भारतीय राजनीति का यह चरित्र लोगो के जीवन-अनुभव मे इस गहराई से पैठी हुई है कि त्रिलोचन का अनुभव, लोक-अनुभव के मेल में होने से अत्यन्त मार्मिक बन पडा है। 'रोज़मर्रा की राजनीति पर टिप्पणी करने के बजाय जीवन में गहरे पैठी हुई राजनीति का आलोचनात्मक अकन'[17]-- करने का त्रिलोचन का अपना खास तरीका है। इस तरीके को उनके काव्य-व्यक्तित्व की निजी विशेषता के रूप में देखा जा सकता है। इस तरीके को अपनाने से नागार्जुन, केदार की कविता की अपेक्षा उनकी कविता की क्षति भी कुछ कम ही हुई। तीव्र गुस्सा, भावोद्वेलन और घृणा के आवेग के कारण जहॉ नागार्जुन हडबडी मे आकर कभी-कभी एक अच्छी कविता को बिगड जाने देते हैं, त्रिलोचन का धैर्य उन्हे रोके रखता है। यह भी सच है कि हिन्दी मे सबसे अच्छी राजनीतिक कविताऍ नागार्जुन के यहॉ ही मिलती हैं।

तात्कालिकता मे व्यग्य प्रखर होता है। चूँकि त्रिलोचन की रचनाएँ प्राय. तात्कालिक नहीं होतीं, इसलिए उनके यहॉ नागार्जुन की तरह व्यंग्य की प्रखरता नहीं मिलती। व्यंग्य की तेज धार नागार्जुन की तात्कालिक या राजनीतिक कविताओ के शिल्प की प्रमुख विशेषता है। व्यग्य की विदग्धता के कारण उनकी कई तात्कालिक रचनाएॅ कभी बासी नहीं हुई। उनके यहॉ व्यग्य के कई रग-रूप-अदाज दिखाई देते हैं। अपनी व्यंग्य रचनाओ की दृष्टि से वे पूरी आधुनिक हिन्दी कविता मे बेजोड़ है। त्रिलोचन के यहॉ व्यंग्य अपनी खास पहचान के साथ मौजूद है। उनके व्यग्य मे गहरे विद्रूप की जगह सयम तथा गहरी चोट करने की जगह नोक चुभोने की प्रवृत्ति ज्यादा मिलती है। इसका कारण शायद यह है कि नागार्जुन और केदार से बहुत हद तक भिन्न त्रिलोचन का कवि किसी विसगतिपूर्ण स्थिति से उद्वेलित तो होता है, पर शीघ्र ही वह अपना गुस्सा पी जाते है। त्रिलोचन व्यग्य करते समय भी संयम और तटस्थता बरतते है, तीखे नहीं हो पाते किन्तु घृणा जरूर पैदा करते हैं :

> एक हजार आठ स्वामी ....जी ने डकार ली,
> हाथ पेट पर फेरा. बोले, 'अधिक खा गया
> मर्यादा पुरूषोत्तम प्रभु का ध्यान आ गया,
> भूल गया मैं. उन लोगो ने तो उतार ली
>
> मर्यादा इस पुण्यभूमि की, जिन लोगो ने
> कहा कि रोटी ही सब कुछ है. ...'
>
> हॅसी हिलोरो से फिर तो वह काया मोटी
> हिलने लगी. तोद मे सिहरी संचित रोटी.

(दिगत, पृ० 22)

त्रिलोचन की इस व्यग्य-मुद्रा को देखकर हमे अकस्मात् कबीर की बकिम हॅसी की याद आती है। कबीर की तरह, दूसरों पर व्यग्य प्रहार वही कर सकता है जिसमे अपने ऊपर हॅस लेने की क्षमता हो। त्रिलोचन ने स्वयं पर हॅसने की आदत डाली है—'औरों की ही नहीं, हॅसी मै ने अपनी भी/ख़ूब उड़ाई है. मैं तो खोजा करता हूॅ/किधर बढ रहा है आडबर,'। (उस जनपद का कवि हूॅ, पृ०86) नागार्जुन और त्रिलोचन—दोनो के यहॉ विनोद-वृत्ति (Sense of Humour) या आत्म व्यंग्य मिलता है, लेकिन केदारनाथ अग्रवाल के यहॉ प्राय· नहीं मिलता। नागार्जुन और त्रिलोचन के व्यग्य को उनका आत्मव्यग्य और भी विश्वसनीय बनाता है।

त्रिलोचन के यहाँ आत्मविश्लेषण और आत्मव्यग्य की प्रवृत्ति खास तौर पर देखी जा सकती है। अपने प्रथम सॉनेट सग्रह 'दिगंत' के पहले सॉनेट में ही त्रिलोचन ने स्वयं अपने सॉनेट के फार्म की जैसी धज्जियाँ उड़ाई है, वैसा कोई कठोर-से-कठोर आलोचक नहीं कर सकता।

"सॉनेट, सॉनेट, सॉनेट, सॉनेट—क्या कर डाला
"यह उस ने भी अजब तमाशा. मन की माला"
गले डाल ली. ... ...
.. .. उस ने तो झूठे"
ठाटबाट बॉधे है. चीज किराए की है.
... ... उसने नई चीज़ क्या दी है.
सॉनेट से मजाक भी उस ने खूब किया है,
जहाँ तहाँ कुछ रग व्यग्य का छिडक दिया है

(दिगत, पृ0 11)

त्रिलोचन की कविता मे बहुधा आत्म-विश्लेषण और आत्मलोचन का स्वर उभरता है। अपने काव्य की पूरी भाव-सम्पदा के समानान्तर आत्मलोचन की गहरी और प्रखर दृष्टि का होना त्रिलोचन के कृति व्यक्तित्व की एक ऐसी विशेषता है, जो उन्हे बाहर और भीतर दोनो के आघातो से बचाती है। इससे उनके कवि-व्यक्तित्व को बहुत बडी ताकत भी मिलती है, जिसकी बदौलत वे इस तरह की निर्मम पक्तियाँ लिख पाते है—

नही हूँ किसी का भी प्रिय कवि मैं
जरा देर से ही सही मुझे यह ज्ञात हुआ
आज मै कृतज्ञ हूँ
जाने अनजाने हर किसी का
और यह हर किसी का व्यूह
मुझे त्रासता नहीं है

(चैती, पृ0 54)

निर्मम आत्मलोचन से उन्हे एक तरफ अदम्य ताकत और विश्वास मिलता है, तो दूसरी ओर अद्भुत वाक्-सयम और गहरी मानवीय करूणा भी सुपुष्ट होता है। त्रिलोचन की तरह नागार्जुन भी कई बार स्वयं अपने ऊपर हॅसते हैं— बडे मोहक और आत्मीय अंदाज

मे : "यह बनमानुस यह सत्तर साला उजबक/उमग में भरकर सिर के बाल/नोचने लग जाता है यह व्यक्ति/अपने ही सिर के बाल/अकेले में बजाने लग जाता है सीटियॉ/ आए दिन"।[18] 'पछाड दिया है मेरे आस्तिक ने', 'रहा उनके बीच मैं'--जैसी कई कविताओ मे उनका आत्मव्यग्य निर्मम आत्मलोचन के रूप मे दिखाई देता है। नागार्जुन और त्रिलोचन--दोनो कवियो के आत्मव्यग्य के नीचे से तृप्त भाव से मुस्कराते हुए चेहरो को महसूस किया जा सकता है। अपने आप पर व्यग्य करते हुए दोनो ही कवि आत्मदैन्य से ग्रस्त नहीं होते, बल्कि ऐसे आत्मविश्वास से भर जाते है जो हजार अभावो के बीच भी आदमी को सॅभाले रहता है और आगे बढ़ने का आत्मविश्वास देता है।

नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की तरह, त्रिलोचन की स्पष्ट पक्षधरता कविता मे हर क्षण प्रकट नहीं होती। स्वार्थी-शोषक पूॅजीपति तथा बिके हुए, आत्मग्रस्त और कैरियरिस्ट बुद्धिजीवी के प्रति 'प्रतिहिंसा' का भाव तथा मजदूरो व गरीब निम्न-मध्यवर्ग के प्रति स्पष्ट पक्षधरता नागार्जुन के काव्य मे हर क्षण प्रकट होता है। उनकी कविता कभी नारा बनती है, कभी झडा, कभी बैनर। नागार्जुन की तरह केदारनाथ अग्रवाल भी अपनी कविता मे जब-तब शोषित के पक्ष में नारेबाजी करने लगते है और शोषक, सत्ताधारी, साम्राज्यवादी के विरूद्ध झंडा उठा लेते हैं। "कवि केदार व्यंग्य, आक्रोश, घृणा के रूप मे प्रकट सपाटबयानी को कविता से बहिष्कृत नहीं मानते। 'आग लगे इस राम-राज मे', 'लन्दन मे बिक आया नेता', 'नकली मिली है या कि असली मिली है', 'कुर्सियो पर आसन लगाये', 'अघो से ना अघाये'-- जैसी कविताएॅ उसी सार्थक प्रतिहिसा-भाव को प्रकट करती है, जिसे अपनाते हुए नागार्जुन कहते है—प्रतिहिसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का।"[19]

त्रिलोचन की खासियत यह है कि वे गरीब किसान, मजदूरो और खस्ताहाल लोगो के जीवन से कोरा सहानुभूति प्रकट करते हुए उन पर कविता नहीं लिखते, अथवा उनके पक्ष मे नारेबाजी नहीं करते। वे तो उनकी ज़िन्दगी में, अभाव और आकांक्षाओ में शरीक होते है और तब कविता रचते है। इससे उनके काव्य में अनुभूति की प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और मार्मिकता बेजोड हो जाती है। डॉ० रामविलास शर्मा ने बहुत सही लक्ष्य किया है कि, "दूसरो के जिस दुख का वह वर्णन करते है, उसे उन्होने स्वयं भोगा है। ऐसे मे अपने मन का सतुलन बनाये रहना आसान नहीं है।"[20] लेकिन वे अपना भाव-सन्तुलन कायम रखने मे हमेशा ही कामयाब रहते है, विकट से विकटतर भाव-स्थितियों में भी। उनकी कविता मे श्रम करने वाले, खेती या मजदूरी करने वाले चरित्र ही अधिक आते है। नगई महरा, बैताली,

सनेही, निरधिन, भोरई जैसे अभावग्रस्त लोग आते है जो अपना पेट पालने के लिए श्रम-कार्य मे जुते रहते है। एक प्रवासी मजदूर की मन·स्थिति, भावनाओ व लाचारी की बडी ही मार्मिक अभिव्यक्ति त्रिलोचन की एक कविता मे हुई है। वह अभिव्यक्ति 'पत्र' की शैली मे है

सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ. पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना.

इस उस पर मन दौडाना. फिर उठ कर रोटी
करना. कभी नमक से कभी साग से खाना.
आरर डाल नौकरी है. यह बिलकुल खोटी
है. इस का कुछ ठीक नहीं है. आना जाना

आए दिन की बात है वहॉ टोटा टोटा
छोड और क्या था. किस दिन क्या बेचा कीना
कमी, अपार कमी का ही था अपना कोटा,
नित्य कुँआ खोदना तब कहीं पानी पीना.

धीरज धरो, आज कल करते तब आऊँगा,
जब देखूँगा अपने पुर, कुछ कर पाऊँगा [21]

त्रिलोचन का प्रवासी मजदूर पति साठोत्तर कवियों के नायक की तरह भावुक या रोमैण्टिक नहीं होता। वह एण्टी-रोमैण्टिक भी नहीं। उसकी रूमानियत जीवन-संघर्ष के बीच से यदा-कदा झलक जाती है।

'नींद के बादल' की प्रेम और शृगार सबधी कविताओ के साथ केदारनाथ अग्रवाल ने अपने कवि-जीवन का आरम्भ एक रोमानी कवि के रूप में किया था। उनके आरम्भिक सग्रहो मे बहुत-सी ऐसी कविताएँ है जिनमे नारी-देह के प्रति आकर्षण की, दैहिक-प्रेम की खुली घोषणा होती है। केदार को शुरू-शुरू मे नारी की देहयष्टि का सौन्दर्य अत्यधिक आकृष्ट करता था, इसलिए कविताओं मे उसका वर्णन भी खुलकर करते थे। यथा—

'अन्धी रात का तुम्हारा तन
दाहिने हाथ की उठी हथेली—

नग्न कच्चे कुचो—
कटि के मध्य देश—
लौह की जॉघों से आन्तरिक अरूणोदय की झलक मारता है।'[22]

त्रिलोचन की प्रेम कविताओ मे प्रेम के स्मृति-चित्र ही ज्यादा है। उन स्मृति-चित्रो मे दैहिक आकर्षण की उद्दाम श्रृगारिक अभिव्यक्ति की जगह उत्कट मानसिक लगाव की तन्मय अभिव्यक्तियॉ मिलती है। उनके प्रथम काव्य-सग्रह 'धरती' की प्रेम कविताओ मे उनके प्रेम की गहराई और सघनता का परिचय तो मिलता है, लेकिन नारी-देह के प्रति आवेगशील अभिव्यक्ति नहीं मिलती। 'मेरी दुर्बलता को हर कर', 'बस चलता नहीं, तुम्हारी सुधि आया करती है बार-बार', 'चाहे जो समझे यह दुनिया मैने तुमको प्यार किया है', 'मै जब कभी अकेला बिलकुल हो जाता हूँ/ ध्यान तुम्हारा आता है लय हो जाता हूँ'--जैसे दर्जनो गीत 'धरती' सग्रह मे है, जिनमे बैठी 'तुम' एक नये किस्म की 'प्रेमिका' है, जो 'प्रेरिका' है, जो स्मृति है, जो जीवन-पथ पर आगे बढने का आह्वान करती रहती है। पत्नी, जो 'सखि, प्रेयसी, प्राणाधिक' है, से प्रथम सयोग के अमृत-क्षणो की मधुर स्मृति सॅजोए एक मुग्धकारी सॉनेट, बानगी के तौर पर, प्रस्तुत है·

पलके नीचे गिरीं, ऑख में कहॉ ढिठाई
तब तक आ पाई थी, रोम-रोम ही मानो
ऑख बन गया, सिहरन से लहराया, दानो
से किस के यह हर्ष भरा था और मिठाई
मन मे पाग उठी थी, मेरी और तुम्हारी
दो दुनिया अब एक थी, उधर कोयल बोली,
कहीं पपीहा चीखा, फेरी यों ही हो ली
प्राणो की. मन की छवि अपने आप उतारी
हम ने अपनी अपनी ऑखो में. . .
चुपके चुपके प्राणों की वह अदलाबदली
भीतर बाहर छाई इद्रधनुष की बदली—•

(उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 39)

केदारनाथ अग्रवाल की परवर्ती काल की प्रेम कविताओं में मौजूद आवेगशीलता नारी-शरीर की सीमाओं को अतिक्रमित कर जाती है। उन्होंने 'हे मेरी तुम' सबोधन से पत्नी को केन्द्रित

कर ढेरो कविताऍ लिखी है, जिनमे साथीपन की भावना युक्त दाम्पत्य की गहरी और कृतज्ञ अनुभूति की अनेक रगो-रूपो मे अभिव्यक्ति मिलती है। त्रिलोचन एव केदार की तुलना मे नागार्जुन ने हिन्दी मे बहुत कम प्रेम-कविताऍ लिखी है। त्रिलोचन के समान नागार्जुन को भी प्रवासी जीवन व्यतीत करते हुए विपरीत परिस्थितियो में प्रिया की समृति से जीवन मे रस का सचार होता है। त्रिलोचन की 'आरर डाल' कविता और नागार्जुन की 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता की सवेदना मे कहीं बहुत करीबी है।

शमशेर मूलतः रोमानी कवि है और अपने भीतर प्रेम व सौन्दर्य की दिव्य झलक तलाशते है। उनके प्रेम में गहरी पीडा और गहरी आसक्ति का भाव मौजूद रहता है, तथा छायावादी पवित्र वायवीयता भी मिलती है। प्रेम के कुछ विलक्षण अनुभवो का चित्रण शमशेर करते है, जैसे-- 'थरथराता रहा जैसे बेत/मेरा काय ... कितनी देर तक/ आपाद मस्तक'।[23] शमशेर पर उर्दू कविता की नफासत, नाजुकी और चमत्कार-प्रियता का गहरा असर है, जिससे उनकी प्रेम कविताऍ भी बच नहीं सकी है। बानगी के लिए, उनकी महत्वपूर्ण प्रेम कविता 'टूटी हुई, बिखरी हुई' की ये पक्तियॉ .

एक खुशबू जो मेरी पलकों मे इशारो की तरह
बस गई है, जैसे तुम्हारे नाम की नन्हीं-सी
स्पेलिग हो, छोटी-सी प्यारी-सी, तिरछी स्पेलिग,

आह, तुम्हारे दॉतो से जो दूब के तिनके की
नोक उस पिकनिक मे चिपकी रह गई थी,
आज तक मेरी नीद मे गडती है।[24]

पक्षधरता और विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता के दबाव मे कभी-कभी केदार और नागार्जुन के यहॉ कविता में विचार हावी हो जाते है और कविता, कविता नहीं रह जाती। लेकिन त्रिलोचन के यहॉ ऐसा नहीं होता। उनके यहाँ विचार, कविता मे कविता के रूप मे ही मौजूद रहते है, ऊपर-ऊपर उतराए हुए न होकर, कहीं बहुत गहरे मे। इसीलिए उनकी कविताओ मे केदार, नागार्जुन जैसा आवेग, गर्जन-तर्जन और क्रान्ति-कथन नहीं है। जो व्यक्ति सघर्ष कर रहा है, अभाव और अशिक्षा के बावजूद जीवन बचाने की जद्दोजेहद मे लगा हुआ है, त्रिलोचन ने धैर्यपूर्वक उस सामान्य जन के मन को पढा है और उसे बडे सयम के साथ अपनी कविताओ मे वाणी दी है।

केदार और नागार्जुन के यहॉ आम-आदमी के जीवन-संघर्ष को उभारा गया है। दोनो के यहॉ जीवन-सघर्ष की अभिव्यक्तियों में जुझारूपन, आक्रोश और क्रान्ति की ललकार स्पष्टत सुनाई पडती है। त्रिलोचन के यहॉ स्वयं का जीवन-सघर्ष ही आम-आदमी का जीवन-सघर्ष बन जाता है। इसलिए वहॉ जुझारूपन और उतावलापन नहीं होता, बल्कि सयम और मानवीय करूणा को देखा जा सकता है। मलयज ने बहुत सही लक्ष्य किया है कि, "उसके जीवन-सघर्ष का स्वर भी जुझारू या लडाकू नहीं है, बल्कि बहुत कुछ अपने को उद्‌बोधन देने जैसा है। उसमे सकल्प का ओज है, वह दहकती हुई आग नहीं जो अन्याय और असमानता को जलाकर राख कर दे। इसीलिए उसके क्रान्ति के आह्वान मे भी एक शान्त, गम्भीर मत्रणा का पुट है, व्यवस्था और तन्त्र की ईट से ईट बजा देने वाली आक्रोशी ललकार नहीं। उसके जीवन-सघर्ष की ऑच बाहर से अधिक भीतर को प्रकाशित करती है। हृदय में घुटते हुए अहसास उसे थोडी देर के लिए निराश चाहे भले कर दे, हताश नहीं कर सकते। उसके पास एक गुण है—करूणा, जिसमे उसकी अपनी और दूसरो की भी कुण्ठा और निराशा घुल जाती है और उसे दारूण अकेलेपन की उस यातना से बचा लेती है जो आज के आधुनिक मनुष्य की नियति बनती जा रही है।"[25]

'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन के साथ अज्ञेय प्रगतिवाद की सामूहिकता के विरूद्ध व्यक्ति की स्वतत्रता के समर्थक बनकर आगे आये। व्यक्तित्व की खोज की धारणा अज्ञेय की कविता का बुनियादी सरोकार बनकर उभरा। व्यक्ति के पूरे अकेलेपन मे उसके व्यक्तित्व की लगातार एक 'गहन खोज' उनकी कविता का लगभग स्थायी भाव बन जाता है, जो उनकी कविता को उसका खास चरित्र और मुहावरा देता है। अपने 'निज' की, 'निजी' की, और 'निजत्व' की अभिव्यक्ति की खास मुद्रा अपनाते हुए वे प्राय. आत्म-सवाद, आत्म-संबोधन की शैली अपनाते है। 'आत्म' की तलाश अथवा 'आत्म-सत्य' के अन्वेषण का दावा करने वाले अज्ञेय की कविता मे 'अकेलेपन का वैभव' ज़्यादा है, और दूसरे के (उनके मुहावरे मे 'ममेतर' के) बोध का अभाव जान पडता है।

'मै'-'मेरा'-'मुझे' जैसे सार्वनामिक पद अज्ञेय की कविता मे बहुत आते है, और हर बार कवि का अहंग्रस्त, निजबद्ध, अहदिप्त व्यक्तित्व सामने आता है। 'मै' शैली का सवाद त्रिलोचन के यहॉ भी बहुत सुनाई पडता है। त्रिलोचन के यहॉ 'मैं' पर जितनी कविताऍ मिलती है उतनी कविताऍ दूसरे समकालीनो मे नहीं मिलतीं। लेकिन त्रिलोचन और अज्ञेय-- दोनो की ऐसी कविताओ की प्रकृति मे काफी अन्तर है। यह अन्तर काव्य की सामाजिक भूमिका

के सदर्भ मे विशेष महत्व रखता है।

एक ओर अज्ञेय का 'मै' है जिसमें दूर तक अस्ति भाव के पारिभाषित रूप की व्यग्रता मिलेगी। यहॉ 'मै' के स्वर मे एक आत्मदीप्ति या अह के स्तरो को छूता हुआ अस्मिता-इयत्ता का भाव अधिक है। 'मै' को वे ऐसे गौरवान्वित करते है कि वह निर-अहकार अधिक नहीं लगता। कुल मिलाकर अज्ञेय का अह बोध निजता की उस चरम भूमि पर पहुँच जाता है जहॉ 'ममेतर' का मर्म केवल मम् की परिधि मे सिमटकर रह जाता है। कारण कि अज्ञेय का अह अथवा मै अन्तत समाज-निरपेक्ष अधिक लगता है। एक 'मै' बच्चन का है जिसमे पीडा रूमानियत के औसत स्तर को ही छू पाती है। वह आप-बीती अधिक है, जिससे सहानुभूति ही अधिक उपजती है। बच्चन अपनी पीड़ा में रस लेने लगते है। इसी से वह पीडा बेमानी और छद्म लगने लगती है। वह अवास्तविक लगती है। अन्तत· यह आत्मग्रस्तता ही है। त्रिलोचन के यहॉ मै की परिधि इतनी व्यापक है कि उसमें अह के विगलन का प्रश्न ही नहीं उठता। बल्कि इसमे परस्पर समाज से सवाद की स्थिति है। अत· मै होते हुए भी कविता मे 'मै' का विकास व्यक्तित्व के उस रूप में देखा जा सकता है जो समाज-सापेक्ष है तथा मानवीय सम्बन्धो को सम्पन्नतर करता है।[26] जैसा कि त्रिलोचन लिखते है— यह 'मै' सब का मै है। (ताप के ताए हुए दिन, पृ० 59) "यह त्रिलोचन के विशिष्ट चरित्र का भी प्रतीक है। 'उस जनपद का कवि हूँ' मे अनेक कविताएँ इसी 'मै' के बारे मे हैं। बडे शानदार तरीके से 'मै' का चरित्र-निर्माण हुआ है। यह रोमाटिक 'मै' नहीं है। यह कवि त्रिलोचन है जो सामान्य जन का लघुत्तम समापवर्तक है। इन कविताओ मे स्वर का अद्भुत नियत्रण देखने को मिलता है, जैसे कोई काई पर पॉव दाब-दाब कर चल रहा हो। 'मै' पर लिखते समय फिसलन का बहुत खतरा रहता है। लेकिन त्रिलोचन अचूक रहे। 'कौन बताये क्या हलचल है इसके रूँधे रूँधाये जी मे।' ये सब सॉनेट है और मेरी समझ से त्रिलोचन के सर्वोत्तम सॉनेट-- यहॉ कथ्य और फार्म दोनो के लिए समान सयम की जरूरत थी। इन कविताओं का 'मै' चीर भरा पाजामा पहने, अनाहार, अपना स्वाभिमान अक्षत रखे हुए है-- मन अदीन है। यह भारतीय जन का 'मै' है--एक साथ वैयक्तिक और सामूहिक।"[27]

त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओं मे 'अन्यपरकता' और सार्वजनिक सचाई का 'भोगा हुआ सत्य' होता है। आत्मपरकता के कारण कविता मे विश्वसनीयता, मार्मिकता और अतरगता आती है और वह उपदेश देने की प्रकृति से बच जाती है। त्रिलोचन जिस प्रगतिवादी धारा के

कवि हैं, उसमे उपदेश और उद्बोधन के बहुत खतरे हैं। 'आत्म' की चर्चा के माध्यम से त्रिलोचन इनसे बच सके है। उनके यहॉ 'वस्तु' को अपने से अलग करने की बजाय उसमे शामिल होना-- पाठक या श्रोता को अपनी गुफ़्तगू मे शामिल करने की तरह है। त्रिलोचन की खासियत यह है कि वे अपनी निजी दुनिया को भी वस्तुपरक ढग से देख सके है। उनकी कविता मे निजी जीवन के घटना प्रसंग, चरित्र, पास-पडोस, मित्र, स्वजन, रूझान और मताग्रह-- सबका 'गहरी सार्वजनिकता मे लय हो जाना' एक ऐसी विशेषता है जो काव्य-व्यवहार मे कम ही दिखाई देता है।

अपनी श्रेष्ठता के 'अह बोध' और 'अस्मिता बोध' के कारण अज्ञेय के कवि-व्यक्तित्व मे 'दाता' की मुद्रा ज्यादा हावी है। उनकी प्रेम-कविताओ में भी स्त्री के प्रति सरक्षक और दाता की मुद्रा ही ज्यादातर दिखाई देती है। 'भीतर जागा दाता' कविता की ये पक्तियॉ इस सिलसिले मे देखी जा सकती है

> मै डूबा नहीं, उमडा-उतराया,
> फिर भीतर
> दाता खिल आया।
> हॅसा, हॅसकर तुम्हें बुलाया।
> लो यह स्मृति, यह श्रद्धा, यह हॅसी,
> यह आहत, स्पर्श-पूत भाव
> यह मै, यह तुम, यह खिलना,
> यह ज्वार, यह प्लवन,
> यह प्यार, यह अडूब उमडना—
> सब तुम्हे दिया।[28]

अपने 'निज' के प्रति एकान्त गौरव-बोध, आत्मबद्धता और अतर्मुखी व्यक्तित्व के कारण ही शायद अज्ञेय को 'प्रिया' की स्मृति भी पराजय जैसा लगता है

> भोर बेला—नदी तट की घंटियों का नाद।
> चोट खा कर जग उठा सोया हुआ अवसाद।
> नहीं, मुझ को नहीं अपने दर्द का अभिमान—
> मानता हूॅ मै पराजय है तुम्हारी याद।[29]

त्रिलोचन न तो कभी अहग्रस्त होते है और न ही 'दाता' की मुद्रा अपनाते है। अज्ञेय की तरह वे प्रिया की याद को अपनी पराजय नहीं मानते। उन्हें प्रिया की सुधि 'दुर्लभ अमृत' की तरह जीवन देती है, शक्ति देती है; न कि अज्ञेय की तरह 'प्रिया की कनक चम्पे की कली जैसी देह की स्पर्शातीत लुनाई' और 'दहकते दाडिम पुहुप जैसे ओठ' की सुधि कामपीडित करती है। अज्ञेय ने प्रणय भावना को रोमैण्टिक ढंग से ही प्रायः अभिव्यक्त किया है। उनके काव्य का आरम्भ ही प्रणय की टीस, वेदना, कसक की अभिव्यक्ति के रूप मे होता है। कभी-कभी वे अपने से ही मुक्त होने के लिए शायद, एण्टी-रोमैण्टिक रूख अपनाते भी है तो वह उनके सामने 'यौन-वर्जनाओ से मुक्ति का उपक्रम' के रूप मे दिखता है

> आह, मेरा श्वास है उत्तप्त—
> धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार—
> प्यार है अभिशप्त—
> तुम कहाँ हो नारि?[30]

वास्तव मे, अज्ञेय क्षणवादी हैं-- क्षण रूपासक्ति, क्षण के भोक्ता, क्षण के भावनाओ और सौन्दर्यानुभवों के चितेरे। इसीलिए उनकी प्रेम व आसक्ति की भावनाएॅ भी कुछ क्षण की भावनाएॅ ही हैं।

पहले की कविता-धारा से किसी कवि के अलग होने की पहचान सबसे पहले उसकी भाषा के माध्यम से होती है। आधुनिक काल मे 'प्रयोगवाद' के आंदोलन से पूर्व, कविता-भाषा की बुनियादी सरचना की अर्थवान् इकाई वाक्य ही होता था, स्वतत्र रूप मे शब्द नहीं। प्रयोगवादी काव्यांदोलन में कवि होने की शर्त सामने आई--अर्थवान शब्द का साधक होना। इस काव्यांदोलन के अगुवा कवि अज्ञेय ने कहा--"मेरी खोज भाषा की खोज नहीं है, केवल शब्दो की खोज है। भाषा का उपयोग मैं करता हूॅ निस्संदेह, लेकिन कवि होने के नाते जो मै कहता हूॅ, वह भाषा के द्वारा नहीं, केवल शब्दों के द्वारा।"[31] लेकिन अज्ञेय के लिए शब्द की खोज और उसके उपयोग की सार्थकता शब्द के परिष्कार में होती है, ताकि उसमें नयी चमक, नया अर्थ भरा जा सके। वे 'शब्द' पर रीझने वाले, शब्द मे क्रीड़ा वैचित्य तलाशने वाले ऐसे कवि हैं, जो कविता में सुन्दर, मधुर-मसृण शब्द-रत्नों की लडी गूॅथकर माला पिन्हाना चाहता है नये

रूपाकार को। 'नया कवि आत्म-स्वीकार' कविता मे अज्ञेय का कहना है 'चाहता हूँ आप मुझे/एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढे।'[32] एकान्तजीवी और व्यक्तिवादी होने की वजह से उनकी कविता मे जनता का अनुभव और उसकी धड़कन के शब्द नहीं आते। व्यवहार क्षेत्र से निकट का परिचय न होने की वजह से उनकी कविता मे आये शब्दों का परिवेश प्राय जीवन के परिवेश से कटा हुआ-सा लगता है।

छायावादोत्तर कवियो में त्रिलोचन ही एक ऐसे कवि है जो प्रगतिशील यथार्थवादी धारा को समर्थन देते हुए भी काव्य-व्यापार मे 'शब्द' की सत्ता पर आत्यन्तिक बल देते है। यह बात और है कि शब्द का अर्थ उनके लिए शब्द में निहित एक समग्र सम्पूर्ण जीवन भी होता है।[33] त्रिलोचन का कवि जीवन से लगे-जुडे, जीवन्त शब्दों को टोहता है 'शब्द शब्द से व्यजित जीवन की तलाश मे कवि भटका करता है।' (शब्द, पृ० 44) ऐसे ही जीवन्त शब्दो और उनसे अभिव्यक्त जीवन से उनको बहुत लगाव है। वे अज्ञेय की तरह ऐसे 'सुन्दर' शब्दो से मोह नहीं रखते, जिनके प्रयोग से काव्य-पक्ति मे अनोखी चमक आ जाय। त्रिलोचन ने अपनी कविताओ मे अपने परिवेश मे, बोलचाल मे आने वाले शब्दो को ही सीधे आने दिया है। लेकिन अज्ञेय के यहॉ सामान्यत· ऐसा नहीं होता। त्रिलोचन को मालुम है कि, "एक अच्छी कविता मे यदि शब्द अपने समग्र परिवेश के साथ उपस्थित है तो उस पक्ति को बार-बार पढे जाने पर भी उसका आकर्षण समाप्त नहीं होता।"[34] त्रिलोचन के इस कथन के प्रमाणस्वरूप उनकी कविता 'नगई महरा' का एक अंश प्रस्तुत है

'पूरा परिवार मै ने देखा
पैरो पैरो है
हाथो ने काम कोई लिया, किया
हो जाने को ही काम
हाथों में आता था
रस्सियॉ भी नगई बरा करता था
सुतली को कात कर बाध भी बनाता था
कहता था, दैव ने मुँह चीर दिया है
उस मे कुछ देने को हाथ तो चलाना है
मैं ने इस घर मे
टुन्न पुन्न नहीं देखी'[35]

बोलचाल की भाषा, जीवन-व्यवहार की भाषा त्रिलोचन की कविता-भाषा है। जीवन-व्यवहार से आयी भाषा मे क्योकि 'शब्द' की बहुत स्वायत्त उपस्थिति नहीं होती, इसलिए त्रिलोचन की कविता मे आया कोई 'शब्द' अलग से चमकता हुआ या बजता हुआ नहीं मिलता। उसकी उपयोगिता, सार्थकता और प्रभावोत्पादकता 'वाक्य' के बीच ही होती है, वाक्य से अलग नहीं। जबकि अज्ञेय की कविता मे आये 'शब्द' बहुत-बार पक्ति या वाक्य के बीच घुले-मिले से नहीं, बल्कि अलग से टके हुए-से, चमकते हुए-से दीख पडते हैं।

अज्ञेय की कविता से त्रिलोचन की कविता की बनावट का अन्तर कविता की भाषा मे भी साफ-साफ दिखता है। त्रिलोचन की तुलना में अज्ञेय की काव्यभाषा सस्कारी, चिकनी, सगीतमय, नाद-मधुर तथा परिष्कृत है। त्रिलोचन बोलचाल की ठेठ, जीवन्त भाषा से कविता रचते है, जबकि अज्ञेय भाषा को रगड-मॉज कर, चमका कर कविता सृजित करते है। कहना न होगा कि भाषा-प्रयोग का यह अन्तर दोनो के कवि-व्यक्तित्वो का अन्तर भी है। "यह सही है कि अज्ञेय की कविता की भाषा के भी कई स्तर है। एक स्तर 'पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक खची तन्वि रूपरेखा' वाला स्तर है, एक 'दोलती कलगी छरहरी बाजरे की' वाला स्तर, एक 'अल्ला रे अल्ला/होता न मनुष्य मै होता करमकल्ला' वाला स्तर और एक 'कागडे की छोरियाँ' वाला स्तर। लेकिन काव्यभाषा के मर्मज्ञ पाठको से यह बात छिपी न होगी कि अज्ञेय की कविता की अपनी भाषा वह है जिसमे सस्कृत शब्दो का सौष्ठवपूर्ण और ओजस्वी विन्यास देखने को मिलता है। यह ठीक है कि उन्होंने गद्य में प्रयुक्त होने वाले अनेकानेक शब्दो का कविता की भाषा मे प्रयोग करके और कविता की भाषा को गद्य की दृढ सरचना प्रदान करके छायावादोत्तर कविता की भाषा के एक नये आयाम का विकास किया है, पर यहॉ विचारणीय यह है कि क्या इस भाषा का छायावादी कविता की भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है? और यदि वह सम्बन्ध है तो केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता की भाषा की अपेक्षा ज्यादा है या कम?"[36] यह भी सच है कि अज्ञेय ने कविता मे एक ऐसी मानक, सुगम, निर्द्वन्द्व, तात्समिक भाषा का रूप खडा किया जो सामाजिक द्वन्द्वात्मकता और लोक-संघर्ष से कटा हुआ था।

यद्यपि केदार, नागार्जुन, त्रिलोचन की कुछ आरम्भिक कविताओं मे छायावादी काव्यभाषा का असर दिखता है। लेकिन ये कवि छायावादी असर से अपनी कविता की भाषा को अलगाने और अलग पहचान बनाने मे कामयाब रहे। केदार, नागार्जुन, त्रिलोचन की भाषा पर उनके व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य की इतनी गहरी छाप है कि उनकी कविताऍ किसी भी तरह आपस मे

नहीं मिल सकतीं। केदार की कविता-भाषा मे कहीं-कहीं छायावादी अलकारिता, शब्द-सुकुमारता मिलती है। लेकिन वे छायावादी कवियो की तरह, शब्दो का सुष्ठु, सस्कृतनिष्ठ प्रयोग करने की बजाय सहज, सरल और देशज शब्दो का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा बिम्ब-समृद्ध और प्रतीको से लैश है। नागार्जुन ने साधारण जीवन के ठेठ और रोजमर्रा अनुभवों से जुडे शब्दो को अपनी कविताओ मे आत्मीय बातचीत, संबोधन और व्यंग्य के लहजे मे बदल दिया है। जन-आदोलन से जुडे होने के कारण केदार और नागार्जुन की कविता-भाषा मे आक्रामकता, बयान की गतिमयता और सपाटबयानी मिलती है।

त्रिलोचन के प्रथम काव्य-सग्रह 'धरती' की कुछ कविताओ पर छायावादी भाषा का असर दिखता है। मसलन्--तत्समनिष्ठता, सामासिकता और विशेषणो पर जोर तथा अधूरे वाक्यो का प्रयोग। लेकिन इस सग्रह की बहुत-सी कविताएँ ऐसी है जिनमे बोलचाल की भाषा, बोलचाल वाले गद्य का वाक्य विन्यास तथा ठेठ देशज शब्दो का जीवन्त प्रयोग हुआ है। इस सदर्भ मे 'जीवन का एक लघु प्रसग', 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'भोरई केवट के घर' आदि कविताओ को देखा जा सकता है। "त्रिलोचन ने सामान्यत भाषा का एक सामान्य आदर्श सामने रखा है, जिसमे वस्तून्मुखता और विश्वसनीयता के साथ-साथ स्वाभाविकता भी हो। जिसकी प्रत्येक ध्वनि मे लोक की सास-सास प्रतिध्वनित हो।'[37] 'जीवन की हलचल' को जीवन की अपनी भाषा मे पिरोने के लिए त्रिलोचन 'सब की बोली-ठोली, लाग-लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, भाव' को गहराई से अपनाते हैं। इस तरह त्रिलोचन अपनी कविता मे वाक्य-रचना की प्रक्रिया मे भाषा रचते नहीं बल्कि, जन-साधारण के बीच से उठाकर उसे पुन:सृजित करते है। इसीलिए उनके यहॉ 'भाषा की लहरो मे जीवन की हलचल है,/ गति मे क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगत, पृ० 67) कविता मे उनका जोर विशेषणो पर नहीं 'क्रिया' पर रहता है, क्योकि भाषा मे जीवन की हलचल की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त रूप 'क्रिया' ही होता है। भाषा मे 'क्रिया' के प्रति लगाव के कारण ही शायद वे कविता में हमेशा 'एक पूरा-वाक्य' लिखना पसद करते है। जबकि अज्ञेय, शमशेर जैसे अनेक आधुनिकतावादी और बिब-रूझान वाले कवियों के यहॉ अक्सर 'वाक्य' टूटे-बिखरे हुए मिलते है। इससे उनकी कविता-भाषा बहुधा जटिल, अस्पष्ट, बनावटी और सक्रिय जीवन-भाषा से अलग हो जाती है। त्रिलोचन को यह एकदम नापसंद था। साठोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख कवि धूमिल, जिसने 'सपाटबयानी' (या स्पष्ट-कथन) को अपनी विशिष्ट काव्य-शैली बनाया, ने इसके प्रति अपनी असहमति व्यक्त करते हुए आधुनिकतावादी कवियों की कविता-भाषा के बारे

मे लिखा—

'उन्होंने किसी चीज़ को
सही जगह नहीं रहने दिया है
न संज्ञा
न विशेषण
न सर्वनाम
एक समूचा और सही वाक्य
टूटकर
'बि ख र' गया है'[38]

त्रिलोचन के संग-साथ मे कवि राजेश जोशी ने भी भाषा मे 'सहायक क्रिया' की शक्ति को बखूबी समझा था। गीत-प्रगीत लिखने वाले 'जिसे हकाल देना चाहते है भाषा से बाहर' और सगीत मे भी जिसे एक समय तक बडी अड़चन माना जाता रहा है, राजेश जोशी उसे 'क्रिया व्यापार की ताकत' कहते है—

'काल को चिह्नित करती सहायक क्रिया अक्सर
शब्दो की पॉत में इस तरह अत मे आकर बैठती है
जैसे वह गरीब पाहुना हो
जो सिकुड कर बैठा हो पंगत के आखिरी कोने पर'[39]

लेकिन—

'जब-जब उसको बाहर रखने की कोशिश होती है
भाषा कुछ डरी डरी-सी मरघिल्ली-सी लगने लगती है
उसके आने से पूरे पद में एक अजब ठसक-सी पैदा हो जाती है।
वह जितनी चुप चुप-सी लगती है उतनी ही जिद्दी भी है
वह चाहे तो गडबड़ा सकती है पूरे वाक्य को अकेले ।।'[40]

आधुनिक हिन्दी कविता मे त्रिलोचन अकेले ऐसे कवि है, जो गद्य की तरह कविता की भाषा मे भी अटूट वाक्य-विन्यास को एक बुनियादी शर्त की तरह सामने रखते है। बोलचाल की भाषा को अपनाने के कारण ही शायद वे हमेशा 'एक पूरा वाक्य' लिखने पर बल देते है। उनकी कविता तथ्यात्मक भाषा के सहज-कथन पर टिकी है; बिम्ब, प्रतीक जैसे अन्य उपकरणो

पर लगभग नहीं। अभिधा को कविता बनाना और उसे कविता की खास ऊँचाई प्रदान करना त्रिलोचन के ही बूते की बात है। त्रिलोचन की भाषा की पहचान उसमे निरतर एक बोलते हुए, बतियाते हुए आदमी की उपस्थिति से की जा सकती है। अनेक बार तो उनके सॉनेट मे प्रयुक्त गद्यात्मक वाक्य-विन्यास साधारण बोलचाल की भाषा के बिलकुल करीब आ जाता है। बानगी के लिए, एक सॉनेट का यह अश देखा जा सकता है·

> दुपहर थी जेठ की. हवा भी चल कर ठहरी
> थी. नीम की छॉह. चलता कूऑ. मुडे. चले
> हम तुम. प्यास कड़ी थी और थकन भी गहरी.
> घनी छॉह देखी. जा बैठे पेड के तले
> घमा गए थे हम. फिर नगे पॉव भी जले
> थे मर गया पसीना, जी भर बैठ जुडाए.
> लोटा-डोर फॉस कर जल काढा. पिया. भले
> चगे हुए. हवा ने जब तब वस्त्र उडाए.[41]

अज्ञेय की कविता-भाषा पर छायावादी कविता, खासकर जयशकर प्रसाद की कविता, का गहरा असर देखा जा सकता है। भाषा में वही शालीनता, वही अभिजात्य, वही शब्दो की चौकसी, काट-छांट-तराश, प्रतीकों और बिम्बो की वही साज-सज्जा। "यह भी कहना आवश्यक नहीं है कि अज्ञेय मे कविता की भाषा को यथार्थवादी स्तर पर विकसित करने की जो प्रवृत्ति थी वह दिन-दिन कुठित होती गयी है और उनकी कविता की भाषा जीवन-संघर्ष के संदर्भ से च्युत होकर दिन-दिन कृत्रिम और प्रभावहीन होती गयी है। प्रचलित, क्षेत्रीय या तद्भव शब्दो के प्रयोग के द्वारा वे अपनी भाषा की निष्प्राणता को छिपाने का प्रयत्न करते है, पर वह छिपती नहीं है। अज्ञेय द्वारा प्रयुक्त क्षेत्रीय शब्दो और त्रिलोचन द्वारा प्रयुक्त क्षेत्रीय शब्दो की तुलना की जाये तो यह साफ दिखलायी पडेगा कि अज्ञेय के शब्द जहॉ निष्प्रभ है, वहॉ त्रिलोचन के शब्द हीरे की तरह दमकते है और पूरे वाक्य को ही नहीं, पूरे आशय को आलोकित कर देते हैं।"[42] अज्ञेय की कविता 'धूसर बसन्त' का यह अंश द्रष्टव्य है, जिसमे 'पतियाया' और 'पियराया' जैसे क्षेत्रीय शब्द भी अभिव्यक्ति को निष्प्रभ होने से नहीं बचा पाते—

> 'बसन्त आया है पतियाया-सा
> सभी पर छाया है

हर जगह रंग लाया है
कि यह देखकर
कि कीकर भी पियराया है
मेरा मन एकाएक
डबडबा आया है'[43]

अज्ञेय की इस अभिव्यक्ति के बरक्स, त्रिलोचन के एक सॉनेट की कुछ पक्तियॉ द्रष्टव्य है, जिसमे आये क्षेत्रीय शब्द, जीवन के परिवेश से जुड़े होने की वजह से अभिव्यक्ति मे बेजोड स्वाभाविकता और आकर्षण भर देते है .

तुम को देखा, आज डीठ डहडही हो गई,
मन का सारा शून्य आप ही आप भर गया,
लहरो का उन्माद तीर को पार कर गया,
पुर पुर गई दरार। ...[45]

हमेशा 'एक पूरा वाक्य' लिखने की ज़िद त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व की और उनकी कविता की सबसे बडी पहचान है। वाक्य-रचना की इस टेक का धुर विलोम शमशेर बहादुर सिह की कविता मे दिखता है। अपनी कविताओं में वे अक्सर वाक्य पूरा नहीं करते। इसके पीछे शायद शमशेर के स्वभाव की गहरी हिचकिचाहट तथा 'कहे-अनकहे के बीच की ठिठकन' होती है। लेकिन इससे कविता मे अक्सर और अधिकतर 'अनकहा' ही छूट जाता है :

'मैं तो खैर ... ...
मेरी जमीन भी क्या
एक दिन
एक दिन . . . ?
खैर !'[45]

ऐसी कविताओ मे अर्थ कहे की अपेक्षा अनकहे से अधिक चरितार्थ होता है। उस 'अनकहे' को पाना गहरे सवेदनशील या सच्चे 'सहृदय' के लिए ही सभव है, साधारण पाठक-श्रोता के लिए प्राय सभव नहीं। इसीलिए उनकी कविताऍ साधारण पाठक-श्रोता को दुरूह लगती है।

त्रिलोचन की अधिकाश कविताओं की प्रकृति बातचीत करने जैसी है। अपनी एक

कविता मे उन्होने कहा भी है 'मै तुम से, तुम्हीं से, बात किया करता हूँ/ और यह बात मेरी कविता है'। (ताप के ताए हुए दिन, पृ० 61) उनकी बहुत-सी कविताएँ अपने-आप से सवाद करने जैसी है, काफी कविताएँ दो या अधिक व्यक्तियो के बीच सवाद जैसी है। स्वगत-सलाप की अपनी खास लय कई कविताओ मे नाटकीय-भगिमा के करीब पहुँच जाती है। ऐसी कविताओ मे सलाप की क्षिप्रता और सघनता, भावो का वेग तथा प्रवाह के साथ ही बोलचाल की धार होती है। बानगी के तौर पर, 'फूल नाम है एक' सग्रह के एक सॉनेट का यह अश देखा जा सकता है .

हो तुम भी घोचूँ ही। भाषा, छंद, भाव के
पीछे जान खपाते हो। लद गया ज़माना
इन का। छोड़ो भी। आओ, अब से मनमाना
लिखा करो। ... .
विषय नहीं सूझता? अजी तुम लिख दो "ढेला"
इस के बाद लिखो "हॅसता था"। इस के आगे?
बहुत खूब, आ हा, "भीनी सुगध उडती थी।[46]

सॉनेट जैसे कठिन काव्यानुशासन के बीच भी स्वगत-सलाप अथवा बातचीत का आत्मीय लहजा-- वह भी ठेठ बोलचाल की शब्दावली मे-- रखना त्रिलोचन की अपनी खास, अद्वितीय पहचान है। कविता मे 'वस्तु' और 'रूप' की ऐसी विशिष्टता समूचे आधुनिक हिन्दी कविता मे मिलना दुष्कर है।

शमशेर की कविता मे भी एक आतरिक संवाद या एकालाप (मोनोलॉग) चलता रहता है, और मुक्तिबोध की कविता मे भी। लेकिन इनकी कविताओ में 'संवाद' की प्रकृति त्रिलोचन के काव्य-स्वभाव से अलग नज़र आता है। त्रिलोचन अपने पाठकों के साथ खुला सवाद करते है, चरित्र का अन्तर्बाह्य बयान करते है, अथवा खूब अपनापन के साथ अपने बचपन की स्मृतियों, अपने स्वभाव, अपने गॉव, गॉव के आत्मीय जनों, गॅवई परिवेश, प्रकृति, प्रेम अथवा 'अकेलापन' का साझा करते है। 'जीवन का एक लघु प्रसग', 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'भोरई केवट के घर', 'नगई महरा' जैसी कविताओ और 'उस जनपद का कवि हूँ' संग्रह के दर्जनो सॉनेटो मे इसे बखूबी देखा जा सकता है। त्रिलोचन की निश्छलता और बतकही का आत्मीय रग-ढग पाकर पाठक-श्रोता गहरा अपनापा महसूस करता है। बानगी के

लिए, एक सॉनेट का यह अंश

> तुम मुझ से नाराज हो गए. अभी कहा क्या
> मै ने तुम से. अच्छा भाई, दाढी चोटी
> जो जो चाहो रख लो. गर्म गर्म वह रोटी
> जो मुँह मे जीवन बनती है, भई रहा क्या
> अतर उस मे, इस अभेद को नहीं सहा क्या
> तुम ने. ऐसी ही कितनी ही छोटी छोटी
> बाते, तुम्हे एक करती है. अपनी गोटी
> देख रहे हो, इस धारा मे नहीं बहा क्या

(शब्द, पृ० 38)

सॉनेट के कठोर बधन और बातचीत की भाषा की स्वच्छदता के द्वन्द्व से भी त्रिलोचन के सॉनेटों मे शक्ति और वेग की सृष्टि हुई है।

शमशेर काव्य-रचना करते समय श्रोताओ-पाठकों की परवाह नहीं करते, और प्राय अपने आंतरिक जगत मे ही लीन रहते हैं। वे "आरम्भ मे हाथ पकड़ कर तो नहीं, पर कुछ आधार देकर अपने भीतर की सृष्टि में पाठक को ले जाते है, कुछ देर तक साथ-साथ भी रहते है, पर कब वे स्वयं भी खो जाते है, कुछ कहा नहीं जा सकता है। पाठक स्वय उलझ भी सकता है, उलझता भी है। अपरिचय कई बार यहॉ भी है .। वे पाठक को उसके हाल पर छोड देते है।"[47] नितात 'निजी' या आतरिक भावधारा मे गोते लगाते हुए "शमशेर अपने से ही सवाद करने लगते है। कवि बाहर से भीतर जाता है, वह जलती हुई शाम से शुरू करते है फिर अपने मन के अतल मे चले जाते है। हर चीज व्यक्तिगत और निजी। प्रकृति को देखकर अपने मे डूब जाते है इसीलिए अधूरापन रहता है, अपनी बात पूरी नहीं करते।"[48]

मुक्तिबोध पाठक को अपने फतासी के विश्व मे, अपने से बाहर, बीहड बियावानो मे ले जाते है। बहुत ही सुनसान और एकान्त बीहड़—ऐसी डरावनी सृष्टि है उनकी। पर वे पाठक को साथ मे ले जाते हैं। अपनी काव्य-सृष्टि के वियावान मे वे पाठक को कभी अकेला नहीं छोडते। इससे एक आश्वासन अवश्य मिलता है, पर उनकी कविता सरल नहीं बनती। मुक्तिबोध के भीतर, बाहर का सारा वातावरण प्रतिच्छवित है जो उनके भीतर आकर एक अलग ही रूप धारण कर लेता है।[49]

अरूण कमल अपनी कविताओ मे पाठक अथवा श्रोता से बतियाने की कोशिश करते है। वे अपने तीव्र इद्रियबोधो को क्रियारत सवेदनयुक्त बिम्बों मे परिणत कर देते है

'बहुत दिन से एक जगह पडी हुई ईट हूँ मै
जिसे उठाओ तो निकलेंगी बिलखती चींटियॉ
और कुछ दूब चारो ओर
हरी पीली।'[50]

राजेश जोशी भी कविता मे प्राय पाठकों से संवाद की मुद्रा अपनाते है। लेकिन वे बतियाते-बतियाते फैटेसी मे कब गतिविधि करने लगते है उनको पता ही नहीं चलता। जैसे वे पाठक अथवा श्रोता को भूल जाते है और अक्सर स्पंदनयुक्त रोमानी कल्पना मे उडान भरते हैं। "मैं उड जाऊॅगा' कविता का 'सबको चकमा देकर स्वप्न की पीठ पर बैठकर उड जाने वाला मै' या 'रगरेजो का कमाल' कविता का 'रंगो के हण्डे मे बैठकर उड़ जाने वाला लडका' अथवा 'भयानक विचार' कविता का 'शहर की छत पर चाद की ओर पीठ किए बैठा गिद्ध' आदि जैसे परम्परा से हटकर निर्मित प्रतीक या फन्तासियॉ हैं, जो पाठक की कौतुहल वृत्ति को जागृत कर उन्हे सोचने पर विवश करती है।"[51]

त्रिलोचन की खासियत यह है कि वे वस्तुओ को उनके सीधे नैसर्गिक वस्तुगत रूप मे प्रस्तुत करते है। वे कभी भी उनका प्रयोग प्रतीक रूप मे नहीं करते। अपनी कविता मे 'वस्तु' को 'वस्तु' ही बने रहने देना उनके काव्य-शिल्प की भी अहम् विशिष्टता है, जिसे वे अपनी सारी काव्यात्मक जिम्मेदारी के साथ निभाते हैं। जैसा कि डॉ० श्याम कश्यप ने कहा है "सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि त्रिलोचन ने इस बात पर उस दौर मे जोर दिया जब हिन्दी कविता मे प्रतीक और बिम्ब को ही भाषा और अन्ततः कविता का पर्याय बना डाला गया था।"[52] वस्तु 'वस्तु' ही बनी रहे और पूरा का पूरा चित्रण जीवन के अनेक मसलो और भाव-स्थितियो से जा जुडे-- यह त्रिलोचन के कवि का अद्भुत कमाल है। उदाहरण के लिए, 'जीवन के दैनन्दिन कार्य-कलापों में गहरे छिपे हुए जीजिविषा के सकेत' प्रकृति के इस अति-सामान्य से चित्र मे भी देखा जा सकता है ·

'काई हरियाई फिर
पी पी कर पानी
कुछ दिन की धूप ने
जला कर इसे
स्याह बना दिया था'[53]

शमशेर और मुक्तिबोध अपनी कविता में 'वस्तु' या यथार्थ को अपनी आन्तरिक भावना के अनुरूप 'रूप' देते है—चाहे वह बिब का हो या फैटेसी का। जबकि त्रिलोचन 'वस्तु' को उसकी पूरी सार्थक इयत्ता के साथ वस्तु ही बने रहने देते हैं। वे वस्तु को अपनी किसी भावना का सादृश्य-प्रतीक या फैटेसी का उपकरण नहीं बनाते। वस्तु-वर्णन को वस्तु-वर्णन ही रहने देते है और वह अपनी पूरी मार्मिकता और जीवन्तता के साथ उनकी भावना से जुड जाता है।

मूलत रोमानी सवेदनाओ के कवि होने के कारण शमशेर वस्तुओ को उनके सीधे नैसर्गिक वस्तुगत रूप मे प्रस्तुत नहीं करते बल्कि, अपनी भावनाओ, सवेदनाओं और विशिष्ट अनुभूतियो के अनुरूप 'वस्तु सत्य' को 'भाव सत्य' बना देते है। वे किसी वस्तु अथवा प्रकृति के खास रूप-रग, सौन्दर्य को लेकर बात शुरू करते है फिर अपने मन के अतल मे चले जाते है। इसलिए उनके यहॉ हर चीज 'व्यक्तिगत' और 'निजी' रूप धर लेती है। उनके अधि--काश चित्र अथवा बिब 'इम्प्रेशनिस्टिक' है, कुछ 'सुर्रियललिस्ट' भी हैं। यथा 'सूर्य मेरी पुतलियो मे स्नान करता', 'एक नीला आइना/बेठोस-सी यह चॉदनी/और अदर चल रहा हूॅ मै/ उसी के महातल के मौन मे।', 'आसमान में गगा की रेत आईने की तरह हिल रही है।/ मैं उसी मे कीचड की तरह सो रहा हूॅ/ और चमक रहा हूॅ कहीं /न जाने कहॉ।'[54]

'वस्तु-सत्य' से अलग-अनोखे, अविश्वसनीय और भयानक खबर या 'भयानक सच' व उसकी जटिलताओ की अभिव्यक्ति के लिए मुक्तिबोध 'फैटेसी' और बेतरतीब बिबो को अपनाते है। फैटेसी के इस काव्य ससार मे अक्सर चीजे नियमो के बाहर तर्कातीत रूपो मे घटित होती है। बानगी के तौर पर, 'अधेरे मे' कविता का यह अश देखा जा सकता है—

पाषाण-पीठिका हिलती-सी लगती
अरे, अरे, यह क्या ।।
कण-कण कॉप रहे जिनमे से झरते
नीले 'इलेक्ट्रान'
सब ओर गिर रहीं चिनगियॉ नीली
मूर्ति के तन से झरते है अंगार।
मुसकान पत्थरी होठो पर कॉपी,
ऑंखों मे बिजली के फूल सुलगते।[55]

मुक्तिबोध के यहाँ 'फैंटेसी' के शिल्प में स्वप्न या अवचेतन मन की अभिव्यक्ति के बतौर—बेतरतीब (विशृंखलित) बिबो की प्रस्तुति मे उलझाव और जटिलता दिखती है तथा कई बार प्रतीको का अर्थ निश्चय करना मुश्किल हो जाता है। उनकी कविता का यथार्थ, जटिल और पेचीदा है क्योकि वह जीवन के जटिल, परस्पर गुंथे हुए, असामान्य या भयानक सचाई को जानने-पहचाने की एक उद्विग्न कोशिश है। त्रिलोचन की जिस विशेषता को 'एक कठिन प्रकार मे बधी सत्य सरलता' कहकर शमशेर ने उद्घाटित किया है, वह सरलता, सहजता मुक्तिबोध मे नही है। मुक्तिबोध ने सघन जीवन-अनुभव के सारभूत निष्कर्षो को, उसका वास्तविक जीवन-चित्र न उपस्थित कर, केवल जादुई कल्पना या फैंटेसी के रंगों द्वारा प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुतिकरण मे जो दुरूहता दिखाई देती है, वह मात्र शिल्पगत न होकर परस्पर उलझे हुए गूढ यथार्थ के कारण भी है।

नयी कविता के उत्कर्ष काल मे जब कविता-भाषा बिंबों और प्रतीको से बोझिल होकर आम-जीवन की जीवन्त भाषा से कट गया और अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध जैसे बडे कवि अपने अतिशय 'बिबवादी रूझान' के कारण अभिव्यक्ति मे जटिलता, दुरूहता के शिकार हुए। तब भी त्रिलोचन ने कविता मे सीधे सहज ढग से बात कहने की अपनी पुरानी और शुरूआती काव्य-सस्कार को नहीं छोड़ा। बिब और प्रतीकों के प्रयोग से बुनी जटिल भाषा-शैली से अलग त्रिलोचन की सीधी-कथन वाली शैली, जिसमें गद्य-जैसे अटूट वाक्य-विन्यास मे सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक का उपयोग होता है, को शमशेर ने 'सपाट' (Straight) कहा है। 'सपाटबयानी' की वह शैली त्रिलोचन के यहाँ अपने आरम्भिक रूप मे विद्यमान है, जो सातवे दशक मे कविता की अतिशय बिंबवादी रूझान से मुक्ति के लिए सामने आई। सातवे दशक मे जब बिबो की अधिकता से कविता रोजमर्रा की जिन्दगी से कट गयी, तो कविता में जीवन से साक्षात्कार और जीवन के अनुभवो की जीवन्त तात्कालिकता देने के लिए सवाद-शैली और सपाटबयानी का उपयोग करना आवश्यक हो गया। उस समय कविता की 'सपाटबयानी' मे 'सक्रिय जीवन भाषा' या बोलचाल की भाषा से जुडाव पर जोर दिया गया और अटूट वाक्य को सरक्षित करने का प्रयास हुआ। त्रिलोचन इस दिशा मे प्रथम महत्वपूर्ण कवि है। बोलचाल के अटूट वाक्य-विन्यास और सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक को अपनाते हुए भी त्रिलोचन की कविताएँ सपाट और इकहरी नहीं हो जातीं। बानगी के तौर पर, त्रिलोचन की 'फेरू' कविता का एक छोटा-सा अश देखा जा सकता है

'कहा उन्होने—मैंने काशीवास किया है
काशी बडी भली नगरी है
वहॉ पवित्र लोग रहते है
फेरू भी सुनता रहता है।'[56]

गाव की ठकुराइन फेरू कहार के साथ एक वर्ष कलकत्ता बिताकर आई है। लेकिन गाव वालो से उनका यह कहना कि 'मैने काशीवास किया है— काशी बडी भली नगरी है— वहॉ पवित्र लोग रहते है'--अत्यत सादगी से भरा, साधारण बोलचाल के लहजे है। लेकिन अपने पूरे सदर्भ मे इन वाक्य-खडो की अर्थध्वनियॉ काफी दूर तक जाती है। काशीवास का माहात्म्य, काशी नगरी और वहॉ रहने वालो की पवित्रता अपना एक अलग सन्दर्भ रखती है। लेकिन 'फेरू भी सुनता रहता है'--मे केवल फेरू की विवशता या लाचारी ही नहीं, ठकुराइन के झूठ के साथ काशी की पवित्रता के रूढिगत विश्वास से भी पर्दा उठा देता है।[57] ठेठ वर्णनात्मकता नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के यहॉ भी देखी जा सकती है। लेकिन इनके द्वारा बरते गये भाषा के स्वभाव मे और त्रिलोचन की कविता-भाषा के स्वभाव मे फर्क है। नागार्जुन जब व्यंग्य की मुद्रा मे आते है तो भाषा भी अपने ठेठ देसीपन में सारे आवरण उतार फेकती है। जब केदार लोक-सवेदना को या लोकगीतो की लय मे अथवा कहे कि गॅवई परिवेश का भावुकता मे बहकर वर्णन करते है तो उनकी भाषा मे ठेठपन का माधुर्य आ जाता है। लेकिन त्रिलोचन कविता मे अधिकतर अपने ठेठ देसीपन और आम बोलचाल का आत्मीय रग-ढग अपनाते हुए भी नितात वर्णनात्मकता को ऐसी ऊॅचाईयॉ देते है जो बडे-बडे बिबवादियों, प्रतीकवादियो को नसीब नहीं होती।

शमशेर बहादुर सिह ने 'एक बिल्कुल पर्सनल एसे' में त्रिलोचन-काव्य के वस्तु एव शिल्प पक्ष पर विचार करते हुए उसकी खूबियो एवं खामियों को पकड़ने के लिए महत्वपूर्ण सूत्र दिया है : "त्रिलोचन की कमजोरियों और शक्तियो दोनो को समझने के लिए यह हृदयगम कर लेना बहुत उपयोगी है कि वह सामान्य को ही असमान्य का दर्जा देते और उसी को व्यक्त करने के लिए कृत-संकल्प है। वह सपाट और स्पष्ट शैली में ही विश्वास करते है। (सपाट का मै Straight के अर्थ मे यहॉ प्रयोग कर रहा हूँ।) यह सपाट स्पष्टता भाव, विचार और अनुभूति—तीनो के अर्थ है और अक्सर अनुभूति की धरा पर अनुलक्षित ड्रामे को व्यक्त करने के ही लिए, — जिसमे भाषा का किचित् भी लालित्य या 'साहित्यिकपन' उसे अयथार्थ बना देगा, जो त्रिलोचन को सह्य नहीं होगा।"[58]

"कभी-कभी (या अधिकाशत·) प्रतीकों और बिम्बों के कारण कविता की स्थिति उस औरत जैसी हास्यास्पद हो जाती है जिसके आगे एक बच्चा हो, गोद मे एक बच्चा हो और एक बच्चा पेट मे हो।"[59] नयी कविता में बिम्ब और प्रतीको के प्रति अतिशय रूझान का इस तरह उपहास करते हुए धूमिल ने कविता मे गद्य-सुलभ जीवंत वाक्य-विन्यास को पुन प्रतिष्ठित करते हुए 'सपाटबयानी' (अर्थात् सीधा-सादा कथन) को अपनी विशिष्ट काव्य-शैली बनाया। सपाटबयानी की इस शैली के पीछे वही 'सही-बयानी' की दृष्टि मौजूद है, जिसके कारण 'सपाटबयानी' की दिशा मे प्रथम महत्वपूर्ण कवि त्रिलोचन ने कहा था--

. अगर कोठरी अँधेरी
है तो उसे अँधेरी समझाने कहने का
मुझ को है अधिकार. सिफ़ारिश से, सेवा से
गला सत्य का कभी न घोटूँगा. मेवा से
वर ब्रुहि न कहूँगा और न चुप रहने का
लडता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा,
नए चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा

(दिगत, पृ० 25)

'अँधेरी कोठरी को अँधेरी कहने' वाली 'सही-बयानी' के तेवर के कारण ही त्रिलोचन को नई आशा-अभिलाषा को लेकर सघर्षरत समाज एव जन-जीवन के नये चित्रो या सही चित्रों और उसकी नई भाषा या वास्तविक भाषा देने का आत्मविश्वास जागा है।

छठे दशक के अत और सातवे दशक के आरभ मे सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिब-विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा। .. समस्या परिस्थितियो के सीधे 'साक्षात्कार' की थी, प्रश्न हर चीज को उसके सही नाम से पुकारने का था।[60] धूमिल ने लिखा

मै साहस नहीं चाहता
मै सहज होना चाहता हूँ
ताकि आम को आम
और चाकू को चाकू कह सकूँ।[61]

जीवन मे, कविता मे धूमिल 'सहज' होना चाहते है, जबकि 'सहजता' त्रिलोचन के स्वभाव मे है। उनकी कविता का प्राणतत्त्व 'सहजता' है। कविता मे 'सहजता' से तात्पर्य है--कथ्य व रूपगत सजावट अथवा अलकरण के आयास के बिना कथ्य-कथन की स्वाभाविकता-जन्य सशक्त अभिव्यक्ति। रचना मे 'सहजता'— केवल कथ्य-कथन की सरलता अथवा सपाटपन के रूप मे नहीं होती वरन् दृष्टि की स्वाभाविकता, सही-बयानी की मार्मिकता के रूप मे होती है, इसमें प्राय संश्लिष्टता और सगुंफिति भी मौजूद रहते हैं। वस्तुत सपाट-कथन भी कविता मे प्राय· सपाट नहीं होता वरन् भंगिमायुक्त होता है। 'कविता सपाटता मे होती ही नहीं, क्योकि पक्तियॉ चाहे सीधी-सादी हों या उलझी हुई, सब मे विपथन होता है, अर्थात् उनमे सहज भाव से जो अर्थ निकलता है वही अर्थ अभिप्रेत नहीं होता, काव्य का अर्थ सामान्य अर्थ से अलग हटकर उभरता है। इसलिए सीधी-सादी कविता लिखना अधिक कठिन होता है, सीधी-सादी पक्तियों मे बाहरी अर्थवत्ता भरना बहुत कठिन है किन्तु आदर्श स्थिति यही है।'[62] ऊपर-ऊपर से 'सपाट' और सामान्य-कथनो के रूप में मिलने वाली त्रिलोचन की काव्य-पंक्तियॉ, उनकी कथन-भगिमा और भीतरी भावोद्वेलन के कारण अत्यन्त मर्मस्पर्शी व विशिष्ट अर्थग्राही हो जाती हैं। धूमिल की कविता मे 'सपाट-कथन' उनकी खास भगिमाओ--कभी गुस्सा, कभी अफसोस, कभी धिक्कार, कभी उत्तेजना, कभी सवाल-जबाब— को उपस्थित करते है, और एक 'सार्थक वक्तव्य' को विशिष्ट अर्थवत्ता दे देते है। त्रिलोचन हो, चाहे धूमिल--उन्होने कविता मे सपाट-कथन का उपयोग अपनी कविता के अनिवार्य उपादान के रूप मे किया है, वैसे ही जैसे सहज-स्वाभाविक बिबों का। उदाहरण के लिए, त्रिलोचन के एक सॉनेट का यह अंश द्रष्टव्य है

> भूमडल भर के भविष्यव्यवसायी दल ने
> जल-स्थल-नभ से महाप्रलय होगा—भाखा है.
> प्राणी अर्धप्राण हो गए हैं, बस कल की
> चिता उन को अकर्मण्यता से कर मलने
> पर ही विवश कर रही है, जिस ने राखा है
> वह क्या कल न रखेगा, ऐसी चिता छलकी

(शब्द, पृ० 27)

सपाट-कथन के रूप मे दिखने वाली इन काव्य-पंक्तियो मे सस्कृत के अभिजात शब्दो के बीच जनपदीय भाषा के 'भाखा' और 'राखा' जैसे ठेठ शब्दो को रखकर कवि ने गहरा

व्यग्य उत्पन्न किया है। भविष्य-कथन का व्यवसाय करने वाले ज्योतिषियो के दल द्वारा एक निहायत झूठी बात को 'सोलह आने सही' के भाव से कहना—एक सामान्य-कथन न होकर 'भाखना' ही हो सकता है। उस अधविश्वासी जनता पर भी गहरा व्यग्य किया गया है जो उस 'भाखा' को सोलह आने सही मानकर चिता और भय से ग्रस्त है, लेकिन इस अधविश्वास की शिकार भी है कि 'जाको राखे साइयॉ, मारि न सकिहैं कोय।' धूमिल की कविता मे भी सीधी सादी पक्तियो के रूप मे मौजूद 'सामान्य-कथन' उनकी खास कथन-भगमा के कारण प्राय. विशिष्ट अर्थगरिमा से भर उठता है। बानगी के लिए, 'रोटी और संसद' कविता की ये पक्तियॉ द्रष्टव्य है

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है।
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मै पूछता हूॅ—
"यह तीसरा आदमी कौन है ?"
मेरे देश की ससद मौन है।[63]

'इस कविता मे सामान्य इसान का तर्क है। रोटी खोने की चीज है, न कि खेलने की। रोटी से खेलने वाले के बारे मे पूछने वाले की कथन-भगिमा कविता को धारदार बना देती है। धूमिल इस बात को बेनकाब करते है कि जनतत्र मे यह संसद 'भूख' और 'रोटी' जैसे प्रमुख और महत्वपूर्ण प्रश्नो पर मौन धारण कर लेती है।'[64]

जीवन-व्यवहार की भाषा को ही त्रिलोचन ने अपनी काव्यभाषा का आधार बनाया। बोलचाल की 'सक्रिय जीवन-भाषा' मे वाक्य ही व्यक्ति के आशय को स्पष्ट करता है, निरा 'शब्द' नहीं। इसलिए जीवन की ओर देखने वाले कवि त्रिलोचन के यहॉ 'एक पूरा-वाक्य' ही अभिव्यक्ति का आधार बनता है। वाक्य ही आगे चलकर मुहावरे का रूप लेता है। जीवन की ओर देखने वाली रचना मे मुहावरे अधिक होते है। बल्कि उससे नये मुहावरो का जन्म होता है। जीवन से जुडी होने के कारण त्रिलोचन की कविता-भाषा मे स्वाभाविक रूप से खाटी हिन्दी के वाक्य, मुहावरे, और कुछ नये मुहावरे आते हैं, जो उनकी भाषा एव अभिव्यक्ति-विधान को

आत्मीयता की मिठास और अनूठापन प्रदान कर देते हैं। बानगी के लिए, 'उस जनपद का कवि हूॅं' सग्रह से एक सॉनेट द्रष्टव्य है

'इधर त्रिलोचन ने अपना सिक्का जमा लिया,
उस की बातो पर भी कान् लगे हैं देने
दिल-दिमाग वाले, जम कर दिलचस्पी लेने
लगे लोग है, बातों बातो में कमा लिया
अच्छा ख़ासा नाम.' बात बकबक शर्मा की
सुन-सुन कर सिवटहल चचा ने आख़िर पूछा,
'माफ कीजिएगा, गॅवार हूॅं, उस को छूछा
हम ने पाया है, इस में गर्मीगर्मा की
बात नही है, समझाइए, हमे भी, उस ने
क्या कर डाला है, बूढी मॉ ढनक रही है,
जोत नहीं, न रहा बल बावस, बात सही है—
औरो से पूछिए, कही पाएगा घुसने?'
—गाडी की हडहड भडभड, दोनों की बाते
सुने कि छोडे, अपने मन का चरखा कातें •

(उस जनपद का कवि हूॅं, पृ0 14)

सॉनेट जैसे कठिन काव्यानुशासन मे भी बोलचाल मे व्यवहृत भाषा की सरलता, स्वाभाविकता और ठेठ मुहावरेदानी—त्रिलोचन की काव्य-क्षमता की अपनी विशिष्ट उपलब्धि है। यह क्षमता उनके काव्य-व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान भी है।

धूमिल की कविता-भाषा, आम-बोलचाल के लटको-झटको, चुस्त मुहावरो-फिकरों, चमकती सूक्तियो तथा तीखे हमलावर वक्तव्यो से निर्मित हुई है। उन्होंने अपनी कविता मे जीवन्त और सही शब्दो के प्रयोग, सटीक मुहावरे, चमत्कारपूर्ण जुमले व सूक्तियो, सही और अनिवार्य तुक, सार्थक वाक्य-विन्यास पर बहूत ज्यादा मेहनत किया। इन तरीको को आजमा कर वे अपनी

सडक पर 'आतियो-जातियों' को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे-भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है'[65]

× × ×

'अपनी अधूरी इच्छाओं मे झुलसता हुआ
वह एक सम्भावित नर्क है ·
वह अपने लिए काफी सतर्क है
और जब जवान औरतों को देखता है—
उसकी ऑखो मे कुत्ते भौकते है'[66]

कविता मे विशिष्ट-से या 'निजी' लगने वाले ऐसे मुहावरे बहुत आकर्षक, बहुत चुस्त-दुरूस्त, कहना चाहिए बहुत स्मार्ट किस्म के होते हैं, लेकिन वे कवि को बहुत कम स्वतत्रता देते हैं। इन मुहावरो की सरचना में ही आन्तरिक स्वतंत्रता कम होती है। इनमे नये रास्ते तलाशना कठिन होता है। मुहावरा कितना ही बेहतर हो, अपने दोहराव के साथ ही वह मेनेरिज्म बन ही जाता है। यह भी सच है कि "इस तरह के मुहावरो से एक समय के बाद मुक्त होना कठिन होता है। रचनाकार इसमे घुटन महसूस करता है, पर उससे मुक्त होने का साहस नहीं जुटा पाता। उसे अपनी अस्मिता का खतरा सताने लगता है। अपनी रचना के बिखर जाने का डर लगता है।"[67] चुस्त मुहावरो-फिकरो या जुमलों तथा चमकती सूक्तियो अथवा चमत्कारपूर्ण उक्तियो को कविता मे टांकने का मोह और तुकबाजी का अनिवार्य-सा ढर्रा अपनाने वाले कवि धूमिल का निजी मुहावरा खुद उनकी कैद बन गया। बाद के दिनो मे धूमिल को लगने लगा था कि वे अपने ही मुहावरो मे बॅध-से गये है। इसलिए वे इसे तोडने और अपने को बदलने की तीव्र इच्छा और बेचैनी महसूस कर रहे थे। वकौल गोबिन्द उपाध्याय · "1971 के आसपास धूमिल कहते थे कि तुकबंदी की शैली अब पिट चुकी है। मै अपने को बदलना चाहता हूॅ। अपने को तोडना पडेगा, क्योकि शब्द इतने बेइमान है कि 'पूँजी' के तुक पर 'जूंजी' की तरह दिमाग मे आ जाते है।"[68] लेकिन अपनी तीव्र छटपटाहट के बावजूद वे काव्य-भाषा के उन मुहावरो को तोड कर अपने को मुक्त करने, बदलने मे कामयाब न हो सके, क्योकि वे कक्रीट के किले की तरह मजबूत कैद बन चुके थे।

कुछ मुहावरे ज्यादा लचीले होते है। वो कम चकाचौध पैदा करते है। उन पर ऑख टिकाने के लिए थोडा श्रम करना होता है। इनमें जीवनानुभवो को, ज्यादा से ज्यादा और बहुत अलग अलग तरह के अनुभवो को, विषयो को, भिन्न अन्तर्वस्तुओं को समेटने की ताब होती है। इस तरह ऐसे निजी मुहावरे चाहे एकाएक आकर्षित न करे, पर वे रचना की कैद नही बनते। वे अन्तर्वस्तु के साथ परिमाणात्मक रूप से और कभी-कभी गुणात्मक रूप से बदल जाते है। ऐसे मुहावरो से छूटने के लिए रचनाकार को अतिरिक्त श्रम नहीं करना पडता। वहॉ अस्मिता के खोने का कोई खतरा नहीं होता। तनाव नहीं होता।[69] त्रिलोचन की कविता मे ऐसे ही 'निजी' मुहावरे मिलते है। बानगी के लिए, 'नगई महरा' कविता की ये पक्तियॉ द्रष्टव्य है

'गॉव मे निंदक कम नहीं थे
कहॉ नहीं होते वे
जहॉ वृद्धि पाते है
खुचड खोज खोज कर दिखाते है
बहुतो के पॉव अपनी डगर पर
निदा की कहीं छिपी, कहीं उभरी,
अढूकन से ठोकर खा जाते है
उबेने पॉव चलना कठिन होता है
हर डग का ऊॅच खाल
देखे और तोले बिना
काम नहीं चलता
अपना शरीर बेसम्हार होता है'[70]

त्रिलोचन के अवधी-सग्रह 'अमोला' के बरवै छंदों में ऐसे 'निजी' मुहावरे बहुत मिलते है, जो गहरे जीवनानुभवो और ठेठ भाषा के जीवन्त ठाट को लेकर जीवन के अतरग अनुभवो, अन्तर्वस्तुओ को समेटने का बेजोड नमूना होते है। बानगी के तौर पर, 'अमोला' सग्रह के चार बरवै प्रस्तुत है

खाल खलार भरा भुइँ जलचदरानि
जिउ कई गॉठि छोरि दुबिउ पफनानि।

जिउका जाइ न बलुक जिउ चला जाइ
खाली पेटे चिंता धइ धइ खाइ।

(पृ0 18)

अपने उप्पर ओल्हे चोटि पिराइ
अवर आन कइ जइसे काठ चिराइ।

(पृ० 23)

जउँ पियार मुसरा धइके जरिआन
छाँहि पसारत दुइ जिउ पइ हरिआन।

(पृ० 46)

त्रिलोचन के निजी मुहावरे ज्यादा लचीले और कम चमक-दमक वाले होते है। लेकिन वे मुहावरे गहन जीवनानुभवो और बोलचाल की भाषा के ठेठ लहजो को लेकर नये अनुभव और विशिष्ट अर्थ को सामने लाते हैं। लेकिन सचाई यह है कि "आलोचना मे कवि के निजी मुहावरे की जब-जब चर्चा होती है तो अक्सर चुस्त मुहावरों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है। उस मुहावरे मे आन्तरिक स्वतत्रता कितनी है, उसमे विस्तार की गुजाइश कितनी है, वह कितना लचीला है, इस पर कम ही बात होती है।"[71]

कविता की सरचना के विषय मे त्रिलोचन की अवधारणा बहुत स्पष्ट और प्रौढ है। उनकी कविताएँ खडित अशो का संगुम्फन न होकर एक समग्र इकाई हैं। यह बात खास तौर से उनके सॉनेटो मे देखी जा सकती है। इनमें से किसी एक अश को शेष से अलग काट कर बिना पूरी कविता को क्षति पहुँचाए उद्धृत नहीं किया जा सकता। ऐसी एकान्विति हिन्दी के बहुत कम कवियो में पायी जाती है।[72] इसके ठीक विपरीत स्थिति धूमिल के यहॉ मिलती है। वे दो-चार पक्तियों की चमत्कारपूर्ण उक्तियो, जुमलों या फिकरो को कविता मे जहॉ-तहॉ टाक दिया करते है। कविताओ मे अलग से टांकी गई 'चमकती पंक्तियो' पर कोई भी सचेत पाठक उँगली रख सकता है। ऐसी चमकती पक्तियॉ अथवा सूक्तियॉ ज्यादातर कविता के अन्त मे है। जैसे—

'आजादी सिर्फ तीन थके हुए रगो का नाम है
जिन्हे एक पहिया ढोता है'

(बीस साल बाद)

'एकता युद्ध की और दया
अकाल की पूँजी है'

(अकाल दर्शन)

'   वह सुरक्षित नहीं है
जिसका नाम हत्यारो की सूची मे नहीं है'

(हत्यारी संभावनाओ के बीच)

धूमिल को जब कभी किन्हीं खास चमत्कारपूर्ण उक्तियों से मोह होता है और किसी भी हालत मे उन्हे कविता का अंग बनाना चाहते हैं तो तुकबदी की शैली मे ढलकर कविता की वे पक्तियॉ भी प्रभावहीन हो जाती हैं। जैसे—

'लन्दन और न्यूयार्क के घुण्डीदार तसमो से
डमरू की तरह बजता हुआ मेरा चरित्र
ॲगरेजी का 8 है।'

(शान्ति पाठ)

या—

'कितना भद्दा मजाक है
कि हमारे चेहरो पर
ऑख के ठीक नीचे ही नाक है।'

(सच्ची बात)

इस तरह धूमिल की कविता की सीमा हमें स्पष्ट नज़र आती है कि वह चुटकुले की तरह मॉजी हुई और स्फुट है।

जन-आदोलनो से गहन सम्पर्क रखना नागार्जुन के कवि-व्यक्तित्व की खास विशेषता थी। बहुत हद तक केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, गोरख पाण्डेय और आलोकधन्वा मे भी यह विशेषता मिलती है। आजादी के पहले के जन-आंदोलनो की प्रतिध्वनि केदार की कविताओ मे है। आजादी के बाद के जन-जीवन और जन-आंदोलनो की धडकन नागार्जुन, धूमिल और गोरख पाण्डेय की कविताओ मे मौजूद है। लेकिन त्रिलोचन जन-आदोलनो के हिस्सेदार कवि नहीं हैं। उन्हे तत्काल की घटनाओ को लेकर भावातिरेक और आदोलनबाजी कभी रास नही आयी। उनका कहना है "मेरी रचनाऍ समसामयिक आंदोलनों से सम्बद्ध नहीं हैं। यद्यपि

वैचारिक स्तर पर मै आन्दोलनो से सम्बद्ध रहता हूँ और कभी-कभी वे मेरी रचना का विषय भी बनते हैं, पर अपनी पूरी प्रक्रिया के दौरान ही। अपनी कविताओ मे, मै जीवन को अपनी समझ के अनेक स्तरो पर जैसा पाता हूँ, वैसा ही रख देता हूँ। मेरी रचनाओ मे आपको आवेश नहीं, शात व्यजना मिलेगी, क्योकि वे तात्कालिक नहीं होतीं। मेरी कविताएँ स्वत स्फूर्त नहीं होतीं क्योकि मेरा विश्वास 'रिकलेक्शन' मे है।"[73] नागार्जुन, धूमिल, गोरख पाण्डेय और आलोकधन्वा को राजनीतिक मिजाज का कवि कहना चाहिए। नागार्जुन के कवि का कार्यक्षेत्र राजनीति को तेज करना रहा है। त्रिलोचन की कविता यह काम बहुत कम करती है। राजनीति के तात्कालिक आग्रहो और कार्य-नीतियो का अनुगमन करने वाली कविताएँ केदार और नागार्जुन दोनो के यहाँ मिलती है, कुछ हद तक धूमिल और गोरख पाण्डेय के यहाँ भी। इनके काव्य मे आंदोलनात्मक जोश, क्रान्तिकारी आवेग और नारेबाजी भी मिलती है। लेकिन त्रिलोचन इन चीजों से बचने मे कामयाब रहे है।

1967 ई० मे नक्सलबाडी के सशस्त्र किसान आदोलन के प्रभाववश साठोत्तरी हिन्दी कविता में क्रान्तिकारी और विद्रोही तेवर का स्पष्ट उभार सामने आया। धूमिल, गोरख पाण्डेय और आलोकधन्वा की कविता पर इस आदोलन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। धूमिल की कविता मे नक्सलबाडी उग्रता का स्वर विद्यमान है। उनके लेखन ने कविता को क्रान्ति के बेहतर हथियार के रूप मे चुना। नक्सलबाडी आन्दोलन से गहरे तौर पर प्रभावित होते हुए भी 'ससद से सड़क तक' के धूमिल द्वन्द्वयुक्त है, किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे है। लेकिन बाद के दिनो मे वे इस आदोलन का समर्थन करने लगते है। फिर तो इसकी गहराई मे नही उतरते और उनकी कविता सपाट हो जाती है। "वे अपने ही विरूद्ध जा खेडे होते है, क्योकि अब उनके लिए 'शब्द शस्त्र बन गये है' और—

'कविता ने ढूँढ लिया है अपनी मुक्ति का रास्ता
दुश्मन की छाती के खून भरे छेद से।'

(सुदामा पाण्डे का प्रजातत्र, पृ० 59)

यह बडबोलापन सरलीकरण का ही परिणाम है। कविता मे निष्कर्ष नहीं रचा जाता, निष्कर्ष तक पहुँचने की प्रक्रिया और द्वन्द्व को रचा जाता है। धूमिल ऐसा नहीं करते। इसलिए उनकी इस तरह की कविताएँ प्रभावित करने मे असफल होती हैं।"[74] 'स्वभावत इस दौर मे आकर उनकी कविताएँ शस्त्रागार की शब्दावली से भर गईं और उस शब्दावली से जो झकार

पैदा हुई, वह बहुत कुछ खोखली थी।'[75] धूमिल के बाद नक्सलबाडी आन्दोलन के आवेग की एक नयी लहर गोरख पाण्डेय की कविता मे दिखाई देती है। उन्होने अपनी कविता, गीतो और गजलो को आलोचको के लिए जायकेदार बनाने की बजाय क्रान्तिकारी जनता के लिए नारे, प्रचार और क्रान्ति के लिए इस्तेमाल की कला बनायी। 'कविता, युग की नब्ज धरो' के सकल्प के साथ उन्होने स्पष्ट किया—

'उलटे अर्थ विधान तोड दो
शब्दो से बारूद जोड दो
अक्षर-अक्षर पक्ति-पक्ति को
छापामार करो!'[76]

उलटे अर्थ-विधानों को तोडकर छिपी हुई सच्चाई को उजागर करने के लिए गोरख ने व्यंग्य का सहारा लिया। उन्होने लोक-जीवन मे प्रचलित शैलियो के गुणो को अपना कर सीधे, सरल ढग से बात को कहने मे कुशलता हासिल की। "लेकिन गोरख पाण्डेय के साथ एक गड़बड़ी है। उनके पास जो भाषा है वह एकदम पीछे की, 'नयी कविता' के जमाने की है और वस्तु-तत्त्व एकदम ताजा है। दोनो मे संगति नहीं बैठती। इस द्विफॉक मे कविता या तो उद्घोषणा हो जाती है या पुनरावृत्तियॉ उसे धर दबोचती हैं। 'कैथर कलॉ की औरते' और 'समझदारों का गीत' जैसी चमकदार कविताएँ भी कुछ हद तक इसकी शिकार है। इससे बचने और पूरी तरह जनता का कवि बने रहने के उत्साह मे ही खडी बोली का दामन छोडकर गोरख अपनी मातृबोली भोजपुरी की ओर मुडे। मजदूरो और किसानो के लिए उन्होने भोजपुरी छन्दो का इस्तेमाल करके अद्भुत और बेजोड 'प्रोपेगैण्डा गीत' लिखे जो आध्र के लोक-गायक गद्दर के गीतों के निकट पडते है।"[77]

1970 के दशक के शुरूआत मे नक्सलबाडी आदोलन के विस्फोटक आवेग को लेकर कविता लिखने वाला महत्वपूर्ण कवि आलोकधन्वा है, जो 'गोली दागो पोस्टर' और 'जनता का आदमी' जैसी उद्घोषणापरक, ललकारती कविताओ और भाषा की नयी क्लासिक अलकृति के साथ प्रकट हुआ। अपनी कविता के जन-पक्षधर और आक्रामक स्वभाव को व्यक्त करने के लिए वे सजीव बिंबो वाली भाषा मे कहते है·

'बर्फ़ काटने वाली मशीन से आदमी काटने वाली मशीन तक
कौंधती हुई अमानवीय चमक के विरूद्ध

जलते हुए गॉवो के बीच से गुजरती है मेरी कविता,
तेज आग और नुकीली चीखो के साथ
जली हुई औरत के पास
सबसे पहले पहुॅचती है मेरी कविता,
जबकि ऐसा करते हुए मेरी कविता जगह-जगह से जल जाती है'[78]

निरंकुश व्यवस्था के दमन, उत्पीडन के भंडाफोड और उसके विरूद्ध आक्रोश तथा बगावत का स्वर ही आलोकधन्वा के यहॉ प्रमुख काव्य-स्वर है। उनकी कविताओ मे गहन विचार प्रक्रिया मिलती है। नागार्जुन की परम्परा मे होने के बावजूद उनकी कविता की भाषा इस कदर मांजी हुई है कि स्थानीयता, जनपदीयता के सारे रग गायब हो गए है। उनकी काव्यभाषा में बोलचाल के ठेठ मुहावरे, लहजे प्राय नहीं मिलते, न ही त्रिलोचन की कविता जैसी सादगी और सहजता मिलती है। अक्सर अतार्किक और चमत्कारिक अभिव्यक्तियो, चमत्कारिक बिबो के कारण भाषाई सहजता प्राय गायब हो जाती है और कविता का भावलोक सम्प्रेषित होने मे दिक्कत महसूस होता है। बानगी के लिए, उनकी एक कविता का यह अश प्रस्तुत है

'सबसे तेज बौछारें गयी भादो गया
सवेरा हुआ
ख़रगोश की ऑखो जैसा लाल सवेरा
शरद आया पुलों को पार करते हुए
अपनी नयी चमकीली साइकिल तेज चलाते हुए
घंटी बजाते हुए जोर-जोर से
चमकीले इशारों से बुलाते हुए
पतग उडानेवाले बच्चो के झुड को'[79]

देखा जाय तो धूमिल, गोरख और आलोकधन्वा जैसे कवियो की 'नक्सलवाद प्रभावित कविता का नकारात्मक पक्ष यह है कि उसमे जैसे राजनीति का सरलीकरण किया गया था, वैसे ही सामाजिक यथार्थ का भी। इससे कविता, कविता से हटकर थोडे बदले हुए रूप मे उस तरानेबाजी और नारेबाजी की तरफ चली गयी, जिसका मुक्तिबोध ने बहुत जोरदार रूप मे विरोध किया था।'[80] यह भी सच है कि क्रान्ति के सरल भविष्यवाद को लेकर चलने वाले और जल्द से जल्द क्रान्ति चाहने वाले लोग क्रान्ति के प्रति ईमानदारी व आस्था के बावजूद जल्द

निराश भी हो जाते है। धूमिल और गोरख पाण्डेय के यहॉ ही नहीं, आलोकधन्वा के यहॉ भी कई बार गहन निराशा का स्वर मिलता है। गहरी निराशा के कारण ही शायद धूमिल ने कहा "क्रान्ति--/यहॉ के असंग लोगो के लिए/किसी अबोध बच्चे के--/हाथो की जूजी है।" (ससद से सडक तक, पृ०18)

त्रिलोचन से गहरे स्तर पर प्रभावित राजेश जोशी और अरूण कमल मे क्रान्ति की उग्रता और उत्तेजना का अभाव है। इसलिए दोनो की काव्याभिव्यक्तियो मे उग्रता और उत्तेजना की जगह सयम और शालीनता मिलती है। अरूण कमल दु खो के बयान मे, जीवन को बचाने के सघर्ष मे खटते लोगो के बयान मे अतिरजना से अथवा नाटकीयता से और हल्की भावुकता से बचते है। बानगी के लिए, उनकी कविता 'कुबडी बुढिया' की ये पक्तियॉ द्रष्टव्य है

'अचानक ही चल बसी/ हमारी गली की कुबडी बुढिया,
अभी तो कल ही बात हुई थी/जब वह कोयला तोड रही थी
आज सुबह भी मैंने उसको/नल पर पानी भरते देखा
दिन भर कपड़ा फींचा, घर को धोया/मालिक के घर गयी और बर्तन भी मॉजा
मलकीनी को तेल लगाया/मालिक ने डॉटा भी शायद
घर आयी फिर चूल्हा जोडा/और पतोहू से भी झगडी
बेटे से भी कहा-सुनी की/और अचानक बैठे-बैठे सॉस रूक गयी।'[81]

राजेश जोशी की कविता 'क्रान्ति' की बात तो करती है, पर चिडिया के माध्यम से--

'लड़ रही है/बाज से/एक भूरी कत्थई चिडिया/अपने
रक्त की उजास से/उसकी परछाई/एक उफनती नदी है'[82]

ठेठ गद्य का वाक्य-विन्यास और वर्णनात्मक तकनीक अपनाने वाले त्रिलोचन की ज्यादातर कविताओं में हमें कोई-न-कोई कहानी मिलती है, और कहानी के अन्तर्गत कोई कोई-न-कोई चरित्र अवश्य मिलता है। वर्णनात्मक तकनीक और कथातत्त्व का समावेश होने से कविता में एक पूरी घटना, एक पूरा जीवन-खण्ड, सामाजिक जीवन का एक 'काण्ड' सामने आता है, जिसके अन्तर्गत एक चरित्र की गर्म सासें मिलती है। त्रिलोचन की कविता मे जितनी संख्या में और जितने प्रकार के 'जन-जीवन के वास्तविक चरित्र' मिलते है, उतनी सख्या मे और विभिन्नता वाले वास्तविक चरित्र दूसरे किसी कवि के यहॉ शायद ही हो। अरूण कमल ने ठीक ही कहा है कि, "जैसे-जैसे कविता से कथातत्व खत्म होता गया और 'जन जीवन के

चित्र' के बदले कविता कवि का वक्तव्य या भावो का समुच्चय मात्र बनती गयी—नगई महरा और परमानन्द आनन्द— जैसे लोग भी कम होते गये।"[83] त्रिलोचन की कविता मे गॉव के साधारण जनो के बीच से उठाए हुए चरित्र बहुत आए है। भोरई केवट, टेल्हू मुसहर, फेरू कहार, नगई महरा, भिखरिया, अतवरिया, चम्पा, सुकनी बुढिया आदि के चरित्रो के माध्यम से कवि ने ग्रामीण जन-जीवन की पीडा, अभाव, बेबसी तथा रूढिग्रस्त सस्कारो, अधविश्वासो मे जकडे समाज के अन्तर्विरोधो का मार्मिक अंकन किया है। त्रिलोचन का 'मै' भी कविता मे बहुत बार एक अभावग्रस्त गँवई चरित्र के रूप मे सामने आता है--कई बार चीर भरा पाजामा पहने, अनाहार किन्तु अक्षत स्वाभिमान और अदीन मन के साथ। जैसा कि अरूण कमल ने कहा है · "यह 'मै' वैयक्तिक चरित्र होने के साथ-साथ सामान्य भारतीय जन का 'लघुत्तम समापवर्तक' भी है।"[84]

प्रगतिशील धारा के कवियो मे त्रिलोचन कदाचित् सबसे ज्यादा ठेठ किसान कवि की पहचान से युक्त है। नागार्जुन, धूमिल, गोरख पाण्डेय, आलोकधन्वा जैसे महत्वपूर्ण कवि राजनीतिक मिज़ाज के कवि है। इनकी चेतना के मूल मे किसान की चेतना नही है।इसलिए इनके यहॉ किसान जीवन के चित्र एव चरित्र कम ही मिलते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की चेतना मूलत· किसान चेतना है। इसके बावजूद उनके यहॉ किसान जीवन से अभिन्नता बरतते हुए उसका सहज-स्वाभाविक चित्रण कम ही मिलता है। उनके किसानी स्वर मे पौरूष, ओज और क्रान्ति का आवेग मिलता है, सहज-स्वाभाविक स्वर और मद्र लय नहीं। बानगी के लिए, इन पंक्तियों को देखा जा सकता है·

'काटो काटो काटो करबी/मारो मारो मारो हॅसिया
हिसा और अहिंसा क्या है/ जीवन से बढ हिसा क्या है'[85]

और—

'हल चलते है फिर खेतो मे/फटती है फिर काली मिट्टी /
फिर उपजेगा उन्नत-मस्तक सिह अयाली नाज/फिर गरजेगी
कष्ट विदारक धरती की आवाज।'[8]

केदार की इन काव्य-पक्तियों की तुलना मे त्रिलोचन का निम्न सॉनेट देखा जा सकता है, जिसमें कवि ने फसल कटनी के समय के सामूहिक श्रम और जीवनोल्लास का चित्रण पूर्ा तल्लीनता और स्वाभाविकता के साथ किया है

तोड़ तोड़ कर बाल खेत से खग उड उड कर
चल देते हैं नीड-दिशा मे. ये मगल के
दिन है. अपने काम से लगे सब, हलचल के
स्वर उठते हैं. ... ...

.. . . अभी हुक्के पुड पुड कर
बजे, उठा कुछ धूम, रग ऑखो मे, आया
हॅसिए मे उत्साह, नया पहॅटा वह सलटा,
कुछ मालूम हुआ न, उधर से गीत कढाए
मजूरिनों ने, आम और मद से बौराया,
कटहल की अरघान उडी, फागो का पलटा
उमडा बन कर ज्वार, सभी ने वेग बढाए

(शब्द, पृ0 60)

इन पंक्तियों में त्रिलोचन ने फसल-कटनी के समय गॉव के पूरे परिवेश या वातावरण का जीवन्त चित्रण करते हुए किसान जीवन मे फैले चतुर्दिक आमोद को रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द द्वारा अनुभूत कराया है। वे किसान जीवन का ऐसा ठेठ, स्वाभाविक और जीवन्त चित्रण इसलिए कर सके है कि उन्हे फसल, खेत के मेडों-रास्तों की गहरी पहचान है। तभी तो वे कहते हैं ·

'इस रस्ते से नहीं, उधर, उस रस्ते हो ले।
उधर मेड ऊँची है और खेत मे पानी
नीचे है। धनखर होने से धरती धानी
लहराती है। '

(फूल नाम है एक, पृ० 103)

यह भी सच्चाई है कि पूरी प्रगतिशील काव्यधारा के बीच त्रिलोचन की कविता मे ही सबसे अधिक श्रमिक और खेतिहर मजदूर आते है। उनकी कविता मे भोरई, नगई, टेल्हू, बैताली, सनेही, निरीधन, मंगल, पॉचू, निरहू आदि ऐसे चरित्र या 'जन' है जो प्रतिदिन श्रम करके भोजन की व्यवस्था करते है। केदार और नागार्जुन के यहॉ तो ग्रामीण परिवेश और किसान-जीवन के नेह-छोह, सुख-दुख, उल्लास और आकांक्षा से भरे हुए कुछ जीवन्त चित्र

और चरित्र मिल जाते है, लेकिन मुक्तिबोध और शमशेर के यहाँ ग्रामीण परिवेश और किसान-जीवन के जीवन्त चित्र और चरित्र नहीं मिलते। इसका कारण शायद यह है कि मुक्तिबोध और शमशेर— दोनो लोग ग्रामीण परिवेश और किसान जीवन का निकट साक्षात्कार और उस जीवन के नेह-छोह, सुख-दुख, अभाव और आकांक्षा का निजी अनुभव नहीं पा सके। इसलिए गॉव और गॉव की किसान-मजदूर जनता के प्रति सहानुभूतिशील कल्पना ही मुक्तिबोध और शमशेर के पास थी, न कि सच्चा, प्रत्यक्ष भोगा यथार्थ। इसलिए दोनो के यहॉ किसान, मजदूर या निम्न वर्ग का कोई भी कैरेक्टर नहीं मिलता। धूमिल ने 'मोचीराम' के रूप मे कामगार और निम्न वर्ग का एक वास्तविक चरित्र जरूर दिया है, लेकिन कविता मे उसकी कई बातें उसके मानसिक स्तर से ऊपर की लगती है। धूमिल के बाद— गोरख पाण्डेय, राजेश जोशी, अरूण कमल, आलोकधन्वा— किसी के यहॉ किसान, मजदूर या निम्न वर्ग का कोई 'अविस्मरणीय' चरित्र नहीं मिलता।

एक ठेठ देसीपन या स्थानीयता त्रिलोचन के साथ-साथ केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन के काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। तीनो ही ठेठ प्रगतिशील कवि है और तीनो का काव्य जनपदीयता पर टिका है। इन तीनो कवियो ने हिन्दी के साथ-साथ अपनी जनपदीय बोलियो मे भी लिखा है। त्रिलोचन ने अवधी मे, केदार ने बुदेली मे और नागार्जुन ने मैथिली मे महत्वपूर्ण काव्य- रचना की है। लेकिन ये तीनो कवि अपने-अपने भिन्न जनपदीय सस्कारो के साथ प्रगतिशील हैं। 'उस जनपद का कवि हूँ' को अपना काव्य-सकल्प बनाने वाले त्रिलोचन की कविता मे 'अवध' प्रदेश अपनी खास सास्कृतिक राग-रग-उल्लास, अभाव-अशिक्षा-आकांक्षा और बोली-बानी-लहजे के साथ उपस्थित होता है। केदार और नागार्जुन के यहॉ भी क्रमश 'बुंदेलखण्ड' और 'मिथिला' प्रदेश— अपनी पूरी सास्कृतिक गरिमा के साथ उपस्थित होते हैं। लेकिन त्रिलोचन की 'स्थानीयता' या जनपदीयता— इन दोनो से अलग इस मानी में है कि, कवि 'मै' के रूप मे एक ठेठ गॅवई-गॉव के राग-रग-गंध, सवेदना, भाषा और लहजे के साथ घुला-मिला है, न कि अलगाया हुआ। नागार्जुन के यहाँ यह 'स्थानीयता' तात्कालिकता का ही एक पहलू है, जबकि केदार के यहॉ यह— 'परिवेश के प्रति सजगता'— के रूप मे प्राय आता है।

इन तीन कवियो से अलग पडते है— अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध— जैसे महत्वपूर्ण कवि। इन कवियो की कविता मे 'स्थानीयता' अथवा जनपदीयता का कोई अपना रग या पहचान नहीं मिल पाता। धूमिल की कविता मे 'भोजपुरी' का ठेठ बनारसी ठाट होने के

बावजूद, लडता हुआ 'बनारस' का समाज और उसकी नयी आशा-आकांक्षाएँ नहीं मिलतीं। लेकिन गोरख पाण्डेय के कुछ भोजपुरी गीतो में 'लडता हुआ बनारस का समाज और उसकी नयी आशा-आकाक्षा' को देखा जा सकता है। बानगी के लिए, एक गीत

'सूतल रहलीं सपन एक देखलीं
सपन मनभावन हो सखिया,
फुटलि किरनिया पुरूब असमनवा
उजर घर ऑगन हो सखिया
ॲखिया के नीरवा भइल खेत सोनवा
त खेत भइले आपन हो सखिया,
गोसयॉ के लठिया मुरइया अस तूरलीं
भगवलीं महाजन हो सखिया,'[84]

स्थानीयता के कई रंग और छवियॉ राजेश जोशी की कविता मे मौजूद है। जीवन मे पीछे छूट गये 'अपने शहर' के प्रति अपनत्व-भरी स्मृतियॉ, वहॉ की आवाजे, बोली-बानी तथा भाषा की बनक और ठसक को राजेश जोशी अनेक बार अपनी कविता का अग बनाते है। निर्वासन, जो हमारे समय का शायद सबसे बडा दुख है, के कारण भी शायद उनकी कविता मे स्थानीयता पर बल दिया गया है। शायद इस 'स्थानीयता' के मूल मे है— अपने जीवन की जगह को अपनी कविता में बचा रखने का भाव। इस स्थानीयता के विभिन्न रगो व छवियो मे 'लडता हुआ समाज और उसकी नयी आशा-आकाक्षाएँ' प्राय नहीं मिलतीं।

अरूण कमल की कविताओ मे 'भोजपुरी' शब्दो और मुहावरो के साहसपूर्ण प्रयोग को सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। 'उठा दमा का ज्वार जो भीतर **नधा** पडा था', 'भूँकते कुत्तो को पीछे **रगेदते**', 'ऑख गडाये **चुक्कु-मुक्कु**'--जैसे प्रयोगो से अरूण कमल की कविता की भाषा में एक खास ढंग की चमक आ जाती है। फिर भी ऐसे प्रयोगो से यह भ्रम न होना चाहिए कि उनकी कविताएँ 'भोजपुर' जनपद की सास्कृतिक अभिव्यक्तियॉ हैं। नहीं, वे अपने मूल-स्वभाव में शहरी मध्यवर्ग के व्यक्ति के मन की ही अभिव्यक्ति हैं। भोजपुरी शब्दों और मुहावरों का उनकी कविताओं मे एक 'कलात्मक' भूमिका और उपस्थिति है।

मुक्तिबोध ने त्रिलोचन की कविता मे व्यक्त 'प्रकृति के उल्लास-चित्रों के प्रति प्राकृतिक मोह' को रेखाकित करते हुए लिखा है कि, "प्रकृति उसके मन में एक बाह्य वास्तविकता के

रूप मे है, मन की इमेज के रूप में नहीं। वह उस वास्तविकता के चित्रात्मक रूप पर मुग्ध है, परन्तु उसका अन्तर्मुख चित्रात्मक अकन नहीं करता। उसे देखकर अपने मन मे उमडे भावो को प्रधानता देता है।"[88] इस कथन के सदर्भ मे--'धूप' को लेकर रचित त्रिलोचन की एक कविता का यह अश द्रष्टव्य है, जिसमे धूप का सर्वत्र व्याप्त 'उल्लास-तरगित रूप'—जीवन के अनुरागपूर्ण, आसक्तिपूर्ण अनुभव से अभिन्न है

> 'धूप सुन्दर/धूप मे/जग-रूप सुन्दर/सहज सुन्दर/
> व्योम निर्मल/दृश्य जितना/स्पृश्य जितना/भूमि का वैभव/
> तरगित रूप सुन्दर/सहज सुन्दर/ ××× ×××
> ओस कण के/हार पहने/ इन्द्रधनुषी/छबि बनाये/
> शस्य तृण/सर्वत्र सुन्दर/धूप सुन्दर/धूप मे जग-रूप सुन्दर/
> ××× ××× मौन एकाकी/ तरंगें देखता हूँ/
> देखता हूँ/यह अनिवर्चनीयता/बस देखता हूँ/सोचता हूँ/
> क्या कभी/मैं पा सकूँगा/इस तरह/इतना तरंगी/और
> निर्मल/आदमी का/रूप सुन्दर'[89]

त्रिलोचन की यह कविता केदारनाथ अग्रवाल को पसद नहीं है, जबकि उन्हें अपनी ही एक कविता मे 'धूप' का यह चित्र, जिसमे आलकारिक कल्पना का इस्तेमाल भी है, अपेक्षाकृत ज्यादा 'टचिग' लगता है

> 'धूप नहीं, यह
> बैठा है खरगोश पलंग पर
> उजला,
> रोएँदार, मुलायम--
> इसको छू कर
> ज्ञान हो गया है जीने का
> फिर से मुझको।'[90]

यहॉ केदार ने उमग मे— उन्मुक्त हृदय की भावना के अनुरूप— 'धूप' का ऐसा अन्तर्मुख चित्राकन किया है कि धूप की जगह खरगोश ही बच गया प्रतीत होता है। उनकी कविता मे 'धूप' के अन्य रूप भी है। कहीं वह प्रेयसी के रूप में है तो कहीं "धूप चमकती है चॉदी की साडी पहने/ मैके में आयी बेटी की तरह मगन है।" (फूल नहीं, रग बोलते हैं, पृ० 63)

वास्तव मे, प्रकृति का भावाकुल चित्र केदार के यहॉ बहुत है। क्रान्ति के गर्जन-तर्जन, आवेग, आक्रोश को अपनी कविता का विषय बनाने वाले कवि केदार प्रकृति के जीवन्त दृश्यो मे भी क्रान्ति के ही दर्शन करते, और सदेश पाते है :

दहका खड़ा है/सेमल का पुरनिया पेड,/टपाटप टपकाता
जमीन पर /लाल लाल फूली आग,/कचहरी के सामने/
क्रान्ति का माहौल बनाये,/ राजनीति से तालमेल बैठाये।

(हे मेरी तुम, पृ0 55)

दूसरी ओर, खेतों में 'गेहूँ' डटा खडा है, और–

'ताकत से मुट्ठी बॉधे है,/नोकीले भाले ताने है,
हिम्मत वाली लाल फौज सा/मर मिटने को झूम रहा है।'

(गुलमेहदी, पृ० 21)

अपनी भावना के अनुरूप, प्रकृति का मानवीयकरण नागार्जुन और केदार दोनो करते है। लेकिन त्रिलोचन प्राय ऐसा नहीं करते। वे प्रकृति को प्रकृति ही बने रहने देते है और तन्मयता व तटस्थता के द्वन्द्व मे उसका अतीव मनोहारी चित्र अंकित करते है, जो सहज-स्वाभाविक, मधुर और यथार्थ होता है। नयी बात कहने की ललक से वे प्राकृतिक उपादानों का विरूपीकरण नहीं करते। प्रकृति मे जीवन का साक्षात्कार करना त्रिलोचन की खासियत है। बानगी के लिए, 'जाड़े की धूप' के बहाने एक समस्त जीवन-व्यापार की व्यजना :

'जाड़े का दिन. धूप खिली है आसमान की
नील लता पर, प्राची मे, थोड़ा सा ऊपर
सूरज उठ कर चला गया है, ...
प्रिय लगती है बहुत, घमौनी, घाम देख कर
लोग कहीं जमते है, गाऍ और बकरियॉ
खडी धूप मे मौज लिया करती है, सर्दी
इसी तरह जाती है

(शब्द, पृ0 22)

और –

'वही धूप पेडो के पत्तो की हरियाली
ओप रही है, कितने रंग निखार रही है
रंग रग के फूलों मे, उडती चिड़ियों के
रोएँ, डैने चमकाती है, जो खुशहाली
चौपायों मे है उठ कर ललकार रही है
सुस्ती को, जब तब दिख गए पवन के झोके

(वही, पृ0 29)

नामवर सिंह ने बहुत सही लक्ष्य किया है कि, "जीवन के प्रेमी त्रिलोचन प्रकृति मे भी जीवन ही देखते है, बल्कि प्रकृति में उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहॉ जीवन दीखता है। वस्तुत त्रिलोचन के काव्य का एक बडा भाग जीवन का महोत्सव है।"[91]

प्रकृति के माध्यम से ही अज्ञेय की सारी सवेदना, विचार, अनुभव खुलते-खिलते है। उन्होंने दमित यौन भावनाओं को प्रकृति के प्रतीको द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि में 'सावन का मेघ'--'भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा/विशद, श्वासाहत, चिरातुर'– और 'धरती'– 'स्नेह से आलिप्त'-'बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल' होकर 'वासना के पक-सी फैली हुई' थी 'सत्य-सी निर्लज्ज नंगी और समर्पित'। प्रकृति के अगो या उपकरणो का प्रतीक रूप मे प्रयोग अज्ञेय का काव्य-स्वभाव है। उनका काव्य-जगत् प्रकृति के नए-पुराने प्रतीको से भरा पडा है। उनके प्रिय प्रतीक है– सागर, मछली, नदी, धारा, सेतु, हारिल, चॉद, इन्द्रधनु, चिडिया.. आदि। प्रकृति का बिम्बात्मक चित्र भी उनकी कविता मे खूब मिलता है।

मुक्तिबोध और शमशेर– प्रकृति के उन्मुक्त चित्रकार नहीं है। दोनो ने प्रकृति का वस्तुपरक चित्रण बहुत कम किया है। 'भयानक खबर' को फैंटेसी के जरिए अभिव्यक्त करने वाले मुक्तिबोध के यहॉ प्रकृति भी प्राय· परिवेश की भयानकता, आतक और रहस्यमय वातावरण की अभिव्यक्ति के रूप मे आती है। यथार्थ के अद्‌भुत और भयावह की अभिव्यक्ति के लिए वे प्रायः प्रकृति के भयावह बिंब उपस्थित करते हैं, और अपने अंदर की बेचैनी की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक उपकरणो को 'विशिष्ट प्रतीक' के रूप मे लाते है। बानगी के लिए, 'चॉद का मुँह टेढ़ा है' कविता का यह अश

'धरती का नीला पल्ला कॉपता है
आसमान कॉपता है
हृदय मे करूणा की रिमझिम।
काली इस झडी मे
विचारों की विक्षोभी तडित कराहती
क्रोध की गुहाओ का मुँह खोले
शक्ति के पहाड दहाडते
काली इस झडी मे
वेदना की तडित् कराहती।'[92]

शमशेर प्राय प्रकृति का प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं, और उसमें अपना अवसाद, अपनी पीडा, अपनी आकाक्षा, अपनी प्रणय-वासना आदि मिला देते हैं। 'शाम' इस कवि का प्रिय विषय है जो अक्सर कवि की उदासी को प्रतिबिम्बित करती हुई हमारे सामने आती है। प्रकृति का बिम्बाकन उनके यहॉ बहुत है, और हर बार वे प्रकृति के बिम्बाकन मे अपना 'निजी रगत' दे देते हैं। बानगी के तौर पर, उनकी एक कविता मे शाम का निजी बिब : "नीबू का नमकीन-सा शरबत, शाम/(गहरा नमकीन)/प्राचीन ईसाई चीजो-सी कुछ/राजपूताने की-सी बहुत कुछ/गहरी सोन-चम्पई/सोन-गोरिया शाम।/... .. शान्त।/तुम्हारी साडी की-सी शाम/बहुत परिचित/मेरे दिल के अजीब फैलाव की/लातानी पीतल-कॉसे के घटों की सी/क्लासिक शाम/बहुत दूर तक बजती हुई शाम।"[93]

त्रिलोचन के समान अरूण कमल के प्रकृति-चित्रों में सहजता या स्वाभाविकता का सौन्दर्य मिलता है। अरूण कमल के यहॉ प्रकृति-चित्र जीवन की गतिविधि का अनिवार्य साक्ष्य बनकर आते हैं। बानगी के लिए, 'उर्वर प्रदेश' कविता की ये पंक्तियॉ ·

'जीवन की कितनी यात्राऍ करता रहा यह निर्जन मकान मेरे साथ
तट की तरह स्थिर, पर गतियों से भरा
सहता जल का समस्त कोलाहल—
सूख गये हैं नीम के दातौन
और पोटली मे बॅधे हुए बूॅटो ने फेके है अकुर
निर्जन घर मे जीवन की जडो को
पोसते रहे है ये अकुर'[94]

राजेश जोशी के प्रकृति-चित्रो मे चमत्कारिक कल्पना, जादुई स्वप्न-बिब अथवा फैटेसी का खासा दखल होता है। नयी बात कहने अथवा चमत्कार पैदा करने की ललक से वे कई बार प्राकृतिक उपादानो का विरूपीकरण कर देते है। उदाहरण के लिए, 'चॉद के बारे मे कुछ पक्तियॉ' लिखते हुए राजेश जोशी चॉद को 'चिकना लौण्डा' बना देते हैं·

'आप जो मटरगश्ती करते रहते है रात रात भर
गश्त पर निकले सिपाही क्या तग नहीं करते आपको?
लगता है बडी मार पकड है आपकी उस महकमे मे
पर एक मशविरा मुफ्त देता हूँ आपको
आप जैसे चिकने लौण्डो को यूॅ नहीं
भटकना चाहिए रात-बिरात
इस शहर की आदतें कुछ ठीक नहीं है जनाब'[95]

त्रिलोचन की कविताओं की सरचना मे कवि-व्यक्तित्व की छाप गहरी व सुस्पष्ट है। तुकान्त, अतुकान्त, भिन्न तुकान्त और मुक्त छन्दो के साथ ही सॉनेट, ग़जल और रूबाई (या चौपदे) जैसे हिन्दी के लिए विजातीय छन्दो और काव्यरूपो का प्रयोग करते समय उन्होने हमेशा 'एक पूरा वाक्य' लिखने की सफल कोशिश की है। इनमे सॉनेट को हिन्दी की प्रकृति मे ढालने मे त्रिलोचन को बेजोड सफलता मिली है। 'सॉनेट' काव्य-रूप में ऐसी सफलता हिन्दी के अन्य किसी कवि को नहीं प्राप्त हो सकी है। हिन्दी मे 'सॉनेट' और त्रिलोचन की चर्चा हमेशा एक-दूसरे के साथ ही की जाती है। रामविलास शर्मा को भी कहना पडा कि, "त्रिलोचन के लिए सॉनेट ऐसा कुर्ता है जो हर मौसम मे पहना जा सकता है। हर विषय के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है।"[96] वास्तव मे, त्रिलोचन ने सॉनेट को अपने व्यक्तित्व की पहचान दी है, जिससे 'सॉनेट' उनकी सहज, अनौपचारिक भाव भंगिमा, बातचीत के सहज-आत्मीय ढंग, स्वाभाविक अभिव्यक्ति का काव्य सस्कार और बिबो के बजाय सरल वाक्यो मे सोचने और कहने वाली काव्य-रूचि के बहुत निकट लगने लगता है। कहा जा सकता है कि हिन्दी मे 'सॉनेट' त्रिलोचन का अपना आविष्कार है। अनुशासन, मितकथन और चुस्ती के बावजूद, सॉनेटो में त्रिलोचन ने बोलचाल के, बातचीत के लहजे मे जिस सरलता और सहजता के साथ जीवन की गहन-से-गहन वास्तविकताओ तथा अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सामने रखा है, उसे देखकर बहुधा चकित रह जाना पडता है। इन विशेषताओं को रेखांकित करते हुए शमशेर ने लिखा है·

सॉनेट और त्रिलोचन · काठी दोनो की है
एक। कठिन प्रकार मे बॅधी सत्य सरलता।
साधे गहरी सॉस सहज ही ऐसा लगता
जैसे पर्वत तोड रहा हो कोई निर्भय
सागर-तल मे खडा अकेला, वज्र हृदयमय।[97]

यहॉ शमशेर ने 'सॉनेट' को त्रिलोचन के समग्र व्यक्तित्व मे आत्मसात होते दिखाया है। सॉनेट रचते समय "त्रिलोचन ने मात्र उसके बाह्य आकार-प्रकार की रक्षा करते हुए भीतर से उसके सम्पूर्ण अनुशासन और प्रतिबधो को नमनीय बना दिया है। हिन्दी मे यह कार्य सबसे पहले निराला ने परम्परागत छन्दो के प्रयोग मे किया था। अपनी भावधारा के अनुकूल विराम चिह्नो के सहारे, उन्हे एक नया अनुशासन या सस्कार निराला ने प्रदान किया है। 'राम की शक्ति-पूजा' कविता इसका प्रमाण है। सॉनेट-प्रयोग की दृष्टि से इस दुष्कर कार्य को त्रिलोचन ने अत्यन्त सफलता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए एक उदाहरण काफी होगा

'मानवता की जय होगी—धोखे पर धोखा
खा खा कर भी यह विश्वास नहीं टूटा है
मेरा अब तक, कितु धैर्य जब तब टूटा है।
जीवन चेतन् है, यह बिलकुल नापा जोखा
नहीं मिला है, सीत घाम पानी का पोखा
ठहरा। जितना महाकाल का धन लूटा है
उतना भोग करेगा, यदि घट ही फूटा है
तो किस तरह रूकेगा उसमें अमृत, अनोखा।'

(फूल नाम है एक, पृ० 28)

यदि उपर्युक्त अंश को पंक्तियों की बंदिश से अलग कर दिया जाए तो वह कुछ विशिष्ट भंगिमापूर्ण गद्य बन जाएगा। लेकिन डैश, कामा, कोलन, सेमीकोलन, पूर्णविराम आदि की कहीं से भी उपेक्षा की जाए तो यह न पद्य रहेगा न गद्य ही। अवधी बोली के गहरे स्पर्श के साथ हिन्दी की अपनी मुहावरेदानी की अविकल छटा त्रिलोचन के सॉनेटो में देखते ही बनती है।"[98] उनके यहॉ सॉनेट के सधे हुए शिल्प में हिन्दी काव्यभाषा की नयी क्षमता सामने आती है।

वैसे 'सॉनेट' के माध्यम से ही त्रिलोचन का व्यक्तित्व सर्वाधिक उद्घाटित हुआ है, लेकिन काव्य-शिल्प की दृष्टि से उन्होने अन्य कई सफल प्रयोग किए है। इनमे कुछ नितान्त नये प्रयोग भी हैं। अपने लिए नये शिल्प के विकास मे त्रिलोचन ने कोई कोर-कसर नहीं छोडी

है। 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'नगई महरा', 'मै तुम' आदि अपेक्षाकृत लम्बी कविताओ के साथ ही 'फेरू', 'जीवन का रस', 'अनुबध', 'अस्वस्थ होने पर', 'परिचय' आदि छोटी कविताओ मे भी इस तथ्य को आसानी से देखा जा सकता है। शमशेर ने 'धरती' सग्रह के विषय मे लिखा है कि, "तुमने 'धरती' का पद्य पढा है, उसकी सहजता प्राण है।" अब यही बात त्रिलोचन के समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए भी निर्विवाद रूप से कही जा सकती है। लेकिन इस सहजता को त्रिलोचन ने निरायास नहीं प्राप्त किया है। इसके लिए उन्हे जीवन मे गहरे उतरकर कठोर श्रम करना पडा है। मुक्तिबोध ने काव्य-प्रक्रिया को 'आत्मपरक से समाजपरक या जगतपरक होने की एक लम्बी और कठिन सांस्कृतिक प्रक्रिया' बताया था, जिसका प्रमाण उनकी कविताएँ हैं। इस दुष्कर प्रक्रिया को त्रिलोचन ने अपने सहज व्यक्तित्व के द्वारा अत्यन्त सरल बना दिया है।.. अपने खास लहजे, अन्दाज़ेबयां के कारण वे सर्वत्र अपनी कविताओ मे दिखायी देते है। बिना किसी दबाव के एकदम सहज और सादे ढग से अपनी बात को रख देने का जो कौशल त्रिलोचन के पास है, अन्यत्र नहीं मिलेगा।[99] अभिव्यक्ति की सहजता, अनायासता और भाषा मे लोक-जीवन की ठेठ रगत त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व की ऐसी विशेषताएँ है, जो उनकी प्रत्येक कविता ही नहीं वरन्, एक-एक पक्ति पर, एक-एक शब्द पर गहरी छाप के रूप मे दिखती है। बानगी के तौर पर, उनकी कुछ काव्य-पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

और कही जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को सँग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे। ('चम्पा..')

× × ×

काशी बडी भली नगरी है
वहाँ पवित्र लोक रहते हैं
फेरू भी सुनता रहता है। ('फेरू')

× × ×

माना थके थकाए है पथ पर उद्योगी,--
थकन दबा देगी, विश्वास नहीं जमता है।

('मानवता की जय होगी')

इस तरह की सहजता या अनायासता, बेलाग सादगी और असाधारण साधारणता त्रिलोचन की अपनी निजी विशेषता है, जो आधुनिक हिन्दी कविता के बीच उनकी अलग पहचान कायम करती है। जैसा कि डॉ० विजय बहादुर सिह ने कहा है "त्रिलोचन की तटस्थता, धीर पद-विन्यास, सयमित सगीत और सतुलित लयकारी को उनकी प्रत्येक कविता मे देखा जा सकता है। वे द्वन्द्व की रेखाओ की इतनी बारीक बुनावट करते है कि उनका खुरदरापन शायद ही कहीं दिखता हो। पर निगाहवालो से छिपा भी नहीं रहता। त्रिलोचन अपने साथियो में सबसे कम कलाकार, सबसे कम भावुक, सबसे कम विद्रोही, और सबसे कम प्रगतिवादी है तो इसका मतलब सिर्फ यही है कि उन्होने कविता और जीवन के स्थापित और प्रचलित रिश्तो मे बुनियादी हेर-फेर कर दिया है। शब्द और अर्थ की चमत्कारपूर्ण मैत्री के बदले एक सहज अभिन्नता उपजाने की कोशिश की गयी है जिसे भावुकतापरक सौदर्यवाद और उदात्तोन्मुखी अभिजातवाद चाह कर भी नहीं कर पाता, जो सीधे-सादे ढग से जीवन की सक्रिय गतिविधियो और जमीन की बुनियादी जरूरतो से प्रेरित होकर कविता मे चले आते है। त्रिलोचन न तो अर्थ की पुनर्रचना करते हैं और न ही शब्द की विलक्षण सयोजना। उनके यहॉ सब-कुछ सामान्य किन्तु विचारगर्भी है।"[100]

संदर्भ :

1 हस जुलाई 1946
2 वही
3. वही
4 नामवर सिंह, उद्धृत 'त्रिलोचन के बारे मे' (सम्पा० गोबिन्द प्रसाद),
5 डॉ० भगवान सिंह, वही, पृ0 130
6 डॉ० रवि रजन प्रगतिवादी कविता मे वस्तु और रूप, पृ० 215
7 अनकहनी भी कुछ कहनी है त्रिलोचन, पृ० 13
8. त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 189
9 जन-कवि डॉ० विजय बहादुर सिह, पृ० 33 (प्रथम सस्क० 1984)
10 राजेश जोशी, त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 191
11 वही, पृ0 51
12. अपूर्वानन्द, आलोचना : अक्टू०-दिस० '85, पृ0 91
13 पुरानी जूतियों का कोरस नागार्जुन, पृ0 74
14. डॉ० रवि रजन · प्रगतिवादी कविता मे वस्तु और रूप, पृ0 169
15. त्रिलोचन से केदारनाथ सिह की बातचीत, आलोचना · जुलाई-सितम्बर '87, पृ0 12
16 ताप के ताए हुए दिन त्रिलोचन, पृ0 52
17. नामवर सिंह, आलोचना : अंक 82
18 प्रतिनिधि कविताएॅ · नागार्जुन, पृ0 114 (तृतीय संस्क० 1988)
19. परमानन्द श्रीवास्तव . शब्द और मनुष्य, पृ0 67
20. रूपतरग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ0 281 (प्रथम संस्क० 1990)
21. ताप के ताए हुए दिन . त्रिलोचन, पृ0 54
22 जमुन जल तुम · केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 132
23. प्रतिनिधि कविताएॅ . शमशेर बहादुर सिंह, पृ0 151 (प्रथम सस्क० 1990)
24. वही, पृ0 112
25. त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 50
26. वही, पृ0 14
27. अरूण कमल, आलोचना अक 86, पृ0 24

28 अज्ञेय सदानीरा-भाग 1, पृ0 77 (प्रथम सस्क0 1986)
29 वही, पृ0 208
30 तारसप्तक, पृ० 226, सातवॉ (पेपरबैक) सस्क० 1998
31 आलवाल अज्ञेय, भूमिका, पृ0 10
32 अज्ञेय सदानीरा-भाग 2, पृ0 50 (प्रथम सस्क0 1986)
33 परमानन्द श्रीवास्तव, त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 203
34 त्रिलोचन पर डायरी सम्पा० ओमेन्द्र, पृ0 29 (सस्क० 1995)
35 ताप के ताए हुए दिन · त्रिलोचन, पृ0 65-66
36 नन्दकिशोर नवल कविता की मुक्ति, पृ0 60 (द्वितीय सस्क0 1996)
37. विजय बहादुर सिंह, ओर नवम्बर '98, पृ० 30
38. संसद से सडक तक · धूमिल, पृ0 109 (छठा संस्क० 1990)
39 दो पक्तियो के बीच राजेश जोशी, पृ0 15 (प्रथम सस्क० 2000)
40. वही, पृ0 16
41. उस जनपद का कवि हूॅ · त्रिलोचन, पृ0 67
42. नन्दकिशोर नवल · कविता की मुक्ति, पृ0 61
43. सदानीरा (भाग 2) · अज्ञेय, पृ0 43
44. फूल नाम है एक · त्रिलोचन, पृ0 91 (प्रथम सस्क०' 85)
45 प्रतिनिधि कविताऍ शमशेर बहादुर सिह, पृ0 154
46 फूल नाम है एक त्रिलोचन, पृ0 31
47 डॉ० रजना अरगडे कवियो का कवि शमशेर, पृ0 158 (द्वितीय सस्क० '98)
48. दूब्बार रब्बी, आजकल सितम्बर- 1993, पृ0 21
49. डॉ० रजना अरगडे · कवियो का कवि शमशेर, पृ0 158
50. नये इलाके मे · अरूण कमल, पृ0 29 (प्रथम संस्क० 1996)
51. डॉ० लल्लन राय . हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ० 221 (प्रथम सस्क० '89)
52. आलोचना . अक्टू०-दिस० 1985, पृ0 79
53. ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, पृ0 35
54. प्रतिनिधि कविताऍ . शमशेर बहादुर सिह, पृ0 107 व 108
55. प्रतिनिधि कविताऍ . मुक्तिबोध, पृ0 148-49 (चौथा सस्क० 1991)

56 तुम्हे सौपता हूँ त्रिलोचन, पृ0 21 (प्रथम सस्क० '85)
57 डॉ० लल्लन राय हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ० 172-73
58 त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 66
59 धूमिल का कथन, धूमिल की कविताएँ सम्पा० शुकदेव सिह, पृ0 3 (सस्क० 1983)
60 नामवर सिह कविता के नये प्रतिमान, पृ० 125-26 (चतुर्थ सस्क० 1990)
61 सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र धूमिल पृ० 47 (प्रथम सस्क० 1984)
62 रामदरश मिश्र, आधुनिक कविता सर्जनात्मक सदर्भ, पृ0 35
63. सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र · धूमिल, पृ० 70
64 श्रीराम त्रिपाठी धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, पृ0 101 (प्रथम सस्क० 2002)
65. ससद से सडक तक धूमिल, पृ0 39 (छठा संस्क० 1990)
66 वही, पृ0 54
67 राजेश जोशी, 'उद्भावना' कविताक अक्टू० 97–मार्च 98, पृ0 325
68. आलोचना . 33, अप्रैल-जून '75, पृ0 69
69 राजेश जोशी, 'उद्भावना' अक्टू० 97 – मार्च 98, पृ0 325
70 ताप के ताए हुए दिन, पृ0 66-67
71 राजेश जोशी, 'उद्भावना' (वही), पृ0 325
72 डॉ० भगवान सिह, त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 137
73 त्रिलोचन से मीरा भान की बातचीत, साध्य समाचार . दिल्ली, 8 अप्रैल 1990
74. श्रीराम त्रिपाठी . धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, पृ0 59
75. नन्दकिशोर नवल, सम्भव जन०-सित० '93 पृ0 108
76. जागते रहो सोने वालों : गोरख पाण्डेय, पृ0 64 (प्रथम संस्क० 1983)
77. दूधनाथ सिंह, माध्यम : जन०-मार्च० 2001, पृ0 34-35
78 दुनिया रोज बनती है · आलोकधन्वा, पृ0 30 (प्रथम संस्क० 1998)
79 वही, पृ0 14
80 नन्दकिशोर नवल, वर्तमान साहित्य कविता विशेषाक- 1992, पृ0 326
81. अपनी केवल धार अरूण कमल, पृ0 27 (प्रथम सस्क० 1980)
82. एक दिन बोलेंगे पेड़ राजेश जोशी, पृ0 22 (प्रथम संस्क० 1980)
83. आलोचना · अक्टू०-दिस० '87, पृ० 33

84 वही, पृ0 33
85 फूल नहीं रग बोलते है केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 75
86 वही, पृ0 155
87 लोहा गरम हो गया गोरख पाण्डेय, पृ0 111 (सस्क० 1990)
88. त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 34
89 धरती त्रिलोचन, पृ0 83-84 (सस्क० 1977)
90 आधुनिक कवि-16 केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 116 (प्रथम सस्क० 1978)
91 त्रिलोचन के बारे मे, पृ0 85
92 प्रतिनिधि कविताऍ मुक्तिबोध, पृ0 110
93 बात बोलेगी शमशेर बहादुर सिह, पृ० 31
94 अपनी केवल धार अरूण कमल, पृ0 64 (प्रथम सस्क० 1980)
95 दो पक्तियो के बीच राजेश जोशी, पृ० 29 (प्रथम सस्क० 2000)
96 रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि रामविलास शर्मा, पृ० 287
97. प्रतिनिधि कविताएँ · शमशेर बहादुर सिह, पृ० 117
98. डॉ० लल्लन राय . हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ० 199-200
99. वही, पृ० 200-201
100. जन-कवि : सम्पा० विजयबहादुर सिंह, पृ० 34-35

उपसंहार : 'एक नवीन कवि-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति'

त्रिलोचन का कवि-कर्म उनके जीवन-सघर्ष और व्यक्तित्व से कहीं बहुत गहरे स्तर पर जुडा हुआ है। उनका व्यक्तित्व जितना साधारण है, उतना ही असाधारण भी। उनकी घुमक्कडी, अस्त-व्यस्त जीवन-चर्या, रहन-सहन, भोजन-शैली, कई बार अनाहार होने के बावजूद मस्त-फक्कड़ स्वभाव आदि के विषय मे प्रचलित दन्तकथाओ का आवरण हटा कर देखा जाय तो उनके व्यक्तित्व मे अत्यन्त सघर्षशीलता, घोर कष्टो मे होने के बावजूद अद्भुत धैर्यशीलता और अपराजेय रहने वाली दृढता साफ नजर आती है। सुल्तानपुर (उ०प्र०) जिले के एक पिछडे गॉव 'चिरानीपट्टी' मे जन्म होने और प्रतिकूल, अभावग्रस्त पारिवारिक परिस्थितियो के बावजूद ज्ञानार्जन की पिपासा के चलते और जीविकोपार्जन के लिए निरन्तर भागदौड उनकी जिन्दगी की नियति बन गई। उनके जीवन मे बेरोजगारी और मुफ़लिसी का पलड़ा भारी रहा और नौकरी हमेशा 'आरर डाल' ही साबित हुई। लेकिन अभावो, सघर्षों से भरी जीवन-यात्रा मे वे अपराजेय बने रहे हैं, और इस जद्दोजेहद मे उनका 'सक्रिय-जीवन' से प्रेम उत्तरोत्तर बढता ही गया है।

जीने की जद्दोजेहद मे 'सक्रिय-जीवन' के प्रति अपार ललक एव आसक्ति ही त्रिलोचन की सृजनशीलता का बीज-रहस्य है। उसे ही त्रिलोचन पर्त-दर-पर्त विभिन्न दिशाओ में ले जाते है और इस प्रकार अपनी रचना का एक ससार सगठित करते है। उनके रचना ससार मे जीवन के गहरे वैषम्यो का 'देखा-भोगा चित्र' ही मिलता है। जीवन के तमाम क्रिया-व्यापारो से गहरा सरोकार रखने वाली कविताओ में उनकी अपनी अनुभूतियॉ बहुत संयम और तटस्थता के साथ प्रकट होती हैं; बिना किसी उत्तेजना या चीख-पुकार के। जीवन के गहरे मर्मों को अभिव्यक्त करने वाली उनकी कविताओं मे न तो छायावादी कल्पना की उडान है, न प्रगतिवाद का आक्रोश अथवा आवेग, और न ही नयी कविता की रोमानियत। जो कुछ है उसमे सामान्य जीवन की गहरी सचाई की अभिव्यक्ति गहरे लगाव और तटस्थता के द्वन्द्व मे अद्भुत सयम के साथ हुई है। उनकी कविता साधारण से साधारण चरित्र या घटना या जीवन-प्रसंग या बिम्ब को पूरे जतन से दर्ज करती है, मानो सब कुछ उनके पास-पडोस में 'जीवन्त' हो। नामवर सिंह ने उन्हे 'साधारण का असाधारण कवि' कहा है।

त्रिलोचन प्रतिबद्ध कवि हैं लेकिन उनकी प्रतिबद्धता का मतलब 'सिद्धान्त-कथन' या घिसे-पिटे पार्टी लेखन से कतई नहीं है। उनके काव्य में जार्गन और क्लीशे आदि का

सीधा प्रयोग प्राय नहीं हुआ है। अभाव की जिन्दगी से गहरे जुडे होने के कारण उनके काव्य मे अभावग्रस्त 'सामान्य जन' के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति की जगह एक सघन आत्मीयता या लगाव दिखता है। वस्तुत उनकी कविता मे—'भाव उन्हीं का सब का है जो थे अभावमय,/पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय।' (दिगत, पृ० 68) इसी कारण उनकी कविता का चरित्र पूरी तरह से जनवादी हो गया है। त्रिलोचन की कविताई का स्रोत उस 'लोक जीवन' में है, जिसके वह आत्मीय 'जन' हैं। उनकी कविता मे प्रकृति हो चाहे जीवन का उल्लास या अभाव, प्रेम हो चाहे जीवन-सघर्ष— इन सबकी सवेदना की जड़ें उस 'लोक जीवन' से कहीं बहुत गहरे जुडी है। गॉव के अभावग्रस्त साधारण जनो के बीच से उठाए हुए 'चरित्र' त्रिलोचन की कविता मे बहुत आये है। यथा— भोरई केवट, टेल्हू मुसहर, फेरू कहार, नगई महरा, पॉचू, सुकनी बुढिया, भिखरिया, अतवरिया, हुब्बी आदि। अनेक कविताओ मे त्रिलोचन ने मेहनतकश खेतिहर मजदूर व कर्मठ किसानी जीवन के सामूहिक श्रम व जीवन-सघर्ष के चित्रो को सहज, अनलंकृत व आत्मीय ढग से उपस्थित किया है। किसानी जीवन से आत्मीयता तथा तादात्म्य-भाव रखने वाले त्रिलोचन की कविता का मिट्टी, बादल, वर्षा, खेत-खलिहान और गाय-बैलों से गहरा रिश्ता है।

त्रिलोचन की कविता मे 'जीवन-यथार्थ' की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिलती है। यथार्थ को उन्होने एक व्यापक जीवन-परिप्रेक्ष्य में और एक स्वस्थ मन से देखा है। उनकी कविता मे यथार्थ-प्रतिबिम्बन की एक और विशेषता है, यथार्थ का उसकी गतिमयता में चित्रण। इसलिए जहॉं उसमें यथार्थ जीवन की वर्तमान विषमताऍ और विरूपताऍ व्यक्त हुई है, वहॉ उनके खिलाफ 'लड़ता हुआ व्यक्ति और समाज की नई आशा-अभिलाषाऍ' भी व्यक्त हुई है। यही कारण है कि उनकी कविता का यथार्थ चित्रण निराशाजनक नहीं है। यहॉ यह भी स्पष्ट कर देना ज़रूरी है कि त्रिलोचन के काव्य में अमूर्तता की स्थिति नहीं है। उनके काव्य मे यथार्थ-जीवन के चित्र, चरित्र, जीवन-प्रसंग और जीवनानुभव ही अधिक आते है, जिनमे बडी स्वाभाविकता, स्पष्टता और जीवन्त चित्रमयता होती है।

गहन राग-भाव या 'प्रेम' त्रिलोचन की काव्य-संवेदना का एक महत्वपूर्ण अन्त स्रोत के रूप में दृष्टिगत होता है। त्रिलोचन के लिए 'प्रेम' व्यक्ति को समाज से जोडने वाला सहज, अकुंठ, अकृत्रिम अनुभव है। उनकी स्वस्थ प्रणय-भावना उनकी जीवनासक्ति या जीवन-प्रेम का ही पर्याय है। त्रिलोचन के प्रणय-चित्रण मे न तो रीतिकालीन अति शृगारिकता है, न द्विवेदीयुगीन नैतिकतावाद; न तो छायावादी विरहाकुलता और अशरीरीपन है, न ही

रूमानी कविता का वासनावाद, न तो प्रयोगवादी कविता का यौन-कुठा है, न ही उसका एण्टी-रोमैण्टिसिज्म। उन्होंने अनेक प्रेम कविताएँ सहधर्मिणी को लक्ष्य करके लिखा है, जिसमे साथीपन का व्यापक भाव मौजूद है। उसका 'प्रेम' उनमे जीवन की ललक को बढाता है और जीवन-सघर्ष में सबल प्रदान करता है। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि त्रिलोचन की कविता मे 'नारी' की व्यथा, असहायता, हीन दशा और उसके 'राग-दिप्त मानस' की गहराई का पता देने वाले चित्र या चरित्र अधिक मिलते है। उनके यहॉ नारी के सौदर्य चित्रो मे उसके शरीरिक सौदर्य की अपेक्षा हृदय का अनुराग और माधुर्य की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। उनके काव्य मे 'नारी' पुरूष की सहचरी, सहधर्मिणी के रूप मे उसके जीवन-सघर्ष और शारीरिक श्रम मे बराबर का हिस्सेदार दिखाई देती है।

त्रिलोचन के यहॉ 'आत्म-परक' कविताओ की संख्या बहुत अधिक है। शायद, आधुनिक हिन्दी कविता मे सबसे अधिक। लेकिन त्रिलोचन की कविता का 'मैं' भी, उनकी कविता के अन्य चरित्रो के समान, एक खास जीवन्त 'चरित्र' के रूप मे ही मौजूद है। उनकी
ताओं का 'मै' अक्सर चीर भरा पाजामा पहने, अनाहार, किन्तु अपना स्वाभिमान अक्षत
ए है, उसका मन अदीन है। अपने 'आत्म' से अनात्म की हद तक तटस्थता बरतते
र अद्‌भुत आत्मनियंत्रण या आत्मसंयम का परिचय देते हुए, वे वैयक्तिक 'मैं' को
न्य भारतीय जन' का लघुत्तम समापवर्तक बना देते हैं। अपनी आत्मपरक कविताओ
नाम का प्रयोग प्राय 'अन्यपुरूष' मे करके, अपने 'आत्म' के प्रति गहरी
खते हुए, वे कई बार मानो स्वय की ही धज्जियॉ उडाते है। यथा- 'भीख
लोचन को देखा कल/जिस को समझे था है तो है यह फौलादी।' (उस
हूँ, पृ० 13) अपने प्रति ऐसी अचूक निर्मम दृष्टि समकालीन साहित्य

के कवि की एक बडी विशेषता है, उसका संयमित स्वर। काव्य-रचना के
: उद्विग्न नहीं होता। वह चाहे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विद्रूपताओ
हा हो, चाहे अपनी देखी-भोगी गरीबी का बयान कर रहा हो अथवा
,—कहीं भी तीव्र भावाकुल आवेग, प्रहार या ललकार की मुद्रा नहीं अपनाता।
नी रहती है, वह उन्हें उन्मुक्त नहीं छोड़ता। यहॉ तक कि अपने 'आत्म'
ी अद्‌भुत संयम और तटस्थता का निर्वाह करता है। वास्तव मे, त्रिलोचन
में तीव्र आवेग के कवि नहीं है, बल्कि घटनाओं के मूल मे स्थित

जीवन-सवेगो के स्थिर आवेग के कवि है। इसीलिए उनकी कविता मे सामाजिक-राजनीतिक घटनाओ का चित्रण-वर्णन कम है, और मानव जीवन की दशाओ और अनुभवो की अभिव्यक्ति अधिक है। उनके यहॉ 'तात्कालिक' या प्रचलित अर्थ मे राजनीतिक कविताएँ अत्यल्प हैं। उनके काव्य मे राजनीतिक सदर्भ को केवल कुछ शब्द-सकेतो और इशारो के जरिए ही पकडा जा सकता है।

कबीर, तुलसी, गालिब, निराला आदि की सामत विरोधी, साम्राज्य-विरोधी, जनवादी और मानवतावादी स्वर-प्रधान 'जातीय' परम्परा का ही विकास हैं त्रिलोचन की कविताएँ। इन कवियो पर कविताएँ लिखकर त्रिलोचन ने अपनी परम्परा को रेखांकित किया है। उन्होने तुलसी को अपना 'काव्य-गुरू' माना है। तुलसीदास के समान त्रिलोचन के काव्य मे 'अवध' जनपद—'भाषा, सस्कार, जीवन-सस्कृति, जनता के दु:ख दैन्य, हर्ष-उल्लास व आकांक्षाओं'—आदि के साथ समग्रता से उपस्थित होता है। कबीर और तुलसी की तरह त्रिलोचन अपने समय के लोककठ से फूटी ध्वनियों के कवि हैं। उनका कहना है 'ध्वनिग्राहक हूॅ मैं। समाज मे उठने वाली ध्वनियॉ पकड़ लिया करता हूॅ।' (दिगत, पृ० 25) इसी 'ध्वनिग्राहकता' के स्थापत्य से बुनी हुई हैं—'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'जीवन का एक लघु प्रसग', 'नगई महरा' और 'छोटू' जैसी अनेक कविताएँ। 'अमोला' सग्रह में त्रिलोचन ने हिन्दी के अपने जातीय छन्द 'बरवै' में, अवध की जनपदीय बोली में युग की पीडा को 'अनुभूत-निजता' के साथ अभिव्यक्त किया है। इस सग्रह के बरवै 'दाउद महमद तुलसी' की लोक-परम्परा मे आते हैं। बानगी के लिए – 'घेरइॅ हेरइॅ गरूजइँ बरसइँ जाइॅ/बादर भुइॅ कर ताप ताकि अफनाइॅ।' (अमोला, पृ० 11) त्रिलोचन की कविता में कबीर, तुलसी, सूर आदि के समान गहन आत्मविश्लेषण भी मौजूद है। उनका कहना है 'कडवी से कड़वी भाषा मे दोष बताओ/मुझ को मेरे, सदा रहूॅगा मैं आभारी।' (फूल नाम है एक, पृ० 69)

त्रिलोचन की कविता का प्राण-तत्त्व 'सहजता' है। 'राग' शीर्षक कविता मे शमशेर ने कहा है : "सरलता का आकाश था/जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ। × × × तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है?/उसकी सहजता प्राण है।" 'सहजता' त्रिलोचन के स्वभाव मे है। जैसा सहज उनका व्यक्तित्व है, वैसी सहज उनकी अभिव्यक्ति-पद्धति और कविता है। आधुनिक शिल्प मे जिस 'रूपगत चमत्कार' या कलात्मक निपुणता को तरजीह दी जाती है, वह त्रिलोचन की कविता के संदर्भ मे, उसके आरम्भिक विकास-काल से ही, अप्रासगिक है। सीधी-सादी अभिव्यक्ति-पद्धति, 'स्वाभाविक' कथन-भंगिमा और सीधी-सहज-निरलकृत भाषा-शैली

ही त्रिलोचन के कृति-व्यक्तित्व की विशिष्टता है। त्रिलोचन की कविता मे 'सहजता का आलोक'—स्पष्ट कथनों, पूरे-पूरे वाक्यों, लोक से जुडी भाषा और भाव-सवेदना आदि रूपो मे— दिखता है। भाषा की गद्यात्मकता और वर्णनात्मक तकनीक त्रिलोचन की कविता के सबसे विशिष्ट गुण है। उनकी कविता मे सीधे-सीधे वर्णन की तकनीक की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे वस्तुओ को उनके नैसर्गिक 'वस्तुगत' रूप में प्रस्तुत करते है, न कि किसी 'अन्य' के प्रतीक रूप मे। बिम्ब और प्रतीको के प्रयोग से बुनी जटिल भाषा-शैली से अलग, त्रिलोचन की सीधी-कथन वाली शैली को शमशेर ने 'सपाट' (Straight) कहा है। 'सपाट-बयानी' की शैली, जो सातवें दशक मे कविता की अतिशय बिम्बवादी रूझान से मुक्ति के लिए सामने आई, त्रिलोचन के यहॉ अपने आरम्भिक रूप मे शुरू से ही मौजूद है। त्रिलोचन की कविता मे 'सपाट-बयानी' की अपनी खास शैली मे ठेठ या स्वाभाविक वर्णनात्मकता, कथात्मकता और 'सबकी बोली-ठोली, लाग-लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, भाव' से भरी-पूरी 'सवादमयता' की मौजूदगी है।

'सब कुछ सब कुछ सब कुछ सब कुछ सब कुछ भाषा' (दिगत, पृ० 67)—कहने वाले त्रिलोचन के लिए 'भाषा' केवल अभिव्यक्ति का साधन-मात्र न होकर उस 'जीवन' को समग्रता से जानने का साधन भी है, जिसकी अभिव्यक्ति भाषा के जरिए वे कविता मे करते है। उनके लिए 'भाषा की लहरो में जीवन की हलचल है,/गति मे क्रिया भरी है और क्रिया मे बल है।' (दिगत, पृ० 67) अपनी कविता में 'जीवन की हलचल युक्त भाषा' देने के लिए ही वह समाज के बीच गहरे पैठते हैं और 'ध्वनिग्राहक' की तरह समाज मे उठने वाली ध्वनियो को पकड लिया करते है। वे जीवन मे घुले-मिले शब्दो को टोहते है और उन शब्दो के सहारे जीवन की तलाश करते है— 'शब्द शब्द से व्यजित जीवन की तलाश मे कवि भटका करता है'। (शब्द, पृ० 35) भाषा मे त्रिलोचन 'क्रिया' को सबसे अधिक महत्व देते है, शायद इसलिए कि 'जीवन की हलचल' की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त रूप 'क्रिया' ही होती है। 'क्रिया' पूरी करने के लिए ही शायद, वे कविता मे हमेशा 'एक पूरा वाक्य' लिखने पर जोर देते हैं। त्रिलोचन की भाषा का गहरा सम्बन्ध जीवन की क्रियाशील एव जीवित भाषा से सतत रहता है और वह भाषा जीवन के विपुल व विविध अनुभवो से निर्मित होती है। हिन्दी भाषा अपनी जातीय स्मृतियों और असंख्य अन्तर्ध्वनियों के साथ, सचमुच उनका घर है।

त्रिलोचन के रचनात्मक व्यक्तित्व में एक विचित्र विरोधाभास दिखता है। उनकी कविताओं में कई बार जीवन की स्वाभाविक अनगढता या ऊबड़खाबड़पन दिखाई पडता

हैं, जबकि बहुधा कला की दृष्टि से एक अद्भुत क्लासिक कसाव या अनुशासन भी मिलता है, खासकर सॉनटो मे। त्रिलोचन ने फार्म के स्तर पर सर्वाधिक प्रयोग किया है। गीत, गजल, सॉनेट, बरवै, कुण्डलिया, मुक्त छन्द, गद्य-कविता आदि फार्म का सफल उपयोग उन्होने किया है। लेकिन इन सब में 'एक पूरा वाक्य' लिखने की त्रिलोचन की जिद बराबर बनी रही। उनके सॉनेटो मे अद्भुत सृजनात्मक अनुशासन के साथ ही बातचीत की स्वच्छन्द गतिमयता भी मिलती है। सॉनेटो मे शब्दों की जैसी मितव्ययिता, शिल्पगत कसाव और भाषा मे बातचीत की स्वाभाविक गतिमयता मिलती है, वैसा निराला को छोडकर आधुनिक हिन्दी कविता मे अन्यत्र मिलना मुश्किल है। सच तो यह है कि त्रिलोचन ने 'सॉनेट' जैसे विजातीय काव्यरूप को हिन्दी की भाषिक प्रकृति और जातीय छन्द 'रोला' की बोलचाल वाली 'गद्यात्मक' लय के अनुरूप ढालकर एक ऐसी नयी काव्य-विधा का आविष्कार किया है, जो लगभग हिन्दी की अपनी विरासत और त्रिलोचन की खास पहचान बन गया है।

जनपदीयता, साधारण की अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति में नैतिक सचाई और सहजता या अनायासता, बेलाग सादगी और असाधारण साधारणता, सेंटीमेंटेलिटी का अभाव एव तटस्थ दृष्टि जैसी विशिष्टताएँ त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व का निर्माण करती है। इन विशिष्टताओ के कारण अपनी समकालीन कविता के बीच त्रिलोचन की अपनी काव्यभूमि सबसे अलग दिखती है। जन-जीवन के अतरग अनुभवो को एक व्यापक आधार देने वाली कविता-धारा मे त्रिलोचन का स्थान अत्यत महत्वपूर्ण बना रहेगा। त्रिलोचन इस दृष्टि से अनोखे और व्यक्तित्व-संपन्न कवि हैं कि आधुनिकतावाद के विरूद्ध उनका रचनात्मक सघर्ष बिना व्यवधान के ही समझ मे आता है। उनका काव्य-स्वर स्पष्ट व प्रभावशाली है और उनकी जनसम्बद्धता को कलात्मक होने का न कोई दभ है, और न कोई लोभ। विकट से विकटतर जीवन-स्थितियों में भी, हर हालत मे उनका लेखन कुंठा पर आशा की, अधोगति पर उत्थान की, और पराभव पर उर्ध्वमुखी जीवन की विजय का उद्घोष करता हुआ जान पड़ता है।

ooo

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ :

1. **त्रिलोचन** : धरती (द्वितीय सस्क० 1997), नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. **त्रिलोचन** : गुलाब और बुलबुल (प्रथम संस्क० 1956), पंकज प्रकाशन, वाराणसी
3. **त्रिलोचन** : दिगंत (द्वितीय स० 1996), साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद
4. **त्रिलोचन** : ताप के ताए हुए दिन (द्वितीय सस्क० 1996), साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद
5. **त्रिलोचन** : शब्द (प्रथम सस्क० 1980), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. **त्रिलोचन** : उस जनपद का कवि हूँ (प्रथम सस्क० 1981), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
7. **त्रिलोचन** : अरघान (द्वितीय सस्क० 1998), साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद
8. **त्रिलोचन** : अनकहनी भी कुछ कहनी है (प्रथम सस्क० 1985), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
9. **त्रिलोचन** : तुम्हे सौंपता हूँ (प्रथम संस्क० 1985), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
10. **त्रिलोचन** : फूल नाम है एक (प्रथम संस्क० 1985), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
11. **त्रिलोचन** : सबका अपना आकाश (प्रथम सस्क० 1987), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. **त्रिलोचन** : चैती (प्रथम सस्क० 1987), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
13. **त्रिलोचन** : अमोला (प्रथम सस्क० 1990), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
14. **त्रिलोचन** : मेरा घर (प्रथम संस्क० 2002), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

(ख) सहायक ग्रन्थ :

1. **त्रिलोचन** : देशकाल (प्रथम सस्क० 1986), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. **त्रिलोचन** : रोजनामचा · 1950 ई० (प्रथम सस्क० 1992), साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद
3. **त्रिलोचन** : काव्य और अर्थबोध (प्रथम संस्क० 1995), साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद
4. **केदारनाथ सिंह** : मेरे समय के शब्द (प्रथम सस्क० 1993), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
5. **रामविलास शर्मा** : रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि (प्रथम सस्क० 1990), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. **गोबिन्द प्रसाद (संपा०)** : त्रिलोचन के बारे मे (प्रथम सस्क० 1994), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
7. **डॉ० लल्लन राय** : हिन्दी की प्रगतिशील कविता (प्रथम सस्क० 1989), हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ
8. **डॉ० रवि रंजन** : प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप (प्रथम सस्क० 1995), मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद

9. **कमलाकांत द्विवेदी, दिविक रमेश (संपा०)** : साक्षात् त्रिलोचन (प्रथम सस्क० 1990), सिद्धार्थ पब्लिकेशन, नई दिल्ली
10. **ओमेन्द्र (संपा०)** : त्रिलोचन पर डायरी (प्रथम संस्क० 1995), हंसा प्रकाशन, जयपुर
11. **त्रिलोचन** : प्रतिनिधि कविताएँ (प्रथम संस्क० 1985), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. **नागार्जुन** : प्रतिनिधि कविताएँ (तृतीय सस्क० 1988), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
13. **शमशेर बहादुर सिंह** : प्रतिनिधि कविताएँ (प्रथम सस्क० 1990), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
14. **गजानन मा० मुक्तिबोध** : प्रतिनिधि कविताएँ (चौथा सस्क० 1991), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
15. **केदारनाथ अग्रवाल** : आधुनिक कवि- 16 (प्रथम सस्क० 1978), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
16. **निराला** : राग-विराग (सस्क० 1997), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
17. **अज्ञेय** : सदानीरा (दो भाग, प्रथम संस्क० 1986), नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली
18. **धूमिल** : ससद से सडक तक (छठा सस्क० 1990), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
19. **धूमिल** : धूमिल की कविताएँ (सस्क० 1983), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
20. **गोरख पाण्डेय** : स्वर्ग से बिदाई (प्रथम सस्क० 1989), जन सस्कृति मच, लखनऊ
21. **गोरख पाण्डेय** : जागते रहो सोने वालो (प्रथम सस्क० 1983), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
22. **गोरख पाण्डेय** : लोहा गरम हो गया है (संस्क० 1990), ज०स०म० नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
23. **राजेश जोशी** : एक दिन बोलेंगे पेड (प्रथम सस्क० 1980), सभावना प्रकाशन, हापुड
24. **राजेश जोशी** : दो पक्तियो के बीच (प्रथम सस्क० 2000), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
25. **अरूण कमल** : अपनी केवल धार (प्रथम सस्क० 1980), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
26. **अरूण कमल** : नये इलाके मे (प्रथम सस्क० 1996), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
27. **आलोकधन्वा** : दुनिया रोज बनती है (प्रथम सस्क० 1998), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
28. **डॉ० रामविलास शर्मा (संपा०)** : प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल (प्रथम सस्क० 1986), परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
29. **नन्दकिशोर नवल** : शब्द जहॉ सक्रिय हैं (प्रथम सस्क० 1986), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
30. **नन्दकिशोर नवल** : कविता की मुक्ति (द्वितीय सस्क० 1996), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
31. **परमानन्द श्रीवास्तव** : शब्द और मनुष्य (प्रथम सस्क० 1988), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
32. **परमानन्द श्रीवास्तव** : समकालीन कविता का यथार्थ (प्रथम संस्क० 1988), हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
33. **नामवर सिंह** : कविता के नये प्रतिमान (चतुर्थ सस्क० 1990), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
34. **प्रभाकर श्रोत्रिय (संपा०)** : हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका (सस्क० 1995), नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली

35. डॉ० रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता (सस्क० 1997), साहित्य रत्नालय, कानपुर
36. अजय तिवारी : प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य (प्रथम सस्क० 1984), परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
37 अजय तिवारी : नागार्जुन की कविता (प्रथम सस्क० 1990), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
38 विजयदेवनारायण साही : छठवॉ दशक (सस्क० 1992), हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
39. डॉ० जीवन सिह : कविता की लोक प्रकृति (सस्क० 1994), अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद
40. रामस्वरूप चतुर्वेदी : आधुनिक कविता यात्रा (प्रथम सस्क० 1998), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
41. डॉ० छोटेलाल दीक्षित : आधुनिक काव्य में सौन्दर्यबोध के विविध आयाम (सस्क० 1994), शबरी सस्थान, दिल्ली
42. अशोक वाजपेयी : कवि कह गया है (प्रथम सस्क० 1998), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
43. अशोक वाजपेयी (संपा०) : कविता का जनपद (प्रथम संस्क० 1992), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
44. डॉ० रंजना अरगड़े : कवियों का कवि शमशेर (द्वितीय सस्क० 1998), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
45. विष्णुचन्द्र शर्मा : अभिन्न (प्रथम सस्क० 1996), यात्री प्रकाशन, नई दिल्ली
46. नरेन्द्र सिंह : साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना (प्रथम संस्क० 1990), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
47. काशीनाथ सिंह : आलोचना भी रचना है (सस्क० 2000), प्रतिमान प्रकाशन, इलाहाबाद
48. अशोक चक्रधर : मुक्तिबोध की कविताई (प्रथम सस्क० 1998), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
49 विजय बहादुर सिंह (संपा) : जन-कवि (प्रथम संस्क० 1984), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
50 मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्मसघर्ष तथा अन्य निबध (द्वितीय सस्क० 1977), विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर
51. एहतेशाम हुसैन : उर्दू-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्क० 1984), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
52. रामविलास शर्मा : भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश · भाग-2 (प्रथम सस्क० 1999), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

पत्र-पत्रिकाएँ

(अ) पत्र :

1 'जनसत्ता' (नई दिल्ली) 8 अप्रैल 1990

2 'समय' (साप्ताहिक, जौनपुर) 18 अगस्त 1998

3. 'राष्ट्रीय सहारा' (लखनऊ) 19 अगस्त 2001, 22 सितम्बर 2002

(ब) पत्रिकाएँ :

1 'अभिप्राय' (इलाहाबाद) अक 24-25, 2000

2 'आजकल' (नई दिल्ली) अगस्त '95, जून० '96, नव० '97, फर० 2001

3 'आलोचना' (नई दिल्ली) अक 56-57, 1981, अक 75, 1985, अक 76, 1986, अक 82, 1987

4. 'ऋतुगध' (मुजफ्फरपुर) अक 9, 1987

5 'ओर' (जयपुर) नवम्बर 1988

6. 'कथादेश' (नई दिल्ली) अगस्त 1997

7. 'कसौटी' (पटना) : अंक 3, 1999

8. 'कृतिओर' (जयपुर) अक 1, 1996, अक-5, 1997

9. 'दस्तावेज' (गोरखपुर) अक 37, 1987, अक-79, 1998

10. 'धरती' (इलाहाबाद) अक 4-5, 1983, अक-6, 1984

11. 'परिवेश' (मुरादाबाद) : अंक-24, 1996

12. 'पूर्वग्रह' (भोपाल) · अंक 75-76, 1986

13. 'बहुवचन' (नई दिल्ली) : अक-2, 2000, अक-8, 2001

14. 'रंगायन' (उदयपुर) · अप्रैल-जून 1998

15. 'वर्तमान साहित्य' (गाजियाबाद) अक 7-8, 1992, अक 11, 1992, अक 12, 1992, अंक 5-6, 2000

16. 'वसुधा' (भोपाल) : अक-6, 1987, अक-32, 1995

17. 'वागर्थ' (कलकत्ता) अक-17, 1996

18. 'सर्वनाम' (दिल्ली) : अंक-47, 1997, अक 51, 52, 1998, अंक-68, 2002

19. 'सापेक्ष' (दुर्ग) · अक-38, 1996

20. 'साक्षात्कार' (भोपाल) · अंक 55-56, 1984, अक- 81, 84, 1986, जुलाई-सितम्बर 1990, नवम्बर 2000